संघर्षकालीन नेताओं की जीवनियाँ

भाग—१

प्रकाशक

प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर-प्रदेश

(स्वतंत्रता-संग्राम-इतिहास, उत्तर प्रदेश की योजना के अंतर्गत प्रकाशित)

प्रधान

पं० कमलापति त्रिपाठी

गृह, शिक्षा एवं सूचना मंत्री

डा० सैयिद् अतहर अब्बास रिज़वी

एम० ए०, पी-एच० डी०

यू० पी० एजूकेशनल सर्विस

सचिव, परामर्शदात्री समिति

डा० मोतीलाल भार्गव

एम० ए०, डी० फिल०

रिसर्च अधिकारी

प्रथम संस्करण १६५७

द्वितीय संस्करण १६५८

मूल्य १ रुपया

विषय-सूची

पृष्ठ-संख्या

परिशिष्ट-सूची

प्राक्कथन

इस संग्रह में उन नेताओं की जीवनियाँ प्रकाशित करने का उपक्रम हुआ है जिन्होंने १८५७ में विदेशी सत्ता को एकबारगी मिटा देने के लिए अपने जीवन की बाजी लगा दी, जिन्होंने स्वयं मिटकर भी अपने बलिदानों से वह ज्योति जला दी जो आज तक प्रज्वलित है। कुछ इतिहासकारों ने यह कहने का साहस किया है कि १८५७ का घटनाचक्र क्रान्ति नहीं था बल्कि कुछ असंतुष्ट सिपाहियों का बलवामात्र था और पीछे से उसको भड़काने में ऐसे सामन्तों और राजाओं ने साथ दिया जिनके स्वार्थों को कम्पनी की नीति से आघात पहुँच रहा था। यह बात बहुतों को सत्य सी प्रतीत हो सकती है किन्तु मैं इसके सम्बन्ध में केवल इतना ही कहना चाहूँगा कि अंग्रेजी हुकूमत की बौद्धिक विजय का यह बचा हुआ दुष्परिणाम मात्र है। इस संग्रह के पाठक इन जीवनियों को पढ़ते समय भली भाँति देखेंगे कि इन नेताओं ने जन-जीवन में चेतना पैदा की थी और इनके नेतृत्व को जन-साधारण का अटूट बल मिला था। मुझे विश्वास है कि १८५७ की अमर क्रान्ति के जिन तत्वों का परिचय इनकी जीवनियों में मिलता है और उसके जन-क्रान्ति होने का जो संकेत मिलता है वह शीघ्र ही ऐतिहासिक आधारों पर स्पष्ट रूप से जनता के सम्मुख आ सकेगा।

यह जीवन-कथाएँ अपने आपमें तो रोचक हैं ही, इनसे उन भावनाओं पर प्रकाश पड़ता है जिनसे तत्कालीन जनता उद्वेलित हो रही थी। इन भावनाओं ने किस प्रकार महान् राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप लिया और वह आन्दोलन क्यों असफल रहा, यह सब विचारणीय विषय है। बात पुरानी हो गई परन्तु हम आज भी उससे शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

डा० एस० ए० ए० रिजवी, जिनके अधीन बहुत खोजबीन करके इन महापुरुषों के इतिवृत्त जनता के सामने रखने का प्रयत्न किया गया है, इतिहास के विद्वान् हैं और मुझे विश्वास है कि इस कृति का सभी क्षेत्रों में समुचित आदर होगा।

सम्पूर्णानन्द
मुख्य मंत्री
उत्तर प्रदेश

विधान-भवन, लखनऊ
३०-४-५७

प्रस्तावना

भारत-सरकार के स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास की योजना के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में भी कई वर्ष पूर्व एक समिति बनायी गयी थी। उस समिति के तत्वावधान में कुछ सामग्री एकत्र हुई और भारत-सरकार को भेजी गयी परन्तु कार्य की प्रगति सन्तोषजनक न रही। फलस्वरूप ३१ दिसम्बर १९५६ के पश्चात् भारत-सरकार के एक पत्र के अनुसार इस समिति के स्थान पर कार्य की रूपरेखा में विशेष परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव हुई, और अब गृह, शिक्षा तथा सूचना-मंत्री पंडित कमलापति त्रिपाठी के सुयोग्य निर्देशन तथा परामर्श से कार्य को निम्नलिखित उद्देश्य को लेकर संचालित करने का निश्चय हुआ है:—

(१) १८५७ से १९४७ ई० तक की मुख्य आधारभूत सामग्री का संकलन तथा प्रकाशन। यह संकलन कई ग्रन्थों में प्रकाशित होगा। पहला ग्रन्थ, जिसमें क्रान्ति की पृष्ठभूमि तथा सितम्बर १८५७ ई० का इतिहास है, १५ अगस्त १९५७ ई० तक प्रकाशित हो जायगा। दूसरा ग्रंथ, जिसमें सितम्बर १८५७ ई० से १८५९ ई० तक का इतिहास है, अक्तूबर अथवा नवम्बर १९५७ ई० तक प्रस्तुत किया जा सकेगा। इस प्रकार मार्च १९६० ई० के अन्त तक १९४७ ई० तक के इतिहास से सम्बन्धित आधारभूत सामग्री का संकलन कई ग्रन्थों में प्रकाशित होगा।

(२) आधारभूत सामग्री के संकलन के साथ-साथ समय-समय पर आवश्यकतानुसार स्वतंत्रता-संग्राम के इतिहास से सम्बन्धित अन्य पुस्तकों का प्रकाशन।

इस दूसरी योजना के अन्तर्गत डा० सैयिद अतहर अब्बास रिजवी की पुस्तक "स्वतंत्र दिल्ली" प्रकाशित की जा रही है। "संघर्षकालीन नेताओं की जीवनियाँ" भाग १ भी इसी दूसरी योजना के अनुसार प्रस्तुत की जा रही है। इसमें नाना साहब, मौलवी अहमदउल्लाह शाह, तात्या टोपे, खान बहादुर खाँ, कुँवरसिंह, झाँसी की रानी तथा राना बेनीमाधो सिंह की जीवनियों पर मूल सामग्री के आधार पर प्रकाश डाला गया है। पाठकगण यह अनुभव करेंगे कि उत्तर प्रदेश के संघर्षकालीन इतिहास का

बहुत बड़ा भाग इन जीवनियों द्वारा संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत कर दिया गया है। इस पुस्तक का संकलन डा० सैयिद अतहर अब्बास रिजवी के निर्देशन में हुआ है। इस पुस्तक में नाना साहब तथा रानी झाँसी की जीवनियों की रचना डा० मोतीलाल भार्गव, योजना के रिसर्च अधिकारी ने की है। अन्य जीवनियों की रचना सर्वश्री मेहरोत्रा, द्विवेदी, राजेन्द्र बहादुर, डा० रस्तोगी तथा श्रवणकुमार ने की है जो इस योजना के अन्तर्गत रिसर्च असिस्टेंट्स हैं। लगभग ४ मास में जितनी सामग्री संकलित हुई है उसका अनुमान तो इस पुस्तक तथा आधारभूत सामग्री के संकलन से सम्बन्धित ग्रन्थ से हो सकेगा जिसे अगस्त में प्रकाशित किया जायगा।

इस पुस्तक का संकलन तथा प्रकाशन इस योजना के अधिकारियों तथा रिसर्च असिस्टेंट्स के सतत परिश्रम का फल है। अतः इस अवसर पर इन लोगों को बधाई देना तथा मुख्य मंत्री डा० सम्पूर्णानन्द व पंडित कमलापति त्रिपाठी, सूचना, शिक्षा एवं गृहमंत्री के शुभाशीर्वाद तथा उनके सुयोग्य निर्देशन के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना भी आवश्यक है क्योंकि इनके अभाव में इतने अल्प समय में यह कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता था।

विनोदचन्द्र शर्मा
आई० ए० एस०
शिक्षा सचिव
उत्तर प्रदेशीय सरकार

विधान-भवन, लखनऊ.
२१—४—५७

विषय-प्रवेश

१८५७ ई० का संघर्ष अंग्रेजों के १०० वर्ष के अत्याचार तथा शोषण का फल था। इस बीच अंग्रेजों के विरुद्ध आवाजें निरन्तर उठती रहीं और फिरंगियों के राज्य को समाप्त करने का प्रयत्न भी किया जाता रहा किन्तु १८५७ ई० में दबी हुई चिनगारियों ने ज्वालामुखी का रूप धारण कर लिया और उत्तरी भारत का बहुत बड़ा भाग अंग्रेजी शासन के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ। सैनिकों का इसमें बड़ा हाथ था क्योंकि कोई भी हिंसात्मक युद्ध वास्तव में बिना सैनिकों की सहायता के चल ही नहीं सकता। किन्तु १८५७ ई० के संघर्ष में जनता ने भी सैनिकों के साथ कन्धे से कन्धा भिड़ाकर फिरंगियों को देश से निकालने का भरसक प्रयत्न किया। देश के कुछ भागों में तो इस संघर्ष ने बड़ा विकराल रूप धारण कर लिया। स्वतंत्रता का युद्ध किसी एक व्यक्ति का युद्ध नहीं होता अपितु उसमें देश के सभी नर-नारियों का हाथ होता है। अतः ऐसे महान् संघर्ष के नेताओं को चुनकर उनकी जीवनियाँ किसी पुस्तक में संकलित करना बड़ा कठिन है। इस पुस्तक में जिन नेताओं की जीवनियों पर प्रकाश डाला गया है उन्हें चुनते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि क्रान्ति के विभिन्न पहलुओं तथा उत्तर प्रदेश में क्रान्ति के इतिहास का बहुत बड़ा भाग इन जीवनियों द्वारा प्रस्तुत कर दिया जाय।

इन जीवनियों के संकलन हेतु समस्त समकालीन प्रकाशित तथा अप्रकाशित सामग्री का, जो उपलब्ध हो सकी, प्रयोग किया गया है। विभिन्न जिलों के मुकदमों की फाइलों तथा रेकार्ड आफिस इलाहाबाद और उत्तर प्रदेश सरकार के सचिवालय के रेकार्ड आफिस के पत्रों का विशेष रूप से अध्ययन किया गया है। समकालीन समाचारपत्रों में उर्दू समाचारपत्र "सिहरे सामरी" तथा कलकत्ते से प्रकाशित होने वाले अंग्रेजी समाचारपत्रों का भी विशेष रूप से अध्ययन हुआ है। पार्लियामेंट्री पेपर्स तथा विभिन्न जिलों की प्रकाशित रिपोर्टों को भी सामने रखा गया है। अरबी तथा उर्दू के ग्रंथों का भी प्रयोग किया गया है और जिन-जिन स्थानों से भी सम्भव था प्रामाणिक सामग्री प्राप्त करने का प्रयास

किया गया है, किन्तु फिर भी यह इतना बड़ा विषय है और सामग्री इतनी अधिक है कि पूर्ण रूप से समस्त सामग्री का अध्ययन कर लेना कठिन है। इन जीवनियों के अध्ययन से पता चलेगा कि कितनी विस्तृत सामग्री का प्रयोग किया गया है। कुँवरसिंह की जीवनी के सम्बन्ध में बहुत कुछ सामग्री बिहार में एकत्र की गयी है जो हमें अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है। इसके अतिरिक्त राना बेनीमाधो सिंह की जीवनी के विषय में भी अधिक सामग्री हमारे पास नहीं आ सकी है। आशा है कि इस न्यूनता को दूसरे संस्करण में पूरा किया जा सकेगा।

मैं श्री भगवतीशरण सिंह, संचालक, सूचना-विभाग का बड़ा आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे इस पुस्तक के संकलन का आदेश दिया। मुख्य मंत्री डा० सम्पूर्णानन्द तथा गृह, सूचना एवं शिक्षा-मंत्री पंडित कमलापति त्रिपाठी के सुयोग्य निर्देशन, प्रोत्साहन तथा आशीर्वाद के कारण यह कार्य अल्प समय में सम्पन्न हो गया जिसके लिए मैं इन विद्याप्रेमियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने में असमर्थ हूँ। शिक्षा-सचिव श्री विनोदचन्द्र शर्मा ने इस पुस्तक के लिए बड़े बहुमूल्य सुझाव दिये और इसकी प्रस्तावना भी लिखी। इसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

स्वतंत्रता-संग्राम की उत्तर प्रदेश की योजना के अन्तर्गत कार्य करने वाले मेरे सहयोगियों ने अल्प समय में बड़े परिश्रम से विभिन्न नेताओं की जीवनियां लिखीं। डा० मोतीलाल भार्गव, रिसर्च अधिकारी ने स्वयं दो जीवनियों की रचना की और पुस्तक के संकलन में मेरा हाथ बटाया। उन सभी के प्रति आभार प्रदर्शन मेरा कर्त्तव्य है।

सैयिद् अतहर अब्बास रिजवी
एम० ए०, पी-एच० डी०
यू० पी० एजूकेशनल सर्विस
सचिव,
स्वतंत्रता-संग्राम परामर्शदात्री समिति
उत्तर प्रदेश

विधान भवन, लखनऊ
३०-४-५७



महारानी लक्ष्मीबाई

श्रीमन्त नाना धूँधूपन्त

जन्म तथा बाल्य-काल : नाना साहब का जन्म, विक्रमी संवत् १८८१, अर्थात् सन् १८२४ ई० में कोंकण ब्राह्मण कुल में हुआ था।[1] इनके पिता महादेव अथवा माधो नारायण राव, महाराष्ट्र में मथेराँ पहाड़ियों की तलहटी में, नस्रपुर तालुका के वेणु ग्राम में रहते थे।[2] इनकी माता का नाम श्रीमती गंगाबाई था।

माधो नारायण तथा पेशवा बाजीराव द्वितीय गोत्र-भाई थे। बाजीराव पेशवा महाराज के पूना से निष्कासन के पश्चात् नानाराव के माता-पिता को आर्थिक संकट ने आ घेरा। पेशवा को बिठूर में निवास के लिए गंगातट पर एक जागीर दी गयी। उन्हें ८ लाख रुपये वार्षिक की पेन्शन अपने तथा अपने आश्रितों के भरण-पोषण के लिए मिली। उन्हें उत्तर-पश्चिमी प्रान्तीय शासन तथा अदालतों की सीमा से बाहर रखा गया। शासन एक बिठूर स्थित 'विशेष कमिश्नर' द्वारा उनसे सम्बन्ध रखता था। इन सब सुविधाओं को प्राप्त करके पेशवा, कम्पनी के शासन पर विश्वास करके, बिठूर तथा ब्रह्मावर्त में अपने सहस्रों आश्रितों के साथ सन् १८१८ ई० में चले आये। नानाराव के माता-पिता कुछ दिन तक तो महाराष्ट्र में रहे। परन्तु पेशवा के भाई, अमृतराव तथा चिम्माजी अप्पा के काशी तथा चित्रकूट चले आने के पश्चात् उन्होंने भी बिठूर आकर रहने का विचार किया। इस

१. 'नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज़ प्रोसीडिंग्ज़'—पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट—जनवरी से जून १८६४ ई०—भाग १ पृ० १६ : संकेत संख्या १७ : आख्या संख्या ७२—जुलाई १८६३ ई०—नानाराव, उनके परिवार तथा सेवकों के हुलिए (डिस्क्रिप्टिव रोल) विधान भवन रिकार्ड संग्रहालय। परिशिष्ट—२ संलग्न। इसके अनुसार नानाराव की आयु १८५८ ई० में ३६ वर्ष आती है परन्तु यदि वह गोद लिए जाने के समय तीन वर्ष के थे, तो उनकी वय १८५८ ई० में ३४ वर्ष की होनी चाहिए तथा जन्म-वर्ष १८२४ ई०।

२. कलकत्ता से प्रकाशित समाचार-पत्र—'इंग्लिशमैन' : शनिवार २६ अगस्त १८५७ ई० तथा 'बम्बई गजेट'—अगस्त १३, १८५७ ई० : नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता।

समय नानाराव की आयु ३ वर्ष की थी। इनके दो भाई थे, बड़े का नाम 'बालाभट्ट' तथा छोटे का नाम 'बालाराव' था। इनकी दो बहिनें थीं, जिनका नाम मथुरा बाई तथा श्यामा बाई था।[1]

निःसंतान पेशवा : पेशवा बाजीराव के दो रानियाँ थीं—मैना बाई तथा साई बाई। उनके दो कन्याएँ हुईं जिनके नाम थे—जोगा बाई और कुसुमा बाई। एक पुत्र का भी जन्म हुआ परन्तु वह बाल्यावस्था में ही मर गया था। पेशवा को अपनी अतुल धन-सम्पत्ति, परिवार तथा आश्रितों की देखरेख व पेशवाई गद्दी सूनी हो जाने की बहुत चिन्ता थी। श्रीमन्त माधो नारायण राव के बिठूर आ जाने के पश्चात्, पेशवा का भी बालक नानाराव पर बहुत स्नेह हो गया। सन् १८२७ ई० में उन्होंने ३ वर्ष के नन्हें होनहार बालक को अपना दत्तक पुत्र स्वीकार किया। पेशवा महाराज ने रानियों को भी अन्य दत्तक पुत्र बनाने की अनुमति दे दी। फलस्वरूप माधो नारायणजी के दो भतीजे सदाशिव राव और गंगाधर राव भी गोद लिये गये।[2] परन्तु पेशवाई गद्दी के अधिकारी नानाराव ही घोषित किये गये। पेशवा को पिण्डदान देने का उत्तरदायित्व केवल उन्हीं पर था।

प्रारम्भिक शिक्षा : दत्तक पुत्र बन जाने के पश्चात् नाना का नाम नाना राव धुँधूपन्त रक्खा गया। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा, हाथी-घोड़े की सवारी, तलवार चलाने, बन्दूक चलाने, तैरने आदि तक ही सीमित थी। उन्हें कई भाषाओं का ज्ञान कराया गया। उन्हें उर्दू व फारसी का भी पर्याप्त ज्ञान हो गया था। इसी बाल्यावस्था में नानाराव तथा मनुबाई—इतिहास-प्रसिद्ध रानी लक्ष्मीबाई—का साथ हुआ। किंवदन्ती है कि इन्हीं मनुबाई ने, जिनका नाम पेशवा ने 'छबीली बहन' रख लिया था, नाना राव

---

१. 'नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज़ प्रोसीडिंग्ज़'—पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट—जनवरी से जून १८६४ ई०—भाग १ पृ० १६ : संकेत संख्या १७ : आख्या संख्या ७२—जुलाई १८६३ ई०—नानाराव, उनके परिवार तथा सेवकों के हुलिए (डिस्क्रिप्टिव रोल) विधान भवन रिकार्ड संग्रहालय। परिशिष्ट–२ संलग्न। इसके अनुसार नानाराव की आयु १८५८ ई० में ३६ वर्ष की आती है परन्तु यदि वह गोद लिये जाने के समय तीन वर्ष के थे, तो उनकी वय १८५८ ई० में ३४ वर्ष की होनी चाहिए तथा जन्म-वर्ष १८२४ ई०।

२. 'नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज़ प्रोसीडिंग्ज़'—सन् १८६४ ई०।

के राखी बाँधी थी। दोनों ने साथ ही साथ अस्त्र-शस्त्र विद्या में अद्वितीय दक्षता प्राप्त की थी।

सन् १८३६ ई० में पेशवा ने अपने दत्तक पुत्रों के लिए वधू तलाश कराने के हेतु, कोंकण प्रदेश अपने दो दूत भेजने के लिए, बिठूर स्थित विशेष कमिश्नर द्वारा शासन से उन दूतों के लिए 'अनुमतिपत्र' (पासपोर्ट) प्राप्त करने के वास्ते प्रार्थना-पत्र प्रेषित किये।[१]

पेशवा पर कड़ी देखरेख : बिठूर स्थित अंग्रेज कमिश्नर पेशवा पर कड़ी देखरेख रखता था। बिठूर से बाहर जाने के लिए, विशेषत: पूना तथा महाराष्ट्र जाने के लिए उसकी अनुमति की आवश्यकता पड़ती थी। सन् १८४० ई० में कमिश्नर ने १२ नवम्बर के शासकीय प्रपत्र द्वारा केन्द्रीय शासन से आदेश प्राप्त किये कि पेशवा बाजीराव की असामयिक मृत्यु हो जाने पर क्या कार्यवाही की जावेगी।[२] परन्तु पेशवा ने सन् १८५१ ई० तक आयु पायी और ऐसी परिस्थिति नहीं आयी। सन् १८३६ ई० दिनांक ११ दिसम्बर को पेशवा ने उत्तराधिकार-पत्र (वसीयत) लिखवा दिया, और अपने दत्तक पुत्र नानाराव धूँधूपन्त को पेशवाई गद्दी तथा अतुल धन-सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बना दिया।[३] इस पत्र के अनुसार सन् १८५० ई० में २५ वर्ष के हो जाने के कारण, नानाराव पूर्ण रूप से उत्तराधिकारी बन गये थे। फलत: लेफ्टिनेन्ट मैन्सन को शासन का उत्तर मिला कि 'उत्तराधिकारी के निश्चित हो जाने के कारण, पेशवा की मृत्यु हो जाने पर भी शान्तिभंग होने की कोई संभावना नहीं। दत्तक पुत्र सम्पत्ति का अधिकारी होगा। केवल देखना यह है कि अन्य आश्रितों को भी उचित सहायता मिलती रहे।'[४]

१. 'आगरा नैरेटिव' फारेन—हस्तलिखित अप्रकाशित प्रति—जुलाई, अगस्त तथा सितम्बर माह, १८३६ ई०।

२. 'आगरा नैरेटिव'—सन् १८५० ई०।

३. चार्ल्स बाल—'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी'—पृ० सं० ३०१ देखिए परिशिष्ट सं० १।

४. 'आगरा नैरेटिव'—सन् १८५० ई० शासकीय आज्ञा-पत्र–७ जनवरी १८५० ई०।

टिप्पणी : उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि 'रेड पैम्फ्लेट' के लेखक तथा अन्य अंग्रेज इतिहासकारों ने नानाराव द्वारा 'उत्तराधिकारपत्र' जाली बनाने आदि की बातें, जो उन्हें बदनाम करने व झूठा साबित करने के लिए लिखी हैं, सब असत्य हैं।

पेशवा की मृत्यु : विक्रमी संवत् १९०८ अथवा २८ जनवरी १८५१ ई० को पेशवा बाजीराव का स्वर्गवास हो गया। ३१ जनवरी को मैन्सन ने शासन को सूचना दी, कि पेशवा बाजीराव का दाहसंस्कार विधि-पूर्वक शान्ति के साथ सम्पन्न हो गया। शासन ने मैन्सन को यह आदेश दिया कि वह शीघ्रातिशीघ्र सूचित करें कि पेशवा बाजीराव ने कितनी धन-सम्पत्ति छोड़ी तथा कितने आश्रितों का भार उनके ऊपर था। इसी समय पेशवा के दूसरे सूबेदार रामचन्द्र पन्त ने अंग्रेजी शासन को एक प्रार्थना-पत्र प्रेषित किया। अंग्रेजों ने उसे पूर्ण तथा विस्तृत विवरण देने तथा आश्रितों की एक सूची संलग्न करने का आदेश दिया। कम्पनी के शासन-कर्त्ताओं ने बिठूर स्थित कमिश्नर को यह भी आज्ञा दी कि वह नानाराव को सूचित कर दे कि शासन ने उन्हें केवल धन-सम्पत्ति का ही उत्तराधिकारी स्वीकार किया है, पेशवा की उपाधि, राजनैतिक अधिकार तथा विशेष व्यक्तिगत सुविधाओं का नहीं। इसलिए उन्हें पेशवाई गद्दी प्राप्त करने के सम्बन्ध में कोई समारोह अथवा प्रदर्शन नहीं करना चाहिए।[१] नानाराव को यह भी सूचना दी गयी कि बिठूर की जागीर भी पेशवा बाजीराव के जीवनकाल तक ही अनेक सुविधाओं से सम्बद्ध थी। पेशवा तथा उनकी रानियों को न्यायालयों के अधिकारक्षेत्र (Jurisdiction) से मुक्ति केवल पेशवा के जीवनकाल तक ही थी। इतना ही नहीं मृत्यु के कुछ ही दिन पश्चात् जिन पेशवा का स्थान भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में उस समय सर्वमान्य था, उन्हीं की विधवा रानियों को कलकत्ता उच्चतम न्यायालय में उपस्थित होने के लिए 'सम्मन' प्रेषित किये गये। यह नानाराव तथा पेशवा परिवार के लिए असह्य तथा लज्जाजनक था[२]।

नानाराव की महत्त्वाकांक्षा : पेशवाई गद्दी सँभालने के पश्चात् नानाराव ने अपनी स्थिति सुधारने का प्रयत्न किया। सम्पत्ति को अपने हाथ में ले लिया तथा पेशवाई शस्त्रागार इत्यादि पर भी कड़ी देखरेख रखी। पेशवा के जीवनकाल में सूबेदार रामचन्द्र पन्त ही सर्वेसर्वा थे, तथा रानियाँ अतुल धन-सम्पत्ति पर अधिकार किये हुए थीं। पेन्शन का कोई भरोसा न होने पर नानाराव केवल धन-सम्पत्ति द्वारा ही अपना तथा अपने आश्रितों का

१. 'आगरा नैरेटिव'—७ जनवरी १८५० ई०, पैरा—६।

२. चार्ल्स बाल—'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी'-पृ० ३०२–३०३।

पालन-पोषण कर सकते थे। इसलिए उन्होंने सम्पत्ति पर एकाधिकार स्थापित कर लिया। यह विधवा रानियों को आपत्तिजनक प्रतीत होने लगा।[1] फलतः नानाराव के पेशवा-परिवार में से ही बहुत से प्रतिद्वन्द्वी खड़े हो गये। पेशवा की विधवा रानियों ने बिठूर-स्थित कमिश्नर से शिकायत की कि नानाराव उनके हीरे-जवाहरात तथा आभूषण भी अपने अधिकार में करना चाहते हैं। परन्तु कमिश्नर ने इन शिकायतों की जाँच करने पर ज्ञात किया कि उनमें कोई तथ्य नहीं था। फलतः शासन की ओर से प्रतिद्वन्दियों तथा नानाराव के अन्य विरोधियों को सूचना दे दी गयी कि श्रीमन्त धूँधूपन्त, पेशवा के नियमानुकूल उत्तराधिकारी हैं तथा अंग्रेजी शासन ने उनको अतुल धन-सम्पत्ति का उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया है। इसलिए पेशवा-परिवार के सब सदस्यों को नानाराव के सम्बन्धियों तथा आश्रितों को नाना धूँधूपन्त का यथोचित सम्मान करना चाहिए।[2] स्थानापन्न कमिश्नर ग्रेटहेड ने विधवा रानियों को सूचना देते हुए समझाया कि नाना धूँधूपन्त को पूर्ण रूप से उत्तराधिकारी समझने में ही उनकी भलाई है। आगरा प्रान्त के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर ने भी ग्रेटहेड के मन्तव्य को ही स्वीकार किया। साथ ही साथ यह भी आदेश दिया गया कि बिठूर में पृथक् कमिश्नर के कार्यालय की अब कोई आवश्यकता नहीं ; शासन, नाना धूँधूपन्त से कानपुर के कलेक्टर द्वारा पत्र-व्यवहार कर लिया करेगा।

उपाधिग्रहण : नाना धूँधूपन्त ने इन सब बातों की चिन्ता न करके पेशवाई गद्दी पर बैठते ही, पेशवा महाराज की समस्त उपाधियाँ ग्रहण कर लीं। उन्होंने तुरन्त ही अंग्रेजी शासन को एक प्रार्थना-पत्र लिखवाया व उसमें पेशवाई पेन्शन के बारे में पूछताछ की। इस प्रार्थना-पत्र के साथ एक पत्र, आपने राजा पीराजी राव भोंसले नामक वकील द्वारा भिजवाया।[3] कानपुर के कलेक्टर ने पत्रादि पाते ही जाँच की तथा मालूम किया कि नाना धूँधूपन्त ने पेशवाई उपाधियाँ ग्रहण कर ली हैं तथा प्रान्तीय शासन को प्रार्थना-पत्र लिखवा कर उसके साथ 'खरीता' भी भेजा है। शासन ने

१. 'आगरा नैरेटिव'—सन् १८५१ ई० द्वितीय चतुर्थांश—अप्रैल, मई, जून; १८५२ से १८६० ई० तक।

२. 'आगरा नैरेटिव'—सन् १८५१ ई०

३. वही : अक्तूबर, दिसम्बर १८५२ ई०।

कलेक्टर को यह प्रार्थना-पत्र, खरीता आदि वापस करने का आदेश दिया, और नानाराव को सूचित करवाया कि शासन उनकी उपाधियाँ स्वीकार नहीं करता। यदि इस विषय में उन्हें कुछ कहना है तो वह उपाधियों तथा पेन्शन के बारे में आगरा प्रांत क लेफ्टिनेन्ट गवर्नर द्वारा ब्रिटिश शासन को अपना प्रार्थना-पत्र प्रेषित कर सकते हैं।[1]

नानाराव पर पेशवाई का भार : श्रीमन्त नाना धूँधूपन्त किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गये। उनके पास परिस्थिति को सुलझाने का कोई उपाय न था। पेशवा वाली ८ लाख वार्षिक पेन्शन बन्द होने से बिठूर में संकटकालीन परिस्थिति उत्पन्न होने वाली थी। पेशवा-परिवार तथा आश्रितों के पालन-पोषण का पूरा भार नानाराव पर था। आश्रितों की संख्या लगभग ३०० थी यह सब व्यक्ति पेशवा बाजीराव से २७०० रु० मासिक वेतन के रूप में पाते थे। इनके अतिरिक्त परिवार में २६ विधवाएँ थीं, जिनका भरण-पोषण पेशवा द्वारा होता था। बाजीराव पेशवा के निकटतम सम्बन्धियों में निम्नलिखित प्रमुख थे[2]—

(अ) गंगाधर राव—द्वितीय दत्तक पुत्र,
(ब) रांडुरंग राव (पांडुरंगराव)—पौत्र,
(स) मैना बाई—प्रथम विधवा रानी,
(द) माई बाई—द्वितीय विधवा रानी,
क) योगा बाई—प्रथम पुत्री,
(ख) कुसुमा बाई—द्वितीय पुत्री,
(ग) चिम्माजी अप्पा—चचेरा पौत्र।

उपर्युक्त सभी वंशज अपनी-अपनी पृथक् गृहस्थी रखते थे।[3] परन्तु पेशवाई पेन्शन बन्द होने से उनके पालन-पोषण का भार केवल संचित धन-राशि से ही हो सकता था, किन्तु वह भी कब तक ?

पेशवाई संपत्ति : इसमें कोई सन्देह नहीं कि पूना से बिठूर आने के समय बाजीराव पेशवा अपनी अतुल धन-सम्पत्ति साथ लेते आये थे।

१. 'आगरा नैरेटिव'—अक्तूबर, दिसम्बर १८५१ ई०।
२. वही : अप्रैल, मई, तथा जून, १८५१ ई० पैरा—११, १२, १३।
३. 'नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज़ प्रोसीडिंग्ज़' पोलिटिकल डिपार्टमेंट सन् १८६४ ई०—पेशवा परिवार की स्त्रियाँ : परिशिष्ट संख्या २ अ।

शासकीय अनुमानों से पेशवा की जागीर तथा सम्पत्ति १६ लाख रुपये की थी, जिससे ८०,००० रु० वार्षिक आय थी। हीरे, जवाहरात तथा आभूषण इनके अतिरिक्त थे, जिनका मूल्य लगभग ११ लाख था।[1] इस स्थिति को देखकर स्थानापन्न कमिश्नर बिठूर ने शासन को संस्तुति दी कि श्रीमन्त नाना धूँधूपन्त को बाजीराव पेशवा की ८ लाख वार्षिक पेन्शन का कुछ भाग अवश्य दिया जावे, जिससे आश्रित परिवारों का भरण-पोषण होता रहे, यह धन-राशि धीरे-धीरे भले ही कम कर दी जाय। परन्तु प्रांतीय गवर्नर ने इसके विरुद्ध अपनी संस्तुति दी। उसके विचार से संचित धन-सम्पत्ति पेशवा-परिवार तथा आश्रितों के लिए पर्याप्त थी।

नाना साहब द्वारा अतिथि सत्कार : इतना सब होने पर भी श्रीमन्त नाना धूँधूपन्त ने अपने रहन-सहन तथा आचार-व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं किया। कानपुर में स्थित तथा आनेवाले अंग्रेज पदाधिकारियों को अथवा आगन्तुकों को नाना साहब बड़े आदर-सत्कार से बिठूर में आमन्त्रित करते थे। एक समकालीन संवाददाता लिखता है—"मैं नाना साहब को भली-भाँति जानता था। उनको उत्तरी प्रान्तों में सर्वोत्तम और उच्चकोटि का सत्कारकर्त्ता भारतीय नागरिक समझता था। अमानुषिक अत्याचार करने का विचार उनका कभी भी नहीं हो सकता था। नाना साहब को अंग्रेजों से मिलने पर राजनीति की बातें करने का बड़ा उत्साह था।" उपर्युक्त संवाददाता पुनः लिखता है कि:—

"नाना ने मुझसे कई प्रश्न किये, उनमें से ये याद हैं—

१—लार्ड डलहौजी क्या अवध के नवाब से मिलना पसन्द नहीं करेंगे? लार्ड हार्डिंज ने तो ऐसा अवश्य किया था।

२—क्या आप सोचते हैं कि कर्नल स्लीमैन, लार्ड डलहौजी को अवध हड़पने के लिए राजी कर लेगा? वह गवर्नर जनरल के शिविर में इस आशय से गया अवश्य है।"[2]

१. 'आगरा नैरेटिव'—अप्रैल, २—मई तथा जून, १८५१ ई० पैरा—१६।

परिशिष्ट ४, नाना साहब द्वारा २९ दिसम्बर १८५२ ई० का कम्पनी के संचालकों के नाम प्रार्थना-पत्र तथा उनका उस पर निर्णय।

२. चार्ल्स बाल : 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी'—पृ० ३०४, सन् १८५१ ई० की घटना का वर्णन।

दूसरा संवाददाता नाना साहब के पारिवारिक जीवन पर प्रकाश डालते हुए लिखता है— सन् १८५३ ई० में एक अंग्रेज आगन्तुक की मेम-साहबा नाना साहब के परिवार की स्त्रियों से मिलने गयीं। नाना साहब के भाई बाला भट्ट ने उन्हें अन्तःपुर में पहुँचा दिया। वहाँ पेशवा बाजीराव की विधवा रानियों से तथा पेशवा के चचेरे पौत्र की अल्पवयस्क वधू से, जो सब अति बहुमूल्य आभूषणों से लदी हुई थीं, भेंट हुई। स्त्रियों में पर्दा प्रथा तथा बच्चों पर कुछ बातचीत हुई। आगन्तुक स्त्रियों का खूब सत्कार हुआ। इस प्रकार स्त्री तथा पुरुष सभी अतिथियों का महीने भर तक बिठूर में आवभगत तथा सत्कार होता रहा।[1]

अतुल धन-सम्पत्ति होते हुए भी. नाना साहब को पैसे से लोभ न था। एक किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि उनके पास लगभग २५,००० रु० की एक बग्घी थी। उसमें कानपुर से बिठूर आते समय अकस्मात् एक बच्चा मर गया। बग्घी, नाना साहब तथा उनके परिवार के उपयोग के उपयुक्त नहीं रही क्योंकि वह अशुद्ध हो गयी थी। फलतः नाना साहब ने उसे जलवा दिया। उसे बेचना उनकी मर्यादा के अनुकूल न था। किसी अन्य पुरुष को, मुसलमान अथवा ईसाई को दे देने से, जिस अंग्रेज का बच्चा उसमें मर गया था यदि उसे मालूम हो जाता तो शोक होता; इसलिए नाना साहब ने उसका मूल्य न आँककर उसे जलवा डाला।[2]

नाना के वकील अज़ीमउल्ला खाँ : [3]नाना धूँधूपन्त ने पेन्शन प्राप्त करने के लिए पुनः लार्ड डलहौजी से लिखा-पढ़ी की, परन्तु उसने साफ मना

१–२. चार्ल्स बाल : 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' पृ० ३०६।

३. 'नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज़ प्रोसीडिंग्ज़' पोलिटिकल डिपार्टमेंट जनवरी से जून १८६४ ई०। इसके अनुसार अज़ीमउल्ला खाँ एक आया के पुत्र थे, इनका कद लम्बा तथा शरीर गठा हुआ था, नाक चपटी, रंग कुछ-कुछ पीलापन लिये हुए था। यह जाति के मुसलमान थे। प्रारम्भ में उन्होंने बहुत गरीबी में दिन काटे थे, उन्होंने कानपुर में अंग्रेजों के यहाँ खानसामा की नौकरी कर ली थी, तथा वहीं अंग्रेजी तथा फ्रेंच भी सीख ली थी। फिर उन्होंने कानपुर में राजकीय विद्यालय में अध्यापक के रूप में कार्य किया। नाना साहब को उनकी बातें बहुत पसन्द आयीं तथा उन्होंने अज़ीमउल्ला खाँ को अपनी सेवा में ले लिया। कुछ ही समय में वह नाना साहब के अत्यन्त विश्वासपात्र बन गये। इन्हीं को नाना ने विलायत भेजा तथा लौटने पर अपने साथ अपनी क्रान्ति-योजना से सम्बन्धित यात्रा में ले गये। क्रान्ति में तथा क्रान्ति के पश्चात् भी इन दोनों का साथ बना रहा।



अजीम उल्ला खाँ

कर दिया। अन्त में नाना ने निश्चय किया कि अज़ीमउल्ला खाँ को अपना वकील बना कर महारानी विक्टोरिया के पास विलायत भेजा जाये। अन्य भारतीय राजा भी इसी मार्ग का अनुसरण कर रहे थे। फलतः अज़ीमउल्ला खाँ विलायत पहुँचे। वहाँ महाराजा सतारा की ओर से भेजे हुए श्रीमन्त रंगो जी बापू मिले। दोनों लन्दन के होटलों में, पार्कों में विचार-विनिमय करते थे। अज़ीमउल्ला खाँ ने बहुत हाथ-पैर मारे। वह महारानी विक्टोरिया से भी मिले, परन्तु कम्पनी के संचालकों पर कोई प्रभाव न पड़ा। लन्दन में अज़ीमउल्ला खाँ ने एक 'भारतीय राजकुमार' के रूप में प्रसिद्धि पायी। इसी समय यूरोप में रूस से लड़ाई छिड़ गयी। अज़ीमउल्ला खाँ ने वापसी में फ्रान्स, इटली तथा रूस की यात्रा करने का निश्चय किया। इसी यात्रा में वे क्रीमिया की लड़ाई के मोर्चे 'सिबैस्टोपोल' में उन रुस्तमों (रूसियों) को भी देखने के लिए पहुँचे, जिन्होंने अंग्रेजों तथा फ्रांसीसियों की संयुक्त सेना को युद्ध में पराजित किया था।[1] भारत लौटने पर अज़ीमउल्ला खाँ ने नाना साहब को अपनी विफलता, अंग्रेजों की वास्तविक परिस्थिति तथा विदेशों के स्वतन्त्रता-आन्दोलन और स्वतन्त्र जीवन का आभास दिया।

नाना साहब की तीर्थ-यात्रा: अज़ीमउल्ला खाँ के सन् १८५६ ई० में विलायत से लौट आने के पश्चात् नाना साहब ने भारत के प्रमुख तीर्थ-स्थानों की यात्रा करने का निश्चय किया। उस समय लार्ड डलहौजी द्वारा यात्री-कर लग जाने से बड़ा असंतोष था। बड़े-बड़े राजा, रजवाड़े अपने ३००-४०० साथियों के साथ यात्रा करते व कर से मुक्ति प्राप्त करवाते थे। परन्तु नाना साहब का यात्रा करने का ध्येय धार्मिक न होकर राजनैतिक था।[2] इस यात्रा का भेद नाना साहब की लखनऊ-यात्रा के सम्बन्ध में कुछ

१. 'लन्दन टाइम्स' के संवाददाता रसेल ने अपनी 'माई डायरी इन इन्डिया' भाग १ में इसका वर्णन किया है। भारत में आकर लार्ड कैनिंग से भी उन्होंने अज़ीमउल्ला खाँ से अपनी 'सिबैस्टोपोल' में हुई भेंट की चर्चा की है। पृ० १६७, १६६।

२. रसेल: 'माई डायरी इन इन्डिया' भाग १, पृ० १७० में इस बात का संकेत किया गया है कि नाना साहब तथा अज़ीमउल्ला खाँ की यह संयुक्त यात्रा अनोखी थी। तीर्थ-स्थानों की जगह, यह उत्तरी भारत की प्रमुख सैनिक छावनियों जैसे मेरठ, अम्बाला तथा लखनऊ का दौरा कर आये।

खुल गया। वह १८५७ ई० में काल्पी, दिल्ली तथा लखनऊ गये। लखनऊ में अप्रैल मास में चीफ कमिश्नर लारेन्स से भी मिले।[1] लखनऊ शहर में उनका भव्य स्वागत हुआ; हाथी पर उनका जुलूस भी निकाला गया। इससे अंग्रेज पदाधिकारियों में कानाफूसी होने लगी। नाना साहब के लखनऊ से चले जाने के पश्चात् लारेन्स ने कानपुर के पदाधिकारियों को नाना से सतर्क रहने की सलाह दी। इसी यात्रा के बीच में नाना साहब ने काल्पी में बिहार के प्रसिद्ध राजा कुँवरसिंह से भेंट की, तथा क्रान्ति की गुप्त तैयारियों का श्रीगणेश हुआ। विशेष सूत्रों से यह पता चलता है कि सन् १८५७ ई० के आरम्भ में बारकपुर में कारतूस सम्बन्धी आग भड़कने के समय तक भारतीय राजनैतिक नेता, जिनमें नाना साहब, कुँवरसिंह, नवाब वाजिदअली शाह तथा उनके मन्त्री अली नक़ी खाँ, झाँसी की रानी, मौलवी अहमदउल्ला शाह, बहादुर शाह आदि प्रमुख थे, भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम की रूपरेखा निश्चित कर चुके थे।[2] तत्कालीन भारत में मुगल बादशाह बहादुर शाह को स्वतन्त्र भारत का भावी अध्यक्ष स्वीकार किया गया। हिन्दुओं की ओर से उन्हें बाजीराव द्वितीय के उत्तराधिकारी नाना धूँधूपन्त का पूर्ण सहयोग प्राप्त था। अवध के नवाब तथा उनके निर्वासित मन्त्री पहले से ही आगबबूला थे। ३३ वर्षीय नाना साहब ने अत्यन्त बुद्धिमत्ता से क्रान्ति की योजना बनायी। चारों ओर क्रान्ति की चिनगारियाँ सुलग रही थीं, बस विस्फोट होने भर की देर थी। कलकत्ता में गार्डन रीच के भवन में नवाब वाजिद अली शाह, अली नक़ी खाँ तथा दीवान टिकैतराय, बिहार में राजा कुँवरसिंह, लखनऊ में बेगम हजरत महल, फैजाबाद के कारावास में मौलवी अहमदउल्ला शाह, झाँसी में रानी लक्ष्मीबाई, तथा अन्य केन्द्रों पर स्थानीय क्रान्तिकारी नेता, क्रान्ति के आरम्भ होने की शुभ घड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे।

भारतीय सेनानियों में असन्तोष : राजनैतिक नेताओं, राजाओं तथा नवाबों में असन्तोष के साथ ही साथ भारतीय सेना में भी घोर असन्तोष व्यापक रूप से फैल गया। कम वेतन, अधिकारियों द्वारा दुर्व्यवहार,

---

१. गबिन्स : 'म्यूटिनी इन अवध' पृ० ३०, ३१।

२. 'रेड पैम्फ्लेट'—अथवा 'दि म्यूटिनी आव दि बंगाल आर्मी' पृ० १६, १७ तथा कलकत्ता सुप्रीम कोर्ट में नवाब अवध, टिकैतराय आदि की ओर से हैबियस कारपस की अर्जी तथा उस पर निर्णय।

कर्नल ह्वीलर जैसे अधिकारियों द्वारा खुल्लमखुल्ला ईसाई धर्म का प्रचार,[1] नई पोशाक (वर्दी) विषयक नियम, विदेशों को भारतीय सेना भेजने का नियम[2], तथा नये कारतूसों का आना, भारतीय सैनिकों को अपने दीन तथा धर्म की रक्षा के लिए लड़ मरने पर उद्यत करने के लिए पर्याप्त थे। उन्हें नेतृत्व की आवश्यकता थी। वह राजनैतिक असन्तोष से प्राप्त हो गयी। नाना साहब तथा कुँवरसिंह ने उत्तर प्रदेश तथा बिहार में, अली नकी खाँ द्वारा बंगाल में तथा मुगल बादशाह के दूतों द्वारा मेरठ, दिल्ली तथा अम्बाला में भारतीय छावनियों में सैनिकों से सम्पर्क स्थापित किया। सब जगह यही आवाज थी कि मेरठ में विद्रोह होते ही सब उठ खड़े होंगे। मेरठ छावनी उत्तरी भारत में मुख्य समझी जाती थी, वहीं भारतीय सेना की बंगाल टुकड़ी के ऐडजुटेण्ट जेनरल भी रहते थे। वहाँ अंग्रेजों की तीन कम्पनियाँ थीं। फलतः योजना के अनुसार मेरठ से ही क्रांति का श्रीगणेश हुआ। किन्तु नियत समय, ३१ मई, से पूर्व १० मई १८५७ ई० को[3] मेरठ में ८५ सैनिकों को कारावास में देखकर क्रान्तिकारी अधीर हो उठे। इसके फलस्वरूप पंजाब में, आगरा, कानपुर तथा लखनऊ में अंग्रेजों ने विस्फोट के पूर्व ही मोर्चाबन्दी कर ली तथा सतर्क हो गये। परन्तु संगठन तो पूरा हो चुका था। पीछे कदम नहीं हट सकता था। राजनैतिक नेताओं, बहादुर शाह, नाना, झाँसी की रानी, अवध की बेगमो, सभी ने क्रांति को सफल बनाने के लिए सर्वस्व लगा दिया। नाना की पेशवाई ने तथा बहादुर शाह की मुगल बादशाहत ने अपना पूर्ण बल लगाया। परन्तु १८५७ ई०

१. कलकत्ता समाचारपत्र—बंगाल हरकारू कर्नल व्हीलर के विरुद्ध कार्यवाही तथा लार्ड कैनिंग की ९ अप्रैल १८५७ ई० की आख्या। बृहस्पतिवार मई २८, १८५७ ई० 'फ्रेण्ड आव इंडिया' अप्रैल १७, १८५७ ई० पृ० ३६३।

२. 'कलकत्ता इंग्लिशमैन'—शुक्रवार १६ अक्तूबर १८५७ तथा 'नैवल ऐण्ड मिलिट्री गज़ेट' १५ अगस्त १८५७।

'जेनरल एन्लिस्टमेण्ट ऐक्ट' १८५६।

३. 'म्यूटिना नैरेटिव एन. डब्लू. पी. विलसन क्रेकक्राफ्ट'—'स्पेशल कमिश्नर द्वारा २४ दिसम्बर सन् १८५८ ई० को एडमान्स्टन, शासन सचिव, इलाहाबाद की सेवा में प्रेषित आख्या।

में इंग्लैण्ड की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ रही थी। उसको मात देना आसान न था।[1] सन् १८१५ ई० के पश्चात् यूरोप में तथा अन्य महाद्वीपों में अंग्रेजों का बोलबाला था। इंग्लैण्ड की नौसेना तथा उसका जहाजी बेड़ा सबसे शक्तिशाली था। इस समय इंग्लैण्ड की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी। वह अब साम्राज्यवादी युद्ध करने की ओर पग बढ़ा रहा था। फारस की खाड़ी में, चीन में, इंग्लैण्ड की सेनाएँ पड़ी हुई थीं। भारत में संकट-कालीन परिस्थिति उत्पन्न होते ही चीन से, फारस की खाड़ी, मिस्र, तथा इंग्लैण्ड से अंग्रेज सैनिक अनवरत रूप से भारत की ओर दौड़ पड़े। भारतवर्ष में महाभारत की भाँति युद्ध आरम्भ हो गया। भारतीय सैनिकों ने निर्भय होकर ब्रिटिश साम्राज्यवादी सैनिक-शक्ति से टक्कर ली। धन्य हैं वे वीर सेनानी जिन्होंने भारतीय स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए संग्राम में अपने जीवन की आहुति दे दी।

नाना साहब, तथा कानपुर में क्रान्ति : दिल्ली तथा मेरठ में क्रान्ति के श्रीगणेश की सूचना कानपुर १६ मई १८५७ ई० तक पहुँच गयी थी। कानपुर में उस समय तीन भारतीय पलटनें थीं; पहली त्रेपनवीं, तथा छप्पनवीं पैदल पलटनें, तथा द्वितीय 'लाइट कैवेलरी' रेजीमेन्ट अश्वा-रोही और ६१ अंग्रेज तोपची। वहाँ पर ६ तोपें थीं। सेना का नायकत्व ह्यू मेसी ह्वीलर के पास था। मेरठ तथा दिल्ली की घटनाओं की सूचना पाकर अंग्रेजों ने दो पुरानी बड़ी बारकों को अपने अधीन करके अपना गढ़ बनाया। खजाने व तोपखाने की सुरक्षा का प्रबन्ध किया। नाना साहब तथा उनके साथियों ने यह परिस्थिति देखकर कूटनीति से काम लिया।[2] अंग्रेजों को ऐसा विश्वास हो गया कि वह उन्हीं के हितैषी हैं। उन्होंने खजाने व तोपखाने की सुरक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया; अंग्रेज स्त्री-बच्चों को शरण देने का वचन दिया। मिस्टर हिल्लरसडन से तो उन्होंने अपने स्त्री-बच्चों को बिठूर भेजने की प्रार्थना की। यह तो उसने स्वीकार नहीं किया परन्तु नाना द्वारा खजाने की रक्षा-योजना मान ली। नाना को १५०० सैनिक

---

१. 'वाशिंगटन यूनियन' से—'कलकत्ता इंग्लिशमैन' दिनांक १५ अक्तूबर १८५७ में पुनः प्रकाशित।

२. तात्या टोपे का अप्रैल १८५६ ई० को दिया गया लिखित कथन : 'रिवोल्ट इन सेन्ट्रल इंडिया'—१८५७–५६ परिशिष्ट २७।

भर्ती करने की भी आज्ञा दे दी गयी। नाना ने २०० मराठों को दो तोपों के साथ खजाने पर तैनात कर दिया। इसमें लगभग आठ लाख रुपया था। २४ मई से ३१ मई तक अंग्रेज प्रत्येक पल क्रान्ति होने की सम्भावना से आतंकित रहे। परन्तु २ जून को ह्वीलर ने सैनिकों की एक कम्पनी लखनऊ को रवाना की। ३ जून को फतेहगढ़ में क्रान्ति के दमन के लिए कुछ सैनिक भेजे गये परन्तु वह रास्ते ही से लौट आये। ४ जून को ह्वीलर को यह विश्वास होने लगा कि अब सेना विद्रोह करेगी। उसी दिन रात्रि को २ बजे घुड़सवारों ने क्रान्ति का श्रीगणेश किया। क्रान्तिकारी सैनिक सीधे हाथीखाने को गये और वहाँ से ३६ हाथी लेकर खजाने की ओर गये। यहाँ नाना के वीर मराठों से मिलकर खजाने से ८½ लाख रुपया लूटकर हाथियों व बैलगाड़ियों में लादकर क्रान्तिकारी सैनिक कूच कर गये। रात्रि को कानपुर नगर में कोलाहल मच गया परन्तु स्त्रियों व बच्चों को कोई हानि नहीं पहुँचाई गयी।[1] प्रातःकाल तक तोपखाने पर अधिकार हो गया। अंग्रेज अपने बारकों वाले गढ़ में कैद हो गये। क्रान्तिकारियों ने मुहम्मदी पताका फहरायी। वे दिल्ली चलने के लिए कल्याणपुर में एकत्र हुए।

कल्याणपुर में नाना साहब : खजाने तथा तोपखाने के ऊपर पूर्ण अधिकार हो जाने के पश्चात् क्रान्तिकारी सैनिकों ने दिल्ली की ओर कूच करने का प्रबन्ध किया। कल्याणपुर में नाना साहब भी सैनिकों के साथ थे। वहाँ पर उन्होंने अत्यन्त बुद्धिमत्ता तथा दूरदर्शिता से सैनिकों का पथ-प्रदर्शन किया। उन्होंने पहले कानपुर को पूर्णरूप से अपने अधिकार में कर लेने के लिए आदेश दिये।[2] उनके विचार से दिल्ली जाना ठीक न था। वास्तविक स्थिति को देखते हुए यही उचित भी था। मेरठ में क्रान्ति होने के पश्चात् क्रान्तिकारी सेना दिल्ली चली गयी परन्तु दिल्ली से पुनः आगरा प्रान्त पर पूर्ण अधिकार न प्राप्त हो सका, स्थान-स्थान पर अंग्रेजों की सैनिक टुकड़ियाँ रह गयीं। आगरा पर विजय प्राप्त न हो पायी थी। ऐसी दशा में कानपुर

---

१. 'रेड पैम्फलेट्स'—पृ० १३१–१३२।

२. 'नन्हे नवाब की डायरी'—यह कानपुर के एक नागरिक थे, इन्होंने ५ जून से २ जुलाई १८५७ तक का वृत्तान्त अपनी डायरी में लिखा है। 'सेलेक्शन्स फ्राम स्टेट पेपर्स-इंडियन म्यूटिनी' १८५७-५८ लखनऊ तथा कानपुर, खण्ड ३, परिशिष्ट पृ० ८ व ९।

में कर्नल ह्वीलर की सेना को बारकों में छोड़कर दिल्ली जाना कानपुर के क्रान्तिकारियों के लिए आत्महत्या करना था।

कल्याणपुर में नाना साहब की कार्यवाहियों के बारे में विभिन्न मन्तव्य प्रसिद्ध हैं। अंग्रेज इतिहासकारों ने नाना साहब की व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा को कानपुर लौटने का मुख्य कारण बताया है। सिप्री में दिये हुए तात्या के बयान में उससे कहलवाया गया है कि नाना को सैनिक दिल्ली ले जाना चाहते थे, परन्तु जब उन्होंने मना किया तो वे सैनिक उन्हें कानपुर पकड़ कर ले आये और उसी समय से नाना साहब क्रान्तिकारी सेना के साथ हो गये। परन्तु इन पर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता। प्रथम तो यही संदिग्ध है कि सिप्री में वास्तविक तात्या को फाँसी हुई या नहीं ? १८६३ ई० में बीकानेर में तात्या के जीवित रहने का समाचार सच था या फाँसी होने की बात ?[1] दूसरा दृष्टिकोण अंग्रेज इतिहासकारों का है[2] जिनके लिए यह समझना कठिन था कि नाना साहब ने दिल्ली जाने से सेना को रोककर कानपुर को अंग्रेजों के ही आधीन क्योंकर नहीं छोड़ दिया। अस्तु, नाना साहब ने सैनिक तथा राजनीतिक दृष्टि से कल्याणपुर में दिल्ली न जाने का जो आदेश दिया वह युक्तिसंगत था। कानपुर लौट आने के और भी कई कारण थे। शेफर्ड ने २१ अगस्त १८५७ की अपनी आख्या में स्पष्ट रूप से बताया है कि अवध की तीसरी अश्वारोही बैट्री के सैनिकों ने ५ जून को ही कल्याणपुर पहुँचकर नाना साहब से बताया कि क्रान्तिकारी सेना को कानपुर लौट चलना चाहिए। वहाँ अंग्रेजों पर आक्रमण करने से बहुत से लाभ थे। वहाँ की गंगा की नहर में ४० नावें गोला-बारूद तथा गोलियों से ठसाठस भरी पड़ी हुई थीं। वह कानपुर से रुड़की भेजने के लिए तैयार की जा रही थीं। इतनी बड़ी युद्ध-सामग्री पर अधिकार करना परमावश्यक था। फलतः कल्याणपुर से लौटते ही सैनिकों ने समस्त युद्ध-सामग्री पर

---

१. 'नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज़ प्रोसीडिंग्ज़'—१८६३-६४ ई०, अजमेर मारवाड़ के डिप्टी कमिश्नर का पत्र—दिनांक २३ जून १८६३ ई०।

२. के 'सिप्वायवार' द्वारा नाना साहब तथा बहादुरशाह में मतभेद होने की सम्भावना कल्पित प्रतीत होती है। इसका स्पष्टीकरण नाना साहब के ६ जुलाई १८५७ ई० के घोषणा-पत्र से हो जाता है जिसके उपरान्त ८ जुलाई को कानपुर में मुहम्मदी झण्डा फहराया गया।

अधिकार कर लिया और गोलन्दाज खल्लासी इत्यादि भी उनसे मिल गये।[1]

नाना साहब द्वारा युद्ध-घोषणा : कल्याणपुर में युद्ध-योजना सम्पन्न करने के पश्चात् नाना साहब क्रान्तिकारी सेनाओं के साथ कानपुर लौटे। आते ही उन्होंने कर्नल ह्वीलर को पत्र द्वारा सूचना दे दी कि वह उनसे युद्ध करने आ रहे हैं।[2] कितना महान् आदर्श था। शत्रु पर अचानक आक्रमण करना नाना साहब के धर्म के विरुद्ध था। फलतः ६ जून १८५७ ई० को बारकों में स्थित अंग्रेजी सेना पर आक्रमण कर दिया गया।[3] परन्तु अंग्रेजों ने इतनी मोर्चाबन्दी कर ली थी कि उन्हें सरलता से पराजित करना सम्भव न था। नाना साहब ने बारकों को चारों ओर से घेर लिया और उन पर गोलाबारी प्रारम्भ की। परन्तु नाना साहब को कानपुर के जिले में तथा अन्य स्थानों पर भी क्रान्ति की गतिविधि को देखना था। फलतः उन्होंने अपने सैनिकों को कई दलों में बाँट दिया। तात्या टोपे तथा राव-साहब ने कानपुर के दक्षिणी भाग में—यमुना पार बुन्देलखण्ड तथा ग्वालियर तक—क्रान्ति का बीड़ा उठाया। बाँदा में नवाब अली बहादुर ने १४ जून १८५७ ई० को क्रान्तिकारी शासन स्थापित किया। २७ जून तक जिले के लगभग सभी खजानों पर उनका अधिकार हो गया था और तह-सीलदार व अन्य पदाधिकारी स्वतन्त्र शासन के अन्तर्गत आ गये थे। बाँदा जिले में चित्रकूट-कर्वी में पेशवा-वंश के नारायणराव तथा माधोराव रहते थे। उन्होंने बाँदा में क्रान्ति की सफलता का समाचार सुनते ही कर्वी में घोषणा करवा दी कि यहाँ पेशवाई राज्य[4] स्थापित हो गया। पेशवा तथा

१. 'इंडियन म्यूटिनी'—राजकीय प्रपत्रों का संकलन-खण्ड २ लखनऊ, कानपुर—पृ० १२४।

२. 'म्यूटिनी नैरेटिव्ज'—नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज़—कानपुर नैरेटिव पृ० ५।

३. मौब्रे थामसन की पुस्तक व 'स्टोरी आव कानपुर' के अनुसार यह पत्र ७ ता० को प्राप्त हुआ था। परन्तु कर्नल विलियम्स, जिन्होंने शासन की ओर से कानपुर में क्रान्ति की पूर्ण छानबीन की थी, ने यह घटना ६ जून को ही बतलायी है।

४. नारायणराव तथा माधोराव के विरुद्ध शासन द्वारा प्रेषित अभियोग पत्र—जुलाई १० सन् १८५८ ई० बाँदा फाइल संख्या XVIII—36 Part II कलेक्ट्रेट रिकार्ड्स, सेंट्रल रिकार्ड रूम, इलाहाबाद।

नवाब अली बहादुर ने बाँदा जिले को दो भागों में बाँट लिया। परन्तु दोनों ही पेशवा नाना साहब की अधीनता स्वीकार करते थे। कर्वी में पेशवा की अतुल धन-सम्पत्ति तथा युद्ध-सामग्री क्रान्तिकारी सेना के लिए उपलब्ध थी। वहाँ उन्होंने तोप ढालने तथा अन्य युद्ध-सामग्री बनाने का भी बड़ा अच्छा प्रबन्ध कर रखा था। यमुना के मुख्य-मुख्य घाटों पर दृढ़ चौकियाँ बना दी गयी थीं। नाना साहब तथा कर्वी के नारायणराव में पत्र-व्यवहार चलता रहा। कर्वी से राजापुर तथा मऊ तक क्रान्ति के दूत भेजे गये। दानापुर तथा नागोड के सैनिकों को कर्वी की क्रान्तिकारी सेना में भर्ती किया गया। नारायणराव के पकड़े जाने के पश्चात् कर्वी में ४२ तोपें तथा २,००० बन्दूकें मिलीं; इनके अतिरिक्त कानपुर के बारूदखाने से अंग्रेजी पेटियाँ तथा अन्य युद्ध-सामग्री भी प्राप्त हुई।[1] इन सबसे ज्ञात होता है कि कर्वी तथा कानपुर की क्रान्ति में कितना सम्बन्ध था।

बाँदा के नवाब अली बहादुर नाना साहब का कितना आदर-सत्कार करते थे, यह उनके एक पत्र से ही स्पष्ट हो जायगा—

"सेवा में,

बिठूर के नाना साहब बहादुर
मेरे पूज्य तथा आदरणीय चाचा।

आप सदैव सर्वोच्च बने रहें........

"अपनी शुभ कामनाएँ तथा चरणस्पर्श के पश्चात् मैं आपको स्मरण दिलाना चाहता हूँ कि कुछ दिन पहले मैंने अपने विश्वासपात्र दूत माधोराव पन्त के हाथ एक पत्र भेजा था, उसमें आपको बाँदा की परिस्थिति से अवगत कराया था, साथ ही साथ आपसे कुछ सैनिक तथा युद्ध-सामग्री भेजने की प्रार्थना की थी.........................

"माधोराव के प्रार्थनापत्र से यह शुभ समाचार पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप बुधवार........ को सिंहासनारूढ़ हो गये हैं। ईश्वर आपको चिरायु करे। मैं २१ स्वर्णमुद्रा नजर के रूप में भेजता हूँ, आशा है स्वीकार करेंगे।

आपकी हुजूर सरकार सदैव बनी रहे।"[2]

---

१. नारायणराव माधोनारायण व ब्रिटिश शासन का मुकदमा—फाइल संख्या XVIII—36 Part II १० जुलाई सन् १८५८ ई०।

२. नवाब अलीबहादुर के व्यक्तिगत पत्र-व्यवहार के डेस्क में से प्राप्त पत्र की कच्ची प्रति बाँदा-फाइल सं० XVIII—35।

नाना साहब व इलाहाबाद के क्रान्तिकारी : कानपुर की सुरक्षा इलाहाबाद तथा वाराणसी की सुरक्षा पर निर्भर थी। नाना साहब तथा क्रान्तिकारियों ने इन दोनों स्थानों के सैनिक महत्व को कम समझा अथवा देर में समझा। फलतः दोनों स्थानों पर क्रान्ति समय पर आरम्भ हो जाने पर भी सफल न हो सकी। वाराणसी तथा इलाहाबाद में जून माह में ही क्रान्तिकारियों की पराजय हुई। क्रान्तिकारी सैनिकों के लिए कानपुर की ओर भागने के अतिरिक्त कोई चारा न था। इलाहाबाद की घटनाओं का कानपुर पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा।

इलाहाबाद में मौलवी लियाकत अली के नेतृत्व में ६ जून को स्वतन्त्रता की घोषणा हुई। परन्तु कर्नल नील ने वाराणसी से आकर ता० ११ जून को इलाहाबाद के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। यह सन् १८५७ ई० के स्वतन्त्रता संग्राम में अपना विशेष महत्व रखता है।[1] एक ओर तो इस पर अधिकार हो जाने के पश्चात् अंग्रेज सैनिकों ने अमानुषिक अत्याचारों तथा हत्याकाण्डों का श्रीगणेश किया। दूसरी ओर भारतीय सैनिकों में प्रतिशोध तथा घृणा की ऐसी भावना जागृत कर दी कि उनकी ओर से इसके उपरान्त जो भी कुछ हत्याएँ हुईं वह क्षम्य हैं। निःसन्देह कानपुर में सती-चौरा घाट पर तथा १६ जुलाई को जिन अंग्रेजों की बलि दी गयी वह केवल इलाहाबाद के हत्याकाण्ड का प्रत्युत्तर थी। इलाहाबाद में जो कुछ हुआ उसका वृत्तान्त भोलानाथ चन्दर यात्री द्वारा रचित पुस्तक 'ट्रैवेल्स् आफ ए हिन्दू' से मिलता है—[2]

"........इलाहाबाद में जो सैनिक शासन स्थापित हुआ वह अमानुषिक था, उसकी तुलना पूर्वी अत्याचारों से स्वप्न में भी नहीं हो सकती।........ इसकी किसी को चिन्ता नहीं थी कि लालकुर्ती वाले सिपाही किसको मार रहे हैं। निरपराध अथवा अभियुक्त, क्रान्तिकारी तथा स्वामिभक्त, भलाई

---

१. पार्लियामेन्ट्री पेपर्स' 'म्यूटिनी इन ईस्ट इन्डीज'—१८५७—संलग्न प्रपत्र संख्या १३५ : नील का भारतीय शासन के सचिव को पत्र, इलाहाबाद दिनांक—जून १४, १८५७।

२. के : 'हिस्ट्री आव दि सिप्वाय वार इन इन्डिया'—पृ० ६६८ परिशिष्ट इलाहाबाद में दण्ड—पृ० २७०। 'ट्रैवेल्स आफ ए हिन्दू' भोलानाथ चन्दर द्वारा रचित पुस्तक से।

चाहनेवाला अथवा विश्वासघाती, प्रतिशोध की लहर में सब एक ही घाट उतारे गये।................

"...........लगभग ६,००० मनुष्यों की हत्या की गयी, पेड़ों पर उनकी लाशें प्रत्येक टहनी पर दो या तीन लटकी हुई थीं।........तीन माह तक लगातार, प्रातःकाल से संध्या तक ८ बैलगाड़ियाँ पेड़ों तथा स्तम्भों से शव उतार कर ले जाती थीं, तथा गंगा में प्रवाहित कर देती थीं..............."

मौलवी लियाकत अली ने स्वयं इस दयनीय अवस्था का वर्णन दिल्ली को भेजे हुए परवाने में किया था। उन्होंने बहादुर शाह को स्पष्ट रूप से बता दिया कि अंग्रेजों के अमानुषिक अत्याचार के कारण इलाहाबाद के नागरिक गाँवों की ओर भाग गये हैं, तथा नील ग्रामों को जला रहा है।[1] फलतः इलाहाबाद छोड़कर कानपुर लखनऊ की ओर जाने के अतिरिक्त उनके पास कोई चारा न था। १२ जून से १८ जून तक के अल्प समय में नील ने इलाहाबाद में स्वतन्त्र शासन को हिला दिया। १८ जून को मौलवी लियाकत अली ने अपने ३०० साथियों के साथ इलाहाबाद से कूच कर दिया। १८ जून से नगर तथा आसपास के गाँवों में नील ने निन्दनीय अमानुषिक शासन स्थापित किया।[2] इसकी सूचना फतेहपुर तथा कानपुर में पहुँचनेवाले सैनिकों से प्राप्त होती थी। भारतीय क्रान्तिकारियों के मन में प्रतिशोध तथा रोष की भावना उत्पन्न होना अवश्यम्भावी था।

२३ जून १८५७ : कानपुर में बारकों में घिरे हुए अंग्रेज सैनिकों के विरुद्ध युद्ध जारी था। २३ जून १८५७ ई० को प्लासी के युद्ध की शताब्दी के दिन क्रान्तिकारी सेना ने बड़े उत्साह से बारकों पर आक्रमण किया। अंग्रेजों की दशा शोचनीय थी। उनके पास खाद्य सामग्री समाप्त हो रही थी। कहीं से सहायता आने की आशा न थी। इलाहाबाद में अंग्रेज

---

१. पार्लियामेन्ट्री पेपर्स—'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज़'—१८५७ : नील का पत्र : दिनांक इलाहाबाद जून १९, १८५७ : "I swept and destroyed these villages."

२. नील द्वारा १८ जून १८५७ का लारेन्स के नाम तार : इसमें यह सूचना दी गयी थी कि वह कानपुर की सहायता के लिए ४०० अंग्रेज तथा ३०० सिक्ख भेज रहा है। यह दल ३० जून तक इलाहाबाद से न चल सका।

सैनिक अमानुषिक अत्याचारों में ही लीन थे । नाना साहब ने अंग्रेजों को मिसेज जैकोबी के द्वारा निम्नलिखित पत्र भिजवाया :

"इन सैनिकों तथा अन्य व्यक्तियों को, जो लार्ड डलहौजी की कार्य-वाहियों से सम्बन्धित नहीं हैं और हथियार डालने को प्रस्तुत हैं, इलाहा-बाद जाने के लिए सुरक्षित मार्ग दे दिया जायगा।"[1] कर्नल ह्वीलर अन्य-मनस्क था, परन्तु अन्य अंग्रेज सैनिक हथियार डालने पर उतारू थे। इस-लिए नाना साहब की शर्तें स्वीकार कर ली गयीं। फलतः २७ जून को प्रातः काल नाना साहब द्वारा प्रदत्त वाहनों में, जिनमें हाथी, पालकी इत्यादि भी थीं, अंग्रेज सतीचौरा घाट की ओर रवाना हुए। वहाँ उनके लिए ३६ नावें तैयार थीं। गंगा में जून के अन्तिम सप्ताह में जल कम था। वहाँ यह देखा गया कि अंग्रेज अपने साथ शर्तों के उल्लंघन में पर्याप्त हथियार तथा युद्ध-सामग्री ले आये थे।[2] ६ बजे प्रातःकाल नदी के किनारे अंग्रेजों के लिए एकत्रित नावों में आग लग गयी। नाविक उन्हें नदी में छोड़कर भाग खड़े हुए। उसी समय अंग्रेजों को गोलियों की बौछार से किनारे पर आने से रोका गया। गंगा के दोनों तरफ बड़ी दूर तक क्रान्तिकारी सेनाओं का जमघट था—भागते हुए अंग्रेज सैनिकों के लिए नहीं वरन् इलाहाबाद से आनेवाली अंग्रेज सेनाओं से युद्ध करने के लिए। सन् १८५७ ई० की क्रान्ति की बाँदा की फाइलें देखने से ज्ञात होता है कि यमुना तथा गंगा के घाटों की सुरक्षा का क्रान्तिकारियों ने विशेष प्रबन्ध किया था। विशेषतः इलाहाबाद की पराजय के पश्चात् वे घाटों को अरक्षित कैसे छोड़ सकते थे ?

सन् १८५७ ई० के स्वतन्त्रता-संग्राम में नदियों का महत्त्व पूर्णतया स्पष्ट हो गया था। अंग्रेजों ने अपनी नौ-सेना-कुशलता का तुरन्त प्रयोग किया। बनारस तथा इलाहाबाद तक उन्होंने स्टीमर द्वारा सैनिक सहायता पहुँचायी। वर्षा ऋतु आरम्भ होते ही कलकत्ता से इलाहाबाद तक स्टीमरों

---

१. कर्नल बूरशियर—'एट मन्थ्स कैम्पेन'—सन् १८५८ ई० में लन्दन से प्रकाशित।

२. 'सेलेक्शन्स फ्राम स्टेट पेपर्स' :—लखनऊ तथा कानपुर : खण्ड ३ फिचेट बाजेवाले का कथन पृ० ५७ : इन्हीं नावों में से एक नाव के बचेखुचे सैनिकों ने शिवराजपुर में क्रान्तिकारी सैनिकों से युद्ध किया। अतएव वह शस्त्रहीन न थे। इसलिए उन पर आक्रमण होना अनिवार्य था।

का ताँता बँध गया।[1] क्रान्तिकारी सेना के पास नावों का बेड़ा न था और न नौ-सेना संगठन की कुशलता। फलतः बनारस, इलाहाबाद के पश्चात् कानपुर की पराजय अवश्यम्भावी थी।

नाना साहब, तथा सतीचौरा घाट पर अंग्रेजों की बलि : अंग्रेज इतिहासकारों ने इस घटना का पूर्ण उत्तरदायित्व नाना साहब पर डाला है। यह लांछन शासन की ओर से कानपुर में कर्नल विलियम्स द्वारा एकत्रित क्रान्ति सम्बन्धी कथन सामग्री पर निर्भर किया है। परन्तु मॉड ने 'मेमोरीज आव दी म्यूटिनी' प्रथम खण्ड में इस सामग्री का विश्लेषण करके कई बातों पर सन्देह प्रकट किया है।[2] उनमें से दो महत्त्वपूर्ण हैं—

(१) नाना साहब स्वयं इस घटना के लिए कहाँ तक उत्तरदायी थे ?

(२) सतीचौरा घाट पर बलि देने की योजना यदि पहले बनायी गयी तो किसने बनायी ?

मॉड ने स्पष्टतः लिखा है कि सब सामग्री देखने पर भी यह कहना कठिन है कि नाना साहब ने इस बलि के लिए आज्ञा दी। उनका परवाना जो नील ने इसके पक्ष में प्रेषित किया है, ता० २६ जून को प्रकाशित हुआ था। उसमें इस घाट की घटना के सम्बन्ध में केवल इतना ही महत्त्वपूर्ण है—[3]

"........इस तरफ नदी में पानी कम है, दूसरी ओर नदी गहरी है। नावें दूसरे किनारे पर जायँगी तथा ३ या ४ कोस तक ऐसे ही जायँगी।

---

१. पार्लियामेन्ट्री पेपर्स—संलग्न प्रपत्र-संग्रह संख्या १३, पृष्ठ ३०१। 'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज़' १८५७ तथा प्रपत्र सं० १३१ संग्रह १६, पृ० ३३६।

२. मॉड—'मेमोरीज आव दि म्यूटिनी' खण्ड १।

३. पार्लियामेन्ट्री पेपर्स—'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज'—नं० ४, १८५७ लन्दन।

संलग्न प्रपत्र, संख्या २१, संग्रह संख्या—२, नानासाहब के परवाना नं० ३२ का अनुवाद—१७वीं रेजीमेंट के सूबेदार बन्दूसिंह के नाम—'रिवोल्ट इन सेन्ट्रल-इंडिया'—१८५७-५६; पृ० सं० २७३।

"About 11 O'clock, some sovars and sepoy came back bringing muskets and some double barrelled guns, which they said they had taken from the Europeans at the ghat, and killed all the men. They did not mention the women and children."

"इन अंग्रेजों के मारने का यहाँ कोई प्रबन्ध नहीं किया जायगा। क्योंकि यह किनारे पर ही रहेंगे, इसलिए तुम्हें सतर्क रहना चाहिए। नदी के दूसरे तट पर उनका काम तमाम करके तथा विजय प्राप्त करके तुम यहाँ आना।

"सरकार तुम्हारे कार्यों से बहुत प्रसन्न है और यह बहुत प्रशंसनीय भी है; अंग्रेज लोग कहते हैं कि वह इन नावों पर कलकत्ता चले जायँगे"।

"३ ज़ीक़ाद—१२७३ हि० १० बजे रात्रि को—शुक्रवार"।

२७ जून को सतीचौरा घाट पर नाना साहब के परामर्शदाताओं में सब न थे। हरदेव के मन्दिर में बालाराव, अजीमउल्ला तथा अन्य सरदार, जो अंग्रेजों को घाट तक लाये थे, विराजमान थे। तात्या को भी वहाँ बताया जाता है, परन्तु इसका आधार केवल उनका लिखित कथन, जो सिप्री में दिया था, बताया जाता है।[1] जब वही संदिग्ध है तब आगे कुछ निश्चय-पूर्वक कहना कठिन है।[2] मॉड द्वारा केवल इतना बतलाया जाता है कि ९ बजे बालाराव तथा अजीमउल्ला की आज्ञा से बिगुल बजा, तथा नावों पर गोलियों की बौछार की गयी।[3] घाट पर सहस्रों मनुष्यों की भीड़ थी। उनमें इलाहाबाद तथा वाराणसी से आये हुए क्रान्तिकारी सैनिक भी थे। फलतः रोष तथा प्रतिशोध की ज्वाला से प्रेरित होकर घाट पर स्थित सैनिकों ने अंग्रेजों की बलि दे दी। नाना साहब को जैसे ही इसकी सूचना मिली उन्होंने स्त्रियों को बचाने का आदेश दिया तथा स्त्रियों व बच्चों को बन्दी बनाकर कानपुर ले जाया गया। उपर्युक्त परवाने से, यदि उसका अनुवाद सही है, दो बातें स्पष्ट होती हैं—

(१) नाना साहब ने अंग्रेजों की नावों पर गोलियाँ बरसाने या उन्हें

१. 'रिवोल्ट इन सेन्ट्रल इंडिया'—तात्या का लिखित कथन—सिप्री दिनांक १० अप्रैल १८५९ ई०।

२. 'नार्थ वैस्टर्न प्राविंसेज़ प्रोसीडिंग्स'—पोलिटिकल डिपार्टमेंट—जनवरी से जून १८६४ ई० गोपालजी दक्षिणी ब्राह्मण का कथन।

३. मॉड—'मेमोरीज आव दि म्यूटिनी'—पृ० ११३।
"The Nana and his court possessed little or no authority over the rebel troops, who, it is evident, did just as, they pleased—manned the attacking batteries and joined in the assault or not as they deemed fit."

सतीचौरा घाट पर मारने की आज्ञा नहीं दी थी। उन्होंने केवल बन्दूसिंह को सतर्क रहने का आदेश दिया था ; वह भी, जब तक कि नावें ३ या ४ कोस तक दूसरी ओर के किनारे-किनारे जायँ। इस ओर उन पर धावा बोलने की मनाही की गयी थी।

(२) अंग्रेजों पर विजय प्राप्त करके बन्दूसिंह सरकार के सम्मुख आये। दूसरे किनारे पर यथोचित स्थान देखकर उनका काम तमाम कर दिया जाय।

(It is necessary that you should be prepared and make place to kill and destroy them on that side of the river, and having obtained a victory come here.) १

इस वाक्य के प्रथम तथा अन्तिम भाग पर अधिक ध्यान देने से केवल यही प्रतीत होता है, कि या तो अनुवाद सही नहीं है, अथवा परवाने में बन्दूसिंह को विशेष परिस्थिति में अंग्रेजों की, केवल विजय प्राप्त करने में बलि देने की आज्ञा दी गयी थी। इस प्रकार की आज्ञा तो दिल्ली के सर्व-प्रथम घोषणापत्र में भी दी गयी थी। क्रान्ति के आरम्भ से ही यह आवाज थी कि "फिरंगी को मारो"।

अंग्रेज इतिहासकारों ने उपर्युक्त घटना पर मनमाने मन्तव्य बनाये हैं। चार्ल्स बाल नामक इतिहासकार ने तो दिल्ली के घोषणा-पत्र में ही इस दुर्घटना की योजना खोज निकाली है।

---

१. गबिन्स 'दि म्यूटिनीज इन अवध—पृ० २०६ के अनुसार नील ने यह परवाना नाना साहब की आज्ञापत्र-पुस्तक (Native Order Book) में पाया था। यह १७वीं रेजीमेन्ट, जो नदी के दूसरे किनारे पर स्थित थी, के सूबेदार के नाम था। इसमें यह उल्लेख नहीं कि यह परवाना बन्दूसिंह सूबेदार को मिला अथवा नहीं; यदि मिला तो किस दिन। ३ ज़ीक़ाद, १२७३ हि० के अनुसार २६ जून १८५७ तारीख निकलती है तथा २७ ता० के सबेरे ही ६ बजे यह दुर्घटना हुई। इस परवाने के लिखने का समय १० बजे रात्रि बताया जाता है। यह कहना कठिन है कि यह रात्रि में बन्दूसिंह को मिला, मिला भी या नहीं।

दिल्ली का घोषणा-पत्र

"समस्त हिन्दू व मुसलमानों को, जो इस समय दिल्ली तथा मेरठ की अंग्रेजी सेनाओं के भूतपूर्व अधिकारियों के साथ हैं, यह विदित हो कि सब यूरोपियन इस बात पर एकमत हैं कि—

"प्रथम सेना का धर्म-भ्रष्ट किया जाय तत्पश्चात् कड़े अनुशासन से समस्त प्रजा को ईसाई बनाया जावे। वास्तव में गवर्नर जनरल की निर्विवाद आज्ञाएँ हैं कि सुअर तथा गऊ की चर्बी से बने हुये कारतूस सैनिकों को दिये जायँ; यदि वह १०,००० हों और इसका विरोध करें तो उन्हें तोप से उड़ा दिया जाय, यदि ५०,००० हों तो निशस्त्र कर दिया जाय।

"इस कारण से धर्म की रक्षा के लिए हमने सब प्रजा के साथ उपाय निकाला है; और यहाँ एक भी काफिर को जीवित नहीं छोड़ा है। दिल्ली के बादशाह को इस शर्त पर सिंहासनारूढ़ किया है कि जो सैनिक अपने यूरोपियन अधिकारियों को कत्ल करेंगे तथा बादशाह को स्वीकार करेंगे, उन्हें सदैव दुगुना वेतन मिलेगा। हमारे हाथ में सैकड़ों तोपें आ गयी हैं; अतुल धनराशि भी प्राप्त हुई है; इसलिए यह आवश्यक है कि जो भी ईसाई धर्म न स्वीकार करना चाहें, वह हमारे साथ मिल जायँ, साहस से काम लें तथा उन काफिरों का कहीं पर भी चिह्न न छोड़ें।

"प्रजा में जो भी सेना को सामग्री देने में व्यय करेगा, वह अधिकारियों से रसीद लेकर अपने पास रखे, उसके लिए उसे बादशाह से दूनी कीमत मिलेगी। इस समय जो भी कायरपन दिखायेगा और अंग्रेजों की धोखा देनेवाली

१. कलकत्ता का समाचारपत्र—'बंगाल हरकारू तथा इंडिया गज़ट'—दिनांक जून १३, १८५७ ई० [शनिवार की प्रति में प्रकाशित—पृ० ५५८। सम्पादक के नाम 'एच' की ओर से दिनांक १२ जून १८५७ ई०] के पत्र में दिल्ली घोषणापत्र का अनुवाद संलग्न था। यह घोषणा-पत्र सर्वप्रथम ८ जून को मुस्लिम समाचार-पत्र 'दूरबीन' में प्रकाशित हुआ था, तथा दूसरे समाचार-पत्र 'सुलतान उल अखबार' ने उसकी नकल १० जून को प्रकाशित की थी। इसी की पूर्ण प्रति, जिसमें अन्तिम दो वाक्य भी हैं, चार्ल्स बाल ने अपनी "हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' में दी है। पृ० ४५१।

बातों में आ जायगा तथा उन पर विश्वास करेगा, वह उसका फल भी भोगेगा जैसे कि लखनऊ के नवाब ने भोगा।

"इसलिए यह नितान्त आवश्यक है कि हिन्दू तथा मुसलमान इस संघर्ष में एक हो जायँ; भले आदमियों के आदेश मानते हुए अपने को सुरक्षित रखें तथा शान्ति स्थापित रखें। गरीबों को सन्तुष्ट रखा जाय। उन लोगों को स्वयं उच्च पद तथा आदर-सत्कार मिलेगा।

"जहाँ तक सम्भव हो, इस घोषणा-पत्र की प्रतियाँ बाँटी जायँ, सब जगह भेजी जायँ, तथा मुख्य स्थानों पर चिपकायी जायँ (चतुराई से जिसमें कोई भेद न ले सके), जिससे समस्त हिन्दू व मुसलमान इससे परिचित हो जायँ। सब सतर्क रहें तथा इसके प्रचार को तलवार के वार के समान समझें।

"दिल्ली में अश्वारोही का प्रथम वेतन ३०) मासिक होगा, १०) मासिक पदातियों का। लगभग १ लाख सैनिक तैयार हैं। भूतपूर्व अंग्रेजी सेनाओं की १३ पताकाएँ हमारे अधीन आ गयी हैं, तथा १४ अन्य पताकाएँ दूसरे स्थानों से आकर मिल गयी हैं। यह सब धर्म की रक्षा, ईश्वर के लिए तथा विजेता के लिए ऊँची उठी हैं—समूल विच्छेदन कर दिया जाय और कानपुर का भी यही मन्तव्य है कि शैतान का चिह्न तक भी मिटा दिया जाय। * यही यहाँ की सेना भी चाहती है।"

नाना द्वारा पेशवा की उपाधि ग्रहण करना—१ जुलाई १८५७ को कानपुर से अंग्रेजों के कूच करने के पश्चात् नाना साहब ने पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा की, बिठूर में उन्होंने उत्सव मनाया। नाना के मान में तोपें

* अंग्रेज इतिहासकार चार्ल्स बाल के अनुसार इस घोषणा-पत्र का संकेत कानपुर में सतीचौरा घाट आदि की बलि की ओर है। परन्तु यह घोषणा-पत्र कानपुर में क्रान्ति प्रारम्भ होने से पहले ही कलकत्ता पहुँच गया था। यह ८ जून से २ सप्ताह पहले गवर्नर जनरल की अन्तरंग सभा के एक सदस्य के हाथ में था। यह ११ मई व १५ मई के लगभग दिल्ली से प्रकाशित हुआ था। इससे यह सिद्ध होता है कि दिल्ली तथा मेरठ के क्रान्तिकारियों को भी नाना साहब का नेतृत्व स्वीकार था। इस विषय में देखिए : 'हिन्दू पैट्रियट' समाचार-पत्र, कलकत्ता दिनांक १६ जुलाई १८५७ पृ० २२७-२२८।

दागी गयीं; ८वीं ज़ीक़ाद अथवा दिनांक १ जुलाई १८५७ ई० को नाना साहब ने कानपुर के कोतवाल हुलाससिंह तथा अन्य अधिकारियों के नाम निम्नलिखित आज्ञा-पत्र भेजे।

(१) कोतवाल हुलाससिंह को

"परमात्मा की अनुकम्पा से एवम् सम्राट् (मुग़ल) के सौभाग्य से, पूना और पन्ना के सारे अंग्रेजों का हनन करके उन्हें नरक भेज दिया गया है और पाँच सहस्र अंग्रेज भी जो दिल्ली में थे सम्राट् की सेनाओं द्वारा तलवार के घाट उतार दिये गये हैं। सरकार अब चारों ओर विजयी हो गयी है। अतः आपको आज्ञा दी जाती है कि इन शुभ समाचारों को समस्त नगरों और ग्रामों में डुग्गी पिटवा कर घोषित करा दें, जिससे सब सुनकर प्रसन्नता मनायें। भय के समस्त कारण अब दूर हो गये हैं।"

दिनांक ८वीं ज़ीक़ाद तदनुसार १ली जुलाई १८५७ ई०।

× × × ×

(२) कोतवाल हुलाससिंह को

"चूँकि नगर के इक्के-दुक्के लोग, फिरंगी सेनाओं का इलाहाबाद से कूच करने का समाचार सुन करके अपने घर छोड़कर ग्रामों में शरण ले रहे हैं, एतद् द्वारा आज्ञा दी जाती है कि आप सम्पूर्ण नगर में घोषणा करा दीजिए कि अंग्रेजों को परास्त करने के लिए पदाति सेना, अश्वारोही और तोपखाना कूच कर चुका है। जहाँ भी वे मिलें, फतेहपुर में, इलाहाबाद में अथवा और जहाँ भी वे हों प्रतिशोध लेने हेतु सेना उनको पूर्णरूप से दण्डित करे। सब लोग बिना किसी भय के अपने-अपने घरों में रहें और सदैव की भाँति अपने उद्योग-धंधों में लगे रहें।"

दिनांक १२वीं ज़ीक़ाद, तदनुसार ५वीं जुलाई, १८५७ ई०।

× × × ×

(३) कालिकाप्रसाद कानूनगो अवध को

"शुभ कामनाएँ,

आपका प्रार्थना-पत्र, यह समाचार देते हुए प्राप्त हुआ कि जब सात नौकाएँ अंग्रेजों सहित नदी के बहाव की ओर कानपुर से जाती थीं तब आपकी सेनाओं के दो दलों ने सरकारी सेनाओं से मिलकर अबाध गति से उन पर गोलियाँ चलायीं और वे अब्दुल अज़ीज के ग्रामों तक अंग्रेजों का हनन करते चले गये,

तब तक अश्वचालित तोपखाने सहित आप स्वयं उनसे मिल गये और छः नौकाओं को डुबो दिया और सातवीं, वायु के जोर से बच निकली। आपने एक महान् कार्य किया है और हम आपके आचरण से अत्यन्त प्रसन्न हैं। सरकारी कार्य के प्रति अपना लगाव दृढ़ रखिए। यह आज्ञा-पत्र आपको कृपास्वरूप भेजा जाता है। आपका प्रार्थना-पत्र, जिसके साथ एक फिरंगी भी भेजा गया था, भी हमारे पास आ गया है। फिरंगी नरक भेज दिया गया है। हमको अब सन्तोष है।"

दिनांक १६वीं ज़ीक़ाद तदनुसार ६वीं जुलाई १८५७।

(४) सरसौल के थानेदार को

"विजयी सरकारी सेना इलाहाबाद की ओर फिरंगियों का सामना करने के लिए कूच कर चुकी; और अब यह सूचना मिली है कि उन्होंने सरकारी सेनाओं को धोखा दिया और उन पर आक्रमण करके छिन्न-भिन्न कर दिया है। कुछ सेना, कहा जाता है, वहाँ अभी भी है। अतः आपको आज्ञा दी जाती है कि आप अपने अधिकारक्षेत्र और फतेहपुर के जमींदारों को आदेश दें कि प्रत्येक वीर पुरुष विश्वास के रक्षार्थ एक होकर फिरंगियों को तलवार के घाट उतार दें और उनको नरक भेज दें। प्रत्येक प्राचीन प्रभावशाली जमींदार को आश्वासित कीजिए एवम् अपने धर्म के हित में और काफिरों को नरक भेजने के कार्य में संगठित होने के लिए समझाइए और उनसे कह दीजिए कि सरकार उनका लेना पावना चुकता करेगी और जो सहायता करेंगे उनको पुरस्कृत करेगी।"

दिनांक २०वीं ज़ीक़ाद तदनुसार १३वीं जुलाई १८५७ ई०।

(५) सैनिकों के नाम प्रथम घोषणा-पत्र

नाना साहब ने ब्रिगेडियर ज्वालाप्रसाद को क्रान्तिकारी सेना का प्रधान सेनापति नियुक्त किया। १३वीं ज़ीक़ाद १२७३ हि० को नाना साहब ने सैनिकों के लिए निम्नलिखित घोषणा-पत्र प्रकाशित किया:—[1]

"प्रत्येक रेजीमेन्ट में, चाहे पदाति हो अथवा अश्वारोही, एक 'कर्नल कमांडिंग' तथा 'मेजर द्वितीय कमाण्ड' और 'ऐडजूटेन्ट' होंगे। कमान्डेन्ट का कर्तव्य होगा कि वह सैनिकों को हुजूर सरकार की आज्ञाओं से अवगत

---

१. पार्लियामेन्ट्री पेपर्स—नं० ४ 'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज: १८५७: संलग्न प्रपत्र संख्या २३, संग्रह संख्या २।

कराये, तथा युद्ध की तैयारी कराये जब सरकार की ओर से परवाना प्राप्त हो। द्वितीय कमाण्ड उनसे नीचे होगा तथा उनका परामर्शदाता व नायकत्व में साथी होगा। ऐडजूटेन्ट रेजीमेन्ट की कवायद तथा परेड का उत्तरदायी होगा तथा अन्य और ऐसे कार्य करेगा जो ऐडजूटेन्ट करते आये हों। वह क्वार्टर मास्टर का भी कार्य करेगा तथा बारूदखाने की देख-रेख करेगा जिससे उस पर आँच न आ सके। प्रत्येक सैनिक के पास जो सामग्री होगी उसका वह हिसाब रखेगा। यदि हिसाब में त्रुटि होगी तो उसे दण्ड दिया जायगा। एक कम्पनी के सूबेदार को ४०) का कम्पनी भत्ता मिलेगा, ३०) कमाण्ड के लिए तथा २०) मोची, लोहार इत्यादि ठेके पर रखने के लिए, एक मुंशी होगा जो दस सूबेदार, जिन्हें भत्ता मिलेगा, मिलकर अपने लिए नियुक्त करेंगे। माह पूरा होने पर चिट्ठा, उपस्थितिपत्र इत्यादि हस्ताक्षर करके ऐडजूटेन्ट को देंगे। ऐडजूटेन्ट के कार्यालय में मीर मुंशी, तथा दो मुहर्रिर उन चिट्ठों की जाँच करेंगे तथा उसके पश्चात "कमिसेरियट अधिकारी" के पास भेज देंगे। पूर्ण रूप से तैयार होने पर वे सरकार के पास आयेंगे जो वेतन बाँटेंगे।

"सैनिक मुक़दमों में मीर मुन्शी कार्यवाही लिखेगा तथा न्यायालय का फैसला भी, तथा सदस्यों द्वारा हस्ताक्षर होने के पश्चात्, वह 'कमान्डेंट' के पास भेजे जायँगे। वह उनको ब्रिगेडियर के पास प्रेषित करेगा, जो कि उसको सरकार के सम्मुख प्रस्तुत करेंगे। सरकार उसे स्वीकार तथा अस्वीकार करेंगे तथा प्रकाशित करायेंगे।

"मीर मुंशी का वेतन ४०) तथा प्रत्येक मुहर्रिर का १०), ऐडजूटेन्ट दस सूबेदारों में से एक होगा जो ऐडजूटेन्ट का विशेष भत्ता पायेगा और सूबेदार का वेतन ग्रहण करेगा। दो मुहर्रिरों में से एक ४ बजे उपस्थित होगा, सरकार की आज्ञाएँ लिखेगा, तब उन्हें ऐडजूटेन्ट के पास ले जायगा, वहाँ से वह रेजीमेन्ट को प्रकाशित हो जायँगी। इन पदाधिकारियों को इसके लिए २०) मिलेगा। मेजर तथा कर्नल इनसे भिन्न रहेंगे। उनका वेतन इनसे अलग होगा। उनके रिक्त स्थानों में सूबेदार नियुक्त होंगे। सरकार उनके वेतन के विषय में परामर्श देंगे तथा निर्णय करेंगे। ऐडजूटेन्ट का भत्ता भी इसी प्रकार मिलेगा।"

यह प्रथम आज्ञापत्र है—

१३ ज़ीक़ाद १२७३ हि० ।[1]

(६) सैनिकों के नाम द्वितीय घोषणा-पत्र

"तोपचियों व गोलन्दाजों में, पदाति तथा अश्वारोही सेनाओं में चार सेनापति 'कमाण्ड अधिकारी' होंगे। कर्नल का वेतन ५००) भत्ता २५०); मेजर का वेतन ५००); ऐडजूटेन्ट का भत्ता सूबेदार के वेतन के अतिरिक्त १५०) होगा। क्वार्टर-मास्टर को भी सूबेदार के वेतन के अतिरिक्त १५०) मिलेगा, उसको दोनों कार्य करने पड़ेंगे।"

१३ ज़ीक़ाद १२७३ हि० ।[2]

इन आज्ञापत्रों के अतिरिक्त नाना साहब ने १३ ज़ीक़ाद १२७३ हि० को एक महत्वपूर्ण घोषणा-पत्र प्रकाशित किया जो निम्नलिखित था—[3]

नाना साहब का घोषणा-पत्र

"एक यात्री से ज्ञात हुआ है, जो अभी-अभी कलकत्ता से कानपुर आया है, कि कारतूसों के वितरण से पहले, जिसका उद्देश्य हिन्दुस्तान के नागरिकों का धर्म अपहरण करना था, एक अन्तरंग सभा हुई, जिसमें यह निश्चय हुआ कि क्योंकि यह धर्म का मामला है, इसलिए ५०,००० हिन्दुस्तानियों का संहार करने के लिए ७,००० या ८,००० यूरोपियनों की आवश्यकता होगी। तत्पश्चात् समस्त हिन्दुस्तान ईसाई धर्म ग्रहण कर लेगा।[4]

"इस आशय का एक प्रार्थना-पत्र रानी विक्टोरिया के पास भेजा गया, तथा अंतरंग सभा का निश्चय स्वीकार किया गया। द्वितीय अंतरंग सभा हुई जिसमें अंग्रेज व्यापारी भी आमन्त्रित हुए, और यह निश्चय हुआ कि

१. पार्लियामेन्ट्री पेपर्स नं० ४ : 'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज़' संलग्न प्रपत्र संख्या २३, संग्रह संख्या २।

२ वही—संलग्न प्रपत्र संख्या २४, संग्रह संख्या २।

३. 'लाहौर क्रानिकल' में प्रकाशित तथा सीरामपुर के 'फ्रेन्ड आव इंडिया' दिनांक २९ अक्तूबर १८५७ ई० द्वारा पुनः प्रकाशित प्रति का अनुवाद। पृष्ठ १०३१।

'पार्लियामेन्ट्री पेपर्स—संलग्न प्रपत्र संख्या—२२ संग्रह संख्या २।

४. बंगाल हरकारू दिनांक मार्च १६, १८५७ ई० 'फ्रेन्ड ऑव इंडिया' मार्च १६, १८५७, पृ० २७१।

वह सब इस महान् कार्य में सहायता करें। यह भी निश्चय हुआ कि केवल उतने ही यूरोपियन सैनिक रखे जायँ, जितने हिन्दुस्तानी सिपाही हैं, जिससे कि बड़े विप्लव के समय, यूरोपियन हिन्दुस्तानियों से पिट न जायँ। इस प्रार्थना-पत्र पर इँगलैंड में विचार-विनिमय हुआ। ३५,००० यूरोपियन सिपाही शीघ्रता से जहाजों में लादे गये तथा भारत को रवाना किये गये। कलकत्ता में उनके चलने का गुप्त समाचार मालूम हो गया और कलकत्ता के महानुभावों ने नयी कारतूस के वितरण की आज्ञा दी। उनका मुख्य उद्देश्य सेना को ईसाई बनाना था क्योंकि इसके हो जाने के उपरान्त जनता द्वारा ईसाई धर्म स्वीकार कराने में कोई देर न लगेगी। कारतूसों में सुअर तथा गाय की चर्बी प्रयोग में लायी गयी थी, यह तथ्य कारतूस बनाने के कारखाने में कार्य करनेवाले बंगालियों द्वारा मालूम हुआ। उनमें से एक को मृत्युदण्ड दिया गया तथा अन्य को बन्दीगृह में डाल दिया गया।

"यहाँ यह अपनी योजनाएँ बना रहे थे। लन्दन में स्थित सुल्तान कुस्तुनतुनिया के दूत ने सुल्तान को यह सूचना भेजी कि ३५,००० अंग्रेज सैनिक भारत भेजे जा रहे हैं भारतियों को ईसाई बनाने के लिए। सुल्तान ने मिस्र के पाशा को एक फर्मान भेजा जिसमें उन पर रानी विक्टोरिया के साथ षड्यन्त्र करने का लाञ्छन लगाया गया; यह समझौते का समय न था; अपने दूत से उन्हें सूचना मिली कि ३५,००० सैनिक भारत को भेज दिये गये हैं जिनका ध्येय वहाँ की प्रजा को ईसाई धर्म स्वीकार करने के लिए बाध्य करना था। इसको अभी भी रोकने का समय था। यदि वह इस समय भी अपना कर्तव्य भूल जायगा तो ईश्वर के सम्मुख क्या मुँह दिखायेगा। ऐसा दिन उसके लिए भी शीघ्र आयेगा, क्योंकि यदि अंग्रेज भारत को ईसाई बनाने में सफल हुए, तो वही चीज उसके देश में भी करेंगे। फर्मान प्राप्त होते ही मिस्र के शाह ने, अंग्रेजों की सेना के आने से पहले ही एलेक्जेंड्रिया में अपनी सेना एकत्रित कर ली क्योंकि वही भारत आने के मार्ग में था। अंग्रेजी सेना आने पर मिस्र के पाशा की सेना ने उन पर तोपें दाग दीं। उनके कई जहाजों को नष्ट करके डुबा दिया। एक भी अंग्रेज न बचा।

"कलकत्ता में अंग्रेज, कारतूस वितरण की आज्ञा के पश्चात् क्रान्ति के विस्फोट के उपरान्त लन्दन से आनेवाली सेना की प्रतीक्षा में थे। परन्तु ईश्वर ने उनकी योजनाओं को समाप्त कर दिया। जैसे ही लन्दन की सेना के

नष्ट होने का समाचार उन्हें मिला, गवर्नर जनरल ने दुखित होकर अपना सिर धुना।

"रात्रि में उसे जीवन तथा सम्पत्ति पर अधिकार था,
प्रात: उसके शरीर पर न तो शीश ही रहा और न शीश पर मुकुट;
आकाश की एक ही उलटफेर से,
न तो नादिर ही रहा और न नादिरी* ।"

यह घोषणा-पत्र नाना साहब पेशवा बहादुर की आज्ञा से प्रकाशित हुआ है।

दिनांक १३ ज़ीक़ाद १२७३ हि० ।
[अर्थात् ६ जुलाई १८५७ ई०]"

नाना साहब तथा फतेहपुर का युद्ध : ६ जून १८५७ ई० से फतेहपुर स्वतन्त्र हो गया था। भूतपूर्व डिप्टी मजिस्ट्रेट हिकमतउल्ला खाँ ने क्रान्ति का नायकत्व ग्रहण किया। शेरेर मजिस्ट्रेट भागकर इलाहाबाद पहुँचा। तत्पश्चात् फतेहपुर में नाना साहब की आज्ञानुसार स्वतन्त्र शासन का संगठन होता रहा। इलाहाबाद की पराजय के पश्चात् मौलवी लियाकत-अली २४ जून को कानपुर पहुँचे।[1] उन्होंने कानपुर पहुँचकर इलाहाबाद के वृत्तान्त नाना साहब को सुनाये तथा फतेहपुर में अंग्रेजों की सेना से युद्ध करने की तैयारी करायी। नाना साहब ने सैनिकों को आज्ञा दी कि वे इलाहाबाद से बढ़ते हुए अंग्रेजों को नष्ट कर डालें, इलाहाबाद पर विजय पायें तथा कलकत्ता तक धावा बोलें।[2] नाना साहब ने ३,५०० सैनिकों को तुरन्त मेजर रेनाड की सैनिक टुकड़ी से लड़ने के लिए भेजा। ११ जुलाई को क्रान्तिकारी सैनिकों ने अंग्रेजों की सेना की एक टुकड़ी को खागा से कुछ दूरी पर पराजित किया। तत्पश्चात् समस्त क्रान्तिकारी दल फतेहपुर में एकत्रित हुआ। वहाँ पर पुन: अंग्रेजों से १२ जुलाई को युद्ध हुआ। इसके बाद क्रान्तिकारी सेना पीछे हट गयी। इस समय हैवलाक ने १०० सिखों

---

* नादिरशाह की आतंकवादी नीति।

१. सेलेक्शन्स फ्राम स्टेट पेपर्स : जान फिचेट—छठवीं रेजीमेन्ट का बाजा बजानेवाला—का कथन, पृ० ५६ परिशिष्ट—लखनऊ तथा कानपुर, खण्ड ३, मार्शमैन।

२. 'मार्शमन : मेम्वायर्स आव सर हैनरी हैवलाक'—पृ० २३१।

को इलाहाबाद वापिस कर दिया क्योंकि वहाँ पर क्रान्तिकारी सेना आक्रमण करने की योजना बना रही थी।[1] इलाहाबाद नगर छोड़कर समस्त जिले में स्वतन्त्रता की अग्नि प्रज्वलित हो गयी थी। १५ जुलाई को आँग में भीषण युद्ध हुआ। क्रान्तिकारी सेना पुनः छापा मारकर पीछे हट गयी। पाण्डु नदी पहुँचकर उन्होंने सुसंगठित होकर पुनः अंग्रेजों पर आक्रमण किया। हैवलाक ने घबराकर नील से सैनिक सहायता माँगी।[2] नाना साहब ने क्रान्तिकारी सेना की सहायता के लिए बालाराव को भेजा। परन्तु पाण्डु नदी से भी उन्हें पीछे हटना पड़ा। १५ जुलाई को नाना साहब को इस दुर्घटना की सूचना मिली। वे स्वयं बड़ी सेना लेकर अंग्रेजों से युद्ध करने के लिए अग्रसर हुए।[3] घमासान युद्ध हुआ परन्तु दोनों पक्षों को सफलता न मिल सकी।

बीबीघर में अंग्रेजों की बलि : १५ जुलाई को नाना साहब अंग्रेजों की बढ़ती हुई सेना को रोकने में संलग्न थे। हैवलाक को अंग्रेज बन्दियों के बचाने के लिए आदेश दिया गया। दूसरी ओर नाना साहब के नायकों को यह पता चला कि बन्दी स्त्रियाँ कानपुर के रहस्य बंगाली भेदियों द्वारा अंग्रेजों को लिखकर भेज रही हैं। फलस्वरूप उन्होंने कानपुर में बंगाली भेदियों को दण्ड देने का आदेश दिया।[4] बीबीघर में इस समय इलाहाबाद से आये हुए छठवीं रेजीमेन्ट के सैनिक पहरे पर थे।[5] वहाँ पर अंग्रेजों की बलि किस प्रकार हुई निम्नलिखित वर्णन से स्पष्ट हो जाता है—

१. मार्शमन : मेम्वायर्स आव सर हेनरी हैवलाक—पृ० २१७-२१८।

२. वही : पृ० ३०३।

३. ग्रूम : 'विद हैवलाक फ्राम इलाहाबाद टु लखनऊ'—पृ० ३२। १५ जुलाई को दो बार लड़ाई हुई। क्रान्तिकारियों ने बड़ी तोपों का प्रयोग किया।

४. हिन्दू पैट्रियट—समाचार-पत्र कलकत्ता—दिनांक अगस्त २७, १८५७, पृ० २७१।

"The Baboos were suspected of writing letters to the English gentlemen and giving them information, several spies having been apprehended with letters in their possession. The spies were all beheaded on the 14th July."

५. इलाहाबाद की ६वीं रेजीमेन्ट के लगभग २०० अश्वारोही जमादार

"विलियम्स ने एक बात निश्चयपूर्वक कही है जिसको जानकर अधिकतर अंग्रेजों को आश्चर्य होगा कि १५ तथा १६ जुलाई को स्त्रियों तथा बालकों की बलि को सहस्रों व्यक्तियों ने देखा था।"[1] इससे कालकोठरी में बन्द करके अँधेरे में हत्या करने की कथाएँ असत्य हो जाती हैं।

नाना साहब का इसमें कहाँ तक हाथ था यह इससे स्पष्ट हो जाता है कि वहाँ इलाहाबाद से आये हुए छठवीं रेजीमेन्ट के सैनिक उपस्थित थे। वह इलाहाबाद के हत्याकांड के उत्तर में कुछ भी कर सकते थे। परन्तु उन्होंने स्त्रियों पर हाथ उठाने से इन्कार किया। तत्पश्चात्............।

"बेगम (जो नाना साहब के महल की नौकरानी थी, तथा सरवर खाँ नामक सेनानी की रखैल थी) इलाहाबाद के सैनिकों के वध करने से इन्कार करने पर नूर मुहम्मद के होटल वापिस गयी। वहाँ से दो मुसलमान तथा ३ हिन्दू कातिल, जिनमें अन्य गवाहों के कथनानुसार सरवर खाँ भी था, ले आई। बन्दियों पर गोलियाँ दागी गयीं तथा नाना साहब के समीपवर्ती अहाते से कातिल आये और उन्होंने अंग्रेजों की बलि दी। यह सब ६ बजे सायंकाल को समाप्त हो गया था, फिर बन्दीगृह के द्वार बन्द कर दिये गये थे।"[2]

उपर्युक्त विवरण तथा कथनों व प्रमाणों से स्पष्ट है कि नाना साहब का इसमें कोई हाथ न था। यह केवल सैनिकों के प्रतिशोध का फल था।

कानपुर का प्रथम युद्ध : १६ जुलाई १८५७ ई० को नाना साहब स्वयं एक बड़ी सेना लेकर अंग्रेजों से युद्ध करने के लिए प्रस्तुत हुए। कानपुर के दक्षिणी भाग में क्रान्तिकारियों ने अपनी तोपों को स्थापित करके कानपुर

यूसुफ खाँ के नायकत्व में मौलवी लियाकत अली के साथ २४ जून तक कानपुर आ पहुँचे थे। देखिए—फिचेट बाजेवाले का कथन। फतेहपुर की स्थानीय किंवदन्तियों के आधार पर वहाँ के वीर जोधासिंह भी सैनिक दल सहित फतेहपुर की पराजय के पश्चात् कानपुर पहुँच गये थे।

१. मॉड—'मेमोरीज आव दि म्यूटिनी' खण्ड १।

२. वही : पृ० सं० १२० फ्रांसिस कार्नवालिस मॉड हैवलाक के साथ अंग्रेजी सेना में तोपखाने का नायक था। यह पुस्तक १८६० ई० में छपी थी। उपर्युक्त विवरण कर्नल विलियम्स द्वारा संगृहीत कथनों पर है जिनमें अंग्रेज बैण्डवालों का कथन मुख्य था।

की सुरक्षा का प्रबंध किया। १६ ता० को भयंकर युद्ध हुआ। नाना साहब की तीन बड़ी तोपों ने अंग्रेजों के तोपखाने को शान्त कर दिया। अंग्रेजों ने सामने से पीछे हटकर दायें-बायें से क्रान्तिकारियों के मोर्चों पर आक्रमण करना आरम्भ किया। इसमें अंग्रेजों को कुछ सहायता मिली।[1] दिन भर के युद्ध के पश्चात् सहसा क्रान्तिकारी सेना नगर की ओर कूच कर गयी। परन्तु थोड़े ही समय में नाना साहब पुनः युद्ध-स्थल में आ गये। सैनिकों को प्रोत्साहन मिला। अंग्रेजों की तोपें पीछे ही रह गयी थीं, फलस्वरूप क्रान्तिकारी सैनिकों ने उन पर समीप आकर आक्रमण किया। परन्तु अंग्रेजों की तोपें आने के समय तक क्रान्तिकारी सेना पुनः पीछे हट गयी। कानपुर की इस पराजय से क्रान्ति को बहुत क्षति पहुँची। नाना साहब ने कानपुर से बिठूर जाने का निश्चय किया। १७ ता० को कानपुर नगर अंग्रेजों के अधीन हो गया।[2]

बिठूर का प्रथम युद्ध : नाना साहब ५,००० सैनिकों तथा ४५ तोपों के साथ बिठूर पहुँच गये। अंग्रेजों को उनके वहाँ पहुँचने का पता न चला। नाना साहब ने बिठूर पहुँच कर वहाँ से अन्य सुरक्षित स्थान जाने की तैयारियाँ कीं। बिठूर छोड़ने से पहले नाना साहब ने अपनी सेना की सलामी ली। दिल्ली के बादशाह के मान में १०० तोपें, ८० अपने पूर्वज बाजीराव के मान में तथा ६० अपने नाम में दागीं। सिंहासन पर बैठने के उपलक्ष में २१ तोपों की दो सलामियाँ उनकी माता तथा धर्मपत्नी

१. मार्शमैन: 'मेम्वायर्स आव सर हेनरी हैवलाक–पृ० ३०८-३०९।

२. मार्शमैन : मेम्वायर्स आव सर हेनरी हैवलाक—पृ० ३१०।

"The enemy appeared to be in full retreat to Cawnpore, followed by our exhausted troops, when a reserve 24-pounder planted on the road, and added by two smaller guns, reopened a withering fire on our advancing line. It was here that Nana had determined to make his final stand for the possession of Cawnpore, from which fresh troops had passed forth to his assistance. He was seen riding about among his soldiers, the hand and buglers striking up as he approached. The greatest animation pervaded the enemy's rank."

के मान में भी दागी गयीं।[1] पेशवा के सूबेदार रामचन्द्र पन्त के लड़ं नारायणराव ने, जिसको नाना साहब ने बन्दी बना रखा था, अब छुटकार पाकर अंग्रेजों का साथ दिया। १६ जुलाई १८५७ ई० को जब अंग्रेज बिठू गये तो उसे खाली पाया। वहाँ पेशवा के महल को जला डाला, तोपखाने क उड़ा दिया तथा युद्ध की अन्य सामग्री लूटकर पुनः कानपुर लौट आये।

कानपुर के प्रथम युद्ध के पहले नाना साहब ने यह पत्र भेजा, जो इ प्रकार सम्बोधित था:—

"लखनऊ के अश्वारोही, तोपखाने और पदातियों के अधिकारियो औ वीरो!

शुभ कामनाएँ,

लगभग एक सहस्र अंग्रेजों की सेना कई तोपों सहित इलाहाबाद ं कानपुर की ओर कूच कर रही थी। उन मनुष्यों को बन्दी बनाकर हन करने के हेतु एक सेना भेजी गयी थी। अंग्रेज तीव्रता से बढ़ रहे हैं, दोनं ओर मनुष्य आहत होकर अथवा मरकर गिर गये हैं। फिरंगी अब कानपुर वे सात कोस के अन्दर हैं। युद्धस्थल में बराबर की चोट है। यह समाचार ं कि फिरंगी नदी द्वारा अग्निबोटों से आ रहे हैं। यहाँ हमारी सेना तैयार ं और थोड़ी दूर पर युद्ध छिड़ा हुआ है अतः आपको सूचना दी जाती है वि उक्त अंग्रेज बाँसवाडी जनपद के सम्मुख सरिता के इस तट पर डटे हैं। यह सम्भव है कि ये गंगा पार करने का प्रयत्न करें। इस कारणवश आप लोग उनको नदी पार करने से रोकने के लिए कुछ सेना बाँसवाडा प्रदेश में भेज दीजिए। हमारी सेना इस ओर से (उनको) दबायेगी और इन मिले-जुले आक्रमणों से काफिरों का हनन किया जा सकेगा, जो कि अत्यन्त आवश्यक है।

यदि ये लोग नष्ट न हो पाये तो इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि वे दिल्ली की ओर प्रस्थान करेंगे। कानपुर एवं दिल्ली के मध्य में कोई भी ऐसा नहीं है जो उनके सम्मुख टिक सके। अतः हमें निःसंदेह उनको समूल नष्ट करने के लिए संगठित हो जाना चाहिए।

यह भी कहा जाता है कि अंग्रेज गंगा पार भी कर सकते हैं। कुछ अंग्रेज अब भी बेलीगारद में हैं और युद्ध जारी किये हुए हैं जब कि यहाँ

१. चार्ल्स बाल: हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी—पृ० ३८४।

एक भी अंग्रेज जीवित नहीं है। आप तुरन्त नदी के पार शिवराजपुर अंग्रेजों को घेरने तथा हनन करने के हेतु सेनाएँ भेजें।

दिनांक २३वीं ज़ीक़ाद अथवा १६वीं जुलाई, १८५७ ई० ।"

अवध में नाना साहब : अनेक प्रयत्न करने के पश्चात् भी नाना साहब को कानपुर व बिठूर में पराजय हुई। फलतः बिठूर खाली करने के पश्चात् नाना साहब ने गंगा पार फतेहपुर चौरासी नामक स्थान पर अपना शिविर स्थापित किया। यहाँ से वे लखनऊ की ओर बढ़ती हुई अंग्रेजी सेना के पीछे से आक्रमण कर सकते थे तथा बिठूर व कानपुर पर पुनः अधिकार स्थापित करने का प्रयत्न कर सकते थे।[१] जैसे ही अंग्रेजों ने मगरवारा

१. मार्शमैन : 'मेम्वायर्स आव सर हेनरी हैवलाक'—पृ० ३३२। सर पैट्रिक ग्रान्ट को हैवलाक का २८ जुलाई का पत्र।

नाना साहब को अवध की बेगम का निमन्त्रण

सैयद कमालउद्दीन हैदर हसनी हुसैनी 'कैसरुत्तवारीख' के लेखक जिन्हें हजरत महल के दरबार की बड़ी अधिक जानकारी थी अपनी पुस्तक में जिसकी रचना उन्होंने हेनरी इलियट के आदेशानुसार की थी लिखते हैं :—

पृ० २५७

"नाना राव का दूत आया, एक पत्र इस आशय का लाया, 'यदि अनुमति हो तो हम तुम्हारे नगर में प्रविष्ट हों।' जनाब आलिया (हजरत महल) ने अनुमति दी। राजा जैलाल सिंह, कलेक्टर को आदेश हुआ कि वे दो ऊँट, २१ छकड़े, १० गाड़ियाँ, २०-२५ हाथी लेकर फतेहपुर चौरासी को जायँ। नाना राव जियासिंह चौधरी की गढ़ी से घोर वर्षा में अपने परिवार सहित नगर को चले। नुसरतजंग २०० सवार, २ हाथी, चाँदी के हौदे सहित, २ शुतुर सवार लेकर स्वागतार्थ गये और जनाब आलिया के आदेशानुसार शीशमहल में उनको उतारा। और उसे सजाया गया और १० शतरंजी, १० चाँदनी, १० पलँग, कई कुर्सियाँ आवश्यकतानुसार शीश के बर्तन इत्यादि तथा चित्र भेजे। (५ ता० ज़िलहिज्जा मास १२७४ हि०) नाना राव शहर में प्रविष्ट हुए। ११ तोपें सलामी की दागी गयीं।"

टिप्पणी

इस घटना का उल्लेख लेखक ने नाना साहब की कानपुर की पराजय तथा आलमबाग के युद्ध के बीच में किया है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि

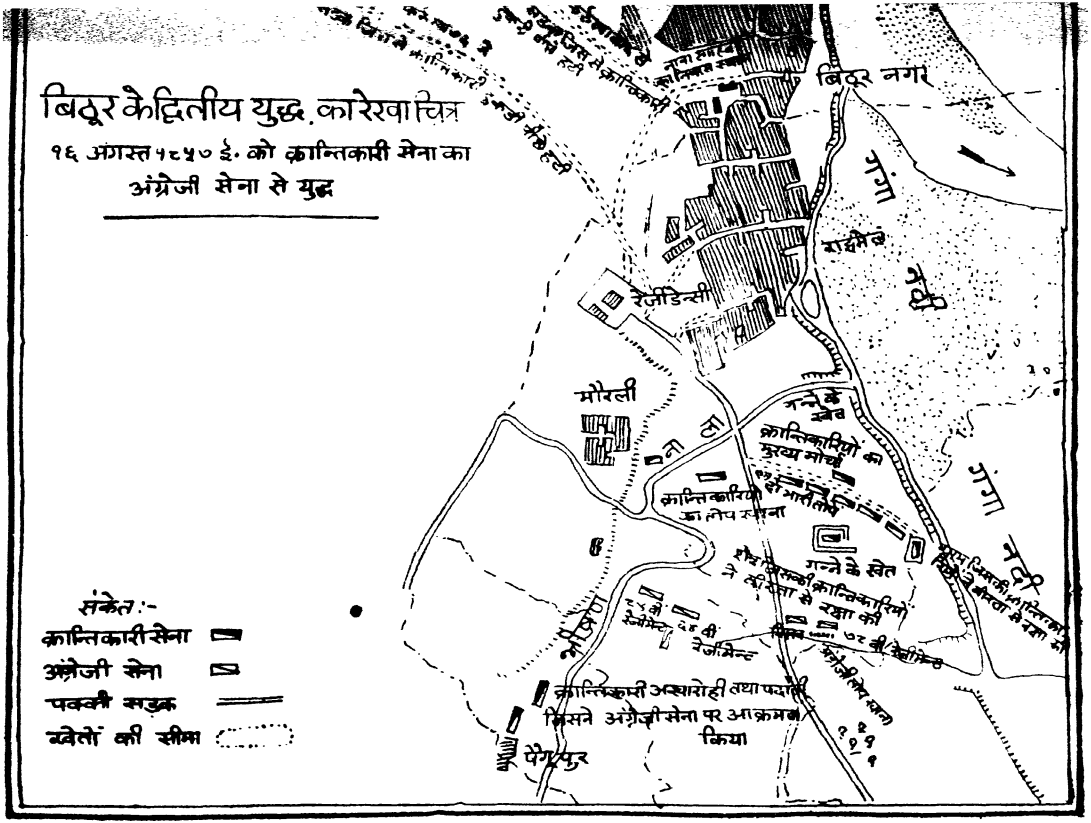
से उन्नाव की ओर बढ़ने का प्रयत्न किया, और अवध की सेना से युद्ध किया, नाना साहब ने अंग्रेजों को पीछे से आतंकित किया। उनकी सहायता के लिए दानापुर से तीन रेजीमेन्ट क्रान्ति में आकर सम्मिलित हो गयीं। हैवलाक बशीरतगंज के युद्ध के पश्चात् संकट में पड़ गया। क्रान्तिकारी सेना को फतेहगढ़ तथा ग्वालियर से भी सहायता मिल गई।[1] कानपुर पर पुनः आक्रमण की तैयारी होने लगी। ६ अगस्त १८५७ ई० को बशीरतगंज से अंग्रेजों को पुनः पीछे हटना पड़ा।[2] ७ अगस्त को अंग्रेजों को कानपुर वापिस जाना पड़ा। १८ अगस्त को परास्त होकर अंग्रेज कानपुर की पुरानी बारकों में जा पहुँचे।

कानपुर तथा बिठूर का द्वितीय युद्ध : नाना साहब तथा तात्या के प्रयत्नों से ४२वीं पलटन, द्वितीय घुड़सवार सेना, तथा अवध की सेना की सहायता से बिठूर पुनः क्रान्तिकारियों के अधिकार में आ गया। १८ अगस्त १८५७ ई० को अंग्रेजों ने द्वितीय बार बिठूर पर आक्रमण किया। कानपुर में बारकों पर भी क्रान्तिकारियों ने आक्रमण कर दिया। अंग्रेजों को वहाँ से भी नये स्थान जाना पड़ा।[3]

सितम्बर १८५७ ई० में अंग्रेज कानपुर में घिर गये।[4] गंगापार से वह

यह घटना लगभग इसी समय घटी अर्थात् बिठूर की द्वितीय पराजय के पश्चात्-५ ज़िलहिज्जा १२७४ हि० अर्थात् २७ जुलाई १८५८ ई० में लखनऊ पर अंग्रेजों का पूर्ण अधिकार हो गया था। इसलिए यह ५ ज़िलहिज्जा १२७४ छापे की त्रुटि मालूम पड़ती है। ५ ज़िलहिज्जा १२७३ हि० अर्थात् २७ जुलाई १८५७ ई० को नाना साहब बिठूर छोड़कर फतेहपुर चौरसिया में शिविर-जीवन व्यतीत कर रहे थे। परन्तु राजा जयलाल सिंह के अभियोग पत्रों से, विशेषतः राजा मानसिंह के कथन से ज्ञात होता है कि नाना साहब लखनऊ वर्षाऋतु में आये थे। राजा जयलाल सिंह के भाई रघुबरदयाल ने उनका स्वागत किया था, तथा उन्हें दौलतखाने में ठहराया था।

१. ग्रूम : 'विद् हैवलाक फ्राम इलाहाबाद टु लखनऊ' : पृ० ५०–५१
२. वही : पृ० ६२–७७।
३. ग्रूम : 'विद् हैवलाक फ्राम इलाहाबाद टु लखनऊ' : पृ० ८१।
४. ११ सितम्बर १८५७ ई० को नील ने हैवलाक को लिखा :—



बिठूर के द्वितीय युद्ध का रेखाचित्र
१६ अगस्त १८५७ ई. को क्रान्तिकारी सेना का अंग्रेजी सेना से युद्ध
बिठूर नगर
गंगा नदी
गंगा नदी
रेजीडेन्सी
मोरली
गन्ने के खेत
क्रान्तिकारियों का मुख्य मोर्चा
क्रान्तिकारियों का तोप स्थाना
गन्ने के खेत
क्रान्तिकारी अश्वारोही तथा पदाती जिसने अंग्रेजी सेना पर आक्रमण किया
पैगम्पुर
अंग्रेजी तोप स्थाना
७८ वीं रेजीमेन्ट
संकेत :-
क्रान्तिकारी सेना
अंग्रेजी सेना
पक्की सड़क
खेतों की सीमा

कानपुर पर तोपें दागते रहे। १८ सितम्बर १८५७ ई० को लखनऊ के शक्तिशाली राजाओं तथा जमींदारों ने कानपुर की ओर प्रस्थान किया। परन्तु इस समय तक आउट्रम के साथ अंग्रेज सेना कानपुर पहुँच गयी थी। इस समय कानपुर के चारों ओर क्रान्तिकारी सेना जमा थी। ५००० सैनिक तथा ३० तोपों के साथ ग्वालियर की सेना आयी हुई थी; अवध की सेना में लगभग २०,०००० सैनिक थे, और वे सब डलमऊ घाट से फतेहपुर पर आक्रमण की तैयारी कर रहे थे, फतेहगढ़ से १२,००० सैनिक ३० तोपों के साथ पश्चिम की ओर जमा थे। ऐसे समय में लार्ड कैनिंग ने हैवलाक से सेना का नायकत्व लेकर आउट्रम को सेनापति नियुक्त किया। कॉलिन कैम्पबेल को प्रधान सेनापति का भार सौंपा गया। अंग्रेजों ने सितम्बर माह से पुनः लखनऊ की ओर बढ़ने का प्रयत्न किया। क्रान्तिकारियों के सैनिक संगठन को २० सितम्बर १८५७ ई० को दिल्ली की पराजय से बड़ा धक्का पहुँचा। पश्चिमी सीमा पर अंग्रेजों ने अपना आधिपत्य पुनः स्थापित कर लिया। परन्तु क्रान्तिकारियों ने इस पराजय की तनिक मात्र भी चिन्ता नहीं की। दिल्ली नगर के २ मील पूर्व की ओर तक उन्होंने अधिकार बनाये रखा।[1] बरेली, लखनऊ, झांसी, ग्वालियर इत्यादि केन्द्रों पर क्रान्ति की ज्वाला शान्त होने के स्थान पर और अधिक प्रज्वलित हो उठी। नाना साहब तथा उनके सहायकों ने कानपुर से बनारस तक अंग्रेजों पर धावा बोलने की महान् योजना बनायी। कानपुर पर दोनों पक्षों की निगाह थी। अंग्रेज कानपुर पर आधिपत्य स्थापित रखकर लखनऊ

"One of the Sikh scouts I can depend on has just come in, and reports that 4000 men and five guns have assembled today at Bithoor, and threaten Cawnpore. I cannot stand this: they will enter the town, and our communications are gone; if I am not supported I can only hold out here, can do nothing beyond our entrenchments. All the country between this and Allahabad will be up, and our position and ammunition on the tray up, if the steamer as I feel assured does not start, will fall into the hands of the enemy, and we will be in a bad way. J.E.N"

१. डा० डफ: लेटर्स आन इंडिया—संख्या १-६ पृ० २१७-२१८ कलकत्ता १० दिसम्बर १८५७ ई०।

व बरेली जीतना चाहते थे तथा दिल्ली व आगरा से सम्बन्ध बनाये रखना चाहते थे। दूसरी ओर क्रान्तिकारी नेतागण कानपुर से अंग्रेजों को निकाल कर इलाहाबाद बनारस-जीतना चाहते थे।

कानपुर का तीसरा युद्ध १८५७ : अवध के चकलेदारों, इलाहाबाद, सुल्तानपुर, जौनपुर तथा आजमगढ़ के नाजिमों ने अक्तूबर माह में बड़ी धूमधाम से अंग्रेजों पर धावा बोल दिया। राजा महेशनारायण, मेंहदी हुसेन, बसन्तसिंह, रघुनाथसिंह, राजा बेनीमाधो, राजा जगन्नाथबख्श, राजादेवीसिंह, सय्यद गुलाम हुसेन तथा अन्य जमींदारों ने मिलकर क्रान्तिकारी सेना का संगठन किया।[1] अवध में नवीन जागृति पैदा हो गयी। इलाहाबाद में फाफामऊ क्रान्तिकारियों का केन्द्र बन गया तथा झूंसी पर भी उनका अधिकार हो गया। पूर्वी क्षेत्रों से दानापुर के सैनिकों ने आकर बहुत योग दिया। राजा कुँवरसिंह स्वयं रीवाँ होते हुए १६ अक्तूबर १८५७ ई० को काल्पी पहुँचे।[2] बाँदा से नवाब अली बहादुर के सैनिकों ने फतेहपुर पर आक्रमण किया।[3] सागर तथा नर्बदा क्षेत्रों में क्रान्ति पूर्णरूप से व्याप्त हो रही थी। रीवाँ के सभी जागीरदार राजा के विरुद्ध तथा क्रान्ति में योग देने लगे। गवर्नर-जनरल ने स्पष्टतया घोषणा कर दी कि वह लखनऊ में घिरे हुए अंग्रेज सैनिकों की अधिक चिन्ता कर रहे थे। उन्हें रीवाँ, बुन्देलखण्ड तथा सागर नर्बदा क्षेत्र के हाथ से निकल जाने की चिन्ता न थी।[4] दिल्ली की पराजय के पश्चात् दिल्ली से क्रान्तिकारी सैनिक बिठूर की ओर आये। १६ अक्तूबर को लगभग ३०० सैनिक १४ तोपों के साथ बिठूर पहुँचे।[5] इसी

---

१. पार्लियामेन्ट्री पेपर्स—म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज—१८५७' संलग्न प्रपत्र संख्या ३०, संग्रह संख्या ७।

२. नैरेटिव आव ईवेन्ट्स जालौन— १८५७-५८—पृ० ६ पैरा ८।

३. 'म्यूटिनी रजिस्टर'—जिला फतेहपुर-प्रोवियन द्वारा लिखित घटनाओं का दैनिक विवरण ता० ११ अक्तूबर, ३० अक्तूबर, तथा ३१ अक्तूबर १८५७।

४. 'पार्लियामेन्ट्री पेपर्स'—प्रपत्र संख्या ४३, संग्रह संख्या ७। दिनांक २२ अक्तूबर १८५७ ई०, सचिव मध्यप्रान्त, बनारस से सचिव भारतीय शासन कलकत्ता : पैरा ६।

५. वही : संलग्न प्रपत्र संख्या २२१, संग्रह सं० २ पृ० ११६ कर्नल विल्सन का चीफ आव स्टाफ को भेजा हुआ तार।

तारीख को मध्यप्रान्त (इलाहाबाद-बनारस) के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर द्वारा भेजे गये तार से पता चलता है कि १७ अक्तूबर को दिल्ली से कानपुर जिले में ३ या ४ हजार सैनिक १४ तोपों व ८० हाथियों के साथ आ गये। नाना साहब इस समय भी अपने फतेहपुर चौरासी के शिविर में थे।[1] लगभग इसी समय ग्वालियर की मुख्य सेना क्रान्तिकारियों के साथ मिल गयी। सितम्बर माह से ही सेना सिन्धिया को क्रान्ति में साथ देने के लिए बाध्य कर रही थी। ग्वालियर की सेना को नाना साहब तथा झाँसी की रानी द्वारा झाँसी तथा ग्वालियर आने का आमन्त्रण मिला। दिल्ली का पतन होने से ग्वालियर के सैनिक सहम गये। परन्तु अक्तूबर में पुनः नाना के वकील पहुँचे। फलतः १५ अक्तूबर को ग्वालियर की प्रधान सेना अपनी तोपों, गोला बारूद (मैगजीन) इत्यादि को लेती हुई तात्या के साथ चल पड़ी। जालौन तथा कछवागढ़ होती हुई यह सेना १५ नवम्बर को काल्पी पहुँची तथा वहाँ से कानपुर पर भीषण आक्रमण किया। यह कानपुर की तीसरी लड़ाई थी। इस युद्ध में दिल्ली से आये हुए सैनिकों ने भी खूब भाग लिया।[2] यह युद्ध २८ नवम्बर १८५७ ई० से ६ दिसम्बर १८५७ ई० तक हुआ।

इस काल में क्रान्तिकारी सेना को अंग्रेजी सेना के प्रधान सेनानायक कैम्पबेल का सामना करना पड़ा। उसको भी अपने मुँह की खानी पड़ी। आउट्रम अंग्रेजी सेना सहित लखनऊ जीतने आ रहा था वह तो स्वयं बन्दी हो गया। कैम्पबेल ने इस बीच में दो प्रयास किये—एक फतेहगढ़ की ओर तथा दूसरा लखनऊ की ओर। परन्तु फतेहगढ़ से उसे खाली हाथ वापिस

१. 'पार्लियामेन्ट्री पेपर्स' संलग्न प्रपत्र संख्या २५५, संग्रह संख्या २, पृ० १२८।

२. 'पार्लियामेन्ट्री पेपर्स'—म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज : तार द्वारा सूचना : कानपुर अक्तूबर १६, १८५७—प्रपत्र २२१, संख्या २ पृ० ११३ ब्रिटिश पार्लियामेंट में प्रेषित १८५७ "दिल्ली से आये हुओं की संख्या ३००० या ४००० बतायी जाती है। उनके साथ १४ तोपें हैं तथा ८० हाथी तथा कुछ लूट का सामान है। नाना साहब इस समय फतेहपुर चौरासी में हैं।" प्रपत्र २२५ पृ० १२८ बनारस से भेजा गया तार—ता० १८ अक्तूबर १८५७ समय ६ बजे।

लौटना पड़ा तथा लखनऊ से सैकड़ों सैनिकों की बलि देने के पश्चात् वह केवल अंग्रेजी गैरिज़न को तथा मरीजों को छुड़ा कर कानपुर तक ला सका। फलतः उसकी सैनिक शक्ति में कैनिंग को भी विश्वास न रहा। उन्होंने फिर कैम्पबेल को लखनऊ पर आक्रमण करने की उस समय तक आज्ञा नहीं दी जब तक जंगबहादुर ६००० गुरखाली सैनिक लेकर नहीं आ गये।

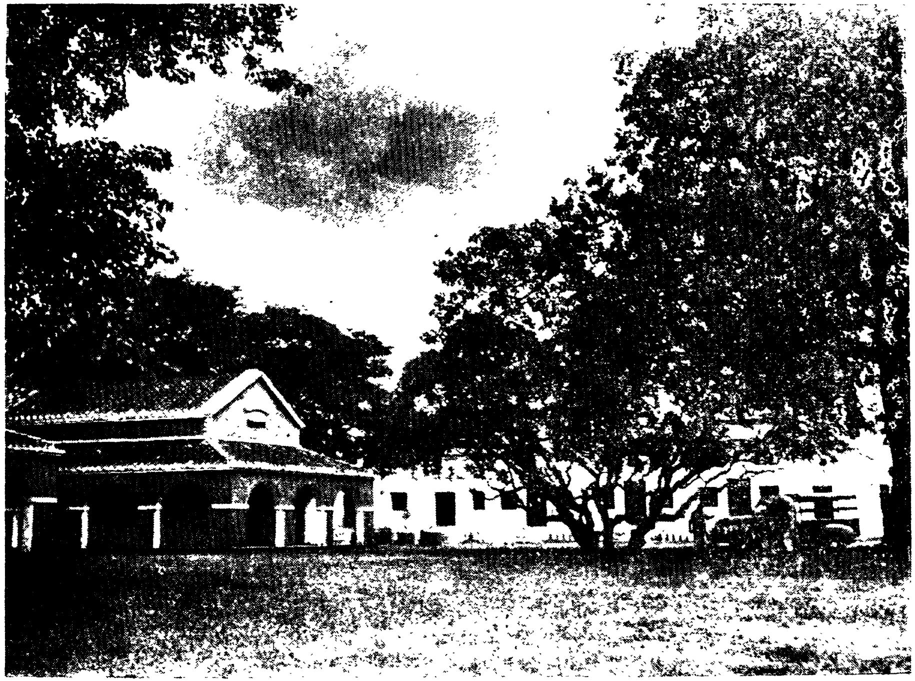
नाना साहब रुहेलखण्ड में : सन् १८५८ ई० के जनवरी माह में अंग्रेजी सेना ने कानपुर व लखनऊ के बीच के मार्ग पर अपना पूरा अधिकार स्थापित कर लिया। नाना साहब ने अवध में रहना उचित न समझा। उन्होंने फरवरी १८५८ ई० में गंगा पार करके बिल्हौर व शिवराजपुर छोड़कर, शिवली व सिकन्दरा की ओर प्रस्थान किया।[1] फतेहगढ़ से कानपुर तक गंगा नदी के सभी घाटों पर क्रान्तिकारी सेना ने नाकाबन्दी की। उन लोगों का ध्येय रुहेलखण्ड तथा गंगा के ऊपरी भाग की सुरक्षा करना था। नाना साहब फरवरी १६ को रुहेलखण्ड की ओर जाते हुए बताये गये।[2] ११ मार्च १८५८ ई० को वह शाहजहाँपुर पहुँच गये। उनके साथ लगभग ४०० सैनिक पैदल अथवा घुड़सवार थे। यहाँ उनके साथ अन्य क्रान्तिकारी दल भी मिल गये। १६ मार्च १८५८ ई० को नाना ने दलबल के साथ रामगंगा नदी को पार किया और अलीगंज में डेरा डाला।[3] शाहजहाँपुर, अलीगंज होते हुए नाना साहब परिवार तथा धन-सम्पत्ति के साथ २५ मार्च १८५८ को बरेली पहुँचे। खान बहादुर खाँ ने उनका आदर-सत्कार किया। बरेली गवर्नमेन्ट कालिज का भवन उनके ठहरने के लिए खाली करा दिया गया। कहा जाता है कि खान बहादुर खाँ ने क्रान्तिकारी सेनाओं का प्रधान नायकत्व भी नाना साहब को देने की इच्छा प्रकट की।

परन्तु नाना साहब ने स्वीकार न किया और खान बहादुर खाँ को अपना पूर्ण सहयोग दिया। नाना साहब के बरेली पहुँचते ही अग्रगण्य नेता वहाँ जमा हुए। वलीदाद खाँ के पुत्र इस्माइल खाँ को फतेहगढ़ जीतने का कार्य सुपुर्द किया गया व उनके साथ फीरोजशाह शाहजादे ने निचले दोआब में युद्ध का भार सँभाला। उन्होंने अपने १७ फरवरी १८५८ ई० के महत्वपूर्ण

१. 'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज'—संलग्न प्रपत्र ६, संख्या ६, कानपुर से जज द्वारा भेजा गया तार तारीख—फरवरी ११, १८५८।

२. वही : संलग्न प्रपत्र २६, संख्या ६।

३. वही : संलग्न प्रपत्र ४३, संख्या ६।



बरेली कालेज भवन
जहाँ मार्च १८५८ में नाना साहब सपरिवार ठहरे थे ।



اشتہار

حکم اشتہار بحکم جنرل اوٹرم صاحب بہادر چیف کمشنر اودھ

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

۲۸ فروری ۱۸۵۸ عیسوی

इश्तिहार

हुकम इश्तिहार बहुकम जंरल औटरम साहिब बहादुर चीफ़ क
मिश्नर औधि ॥ वास्ते इत्तिला दिये हर ख़ास अवाम के व ज़र मे
म इश्तिहार मजारियः साबिक़ः इश्तिहार जारी किया जाता है कि जो
कोई नव्हाब इस पंथ को जो ता गिरफ़्तार करके हाज़िर करेगा या अप
नी नज़दीक इतर पैरवी से गिरफ़्तार करावेगा एक लाख रुपये इनआम पा
वेगा सिवाय जो मक़तल साहिबान अंगरेज़ जो तरसेब क़सूर मुआफ़
हुई भी हो ज़ इज्ज़त व ताल्लुक़ा: उस का बहाल रहेगा किया अमलदारी मुल्क
अव रहमें रहता होगा व हालत रहेगा ले किजकि नमक हराम मज़
कोर मिस्ल मुहासिर: फ़ौज सरकारी से गिरफ़्तार होगा तो मरा मिव इ
श्तिहार न मुलक नररव होवेंगे ॥

२८ फ़रवरी १८५८ ॥

घोषणापत्र की प्रतियाँ रुहेलखण्ड में वितरित करायीं। इसमें खुले शब्दों में कहा गया है कि अवध के सैनिक नवाब अवध के अधीन रहें, रुहेलखंड के सैनिक नवाब खान बहादुर की अध्यक्षता में तथा अन्य फीरोजशाह के नायकत्व में आ सकते हैं। खान बहादुर खाँ ने इस घोषणापत्र की प्रतियाँ बहादुरी प्रेस से छपवायी थीं।[1]

नाना साहब बरेली में अप्रैल माह के अन्त तक रहे। वहाँ उन्होंने खान बहादुर खाँ को हिन्दुओं के साथ मैत्री भाव बढ़ाने में सहायता दी। जब अंग्रेजी सेना का प्रधान सेनापति जलालाबाद पहुँचा तो उन्होंने फरीदपुर में क्रान्तिकारी सेना के संगठन में सहायता की। वहाँ से वह पीलीभीत जिले में बीसलपुर चले गये। कुछ समय पश्चात् वह पुनः अवध में पहुँच गये।

नाना साहब को बन्दी बनाने का प्रयत्न : अंग्रेजी शासन को सन् १८५८ ई० के प्रारम्भिक माह तक यह ज्ञात हो गया कि जब तक नाना साहब बन्दी न बनाये जायँगे क्रान्ति का उग्र रूप बढ़ता ही जायगा। झाँसी, बाँदा, लखनऊ, बरेली इत्यादि सभी केन्द्र, नाना साहब के महान् नेतृत्व में क्रान्ति का संचालन कर रहे थे। बिठूर के महलों से बिछुड़ने पर भी नाना साहब शिविरजीवन की कठिनाइयाँ झेलते हुए सपरिवार एक स्थान से दूसरे स्थान गुप्त रूप से क्रान्ति का कार्य करते जाते थे, कभी लखनऊ में, कभी अन्य स्थानों पर। उनका पता चलना कठिन था। अंग्रेजों के कमिश्नर आउट्रम ने आवेश में आकर २८ फरवरी १८५८ ई० को नाना साहब को बन्दी बनाने के लिए घोषणा की कि 'जो व्यक्ति अपनी तदबीर और पैरवी से गिरफ्तार करावेगा एक लाख रुपये इनाम पायेगा[2]।'

नाना साहब द्वारा क्रांति का रहस्यमय संचालन : जैसे जैसे अंग्रेजों ने नाना को पकड़ने का प्रयास किया, उसी भाँति नाना ने भी अपनी रक्षा के लिए विशेष प्रबन्ध किया। यह प्रसिद्ध था कि नाना साहब ने कई आदमियों को, जिनकी शक्ल, सूरत उनसे मिलती थी, अपना नौकर बना लिया था और दाढ़ी बढ़ा ली थी।

१. 'ऐक्सट्रैक्ट नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज़ नैरेटिव'—फारेन, १८५८ साप्ताहिक विवरण २८ मार्च १८५८ ई० : रुहेलखंड क्षेत्र।

२. सेन्ट्रल रेकार्ड रूम इलाहाबाद : कानपुर फाइल से प्राप्त।

क्रान्तिकारियों के शिविर में नाना साहब के बारे में पूछताछ करना ऐसा अभियोग था जिसकी सजा मौत थी।[1] नाना साहब को एक स्थान से दूसरे स्थान जाने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। मार्च अप्रैल १८५८ ई० में क्रान्तिकारियों की सेनाएँ घिरने लगी थीं। अंग्रेजों की सेनाएँ झाँसी, बरेली तथा लखनऊ की ओर अग्रसर हो रही थीं। लखनऊ में फरवरी १८५८ ई० में बेगम हजरत महल, मौलवी अहमदउल्ला शाह तथा मम्मू खाँ इत्यादि में परस्पर मतभेद हो चले थे। रुहेलखंड में खान बहादुर खाँ के विरुद्ध हिन्दू ठाकुर तथा सेनानी खड़े हो रहे थे। नाना साहब ने इस समय बरेली पहुँचकर हिन्दू मुसलमानों में एका कराया, तथा लखनऊ की रक्षा के लिए कुमुक भेजी। दूसरी ओर अंग्रेजी सेनाओं के लिए आगरा से तोपखाने का काफिला २३ फरवरी को कानपुर आ पहुँचा। कैम्पबेल इस काफिले को लेकर २ मार्च को लखनऊ की ओर चला। दूसरी ओर से राणा जंगबहादुर भी १२ मार्च को लखनऊ पर आक्रमण करने के लिए आ पहुँचा।[2] उसके साथ १०,००० गोरखा थे।

लखनऊ की पराजय : लखनऊ में क्रान्तिकारी सेनाओं ने घमासान युद्ध किया। परन्तु गुरखाली सेना ने अथवा अंग्रेजों की नयी तोपों ने उनको लखनऊ छोड़ने के लिए बाध्य कर दिया। फलतः बेगम अपनी सेना के साथ १६ मार्च १८५८ ई० को पश्चिम की ओर कूच कर गयीं। अंग्रेजी सेना उनको न रोक सकी और न उनका पीछा ही कर सकी। इसी बीच में २५ मार्च को एक अन्य क्रान्तिकारी दल ने लखनऊ पर आक्रमण बोल दिया। परन्तु जब उन्हें उसके खाली होने की सूचना मिली तो वह भी लखनऊ छोड़कर दूसरी ओर चले गये।[3] २१ मार्च १८५८ ई० को जब अंग्रेजी सेनाओं व गुरखाओं ने नगर पर अधिकार पाया तो क्रान्तिकारी सेना का कहीं पता न था, व नागरिक भी भय से नगर छोड़कर भाग गये थे।

१. रेक्स : 'नोट्स आन दि रिवोल्ट'—बिजग्राम हरकारा द्वारा प्राप्त सूचना २८ जनवरी १८५८।

२. पार्लियामेन्ट्री पेपर्स—'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज'—संलग्न-प्रपत्र—२१ संग्रह संख्या ६. पृ० १२१।

३. वही : संलग्न प्रपत्र ३६ संग्रह सं० ३ लखनऊ से प्रधान सेनापति द्वारा भेजा हुआ दिनांक १७ मार्च १८५८ का तार।

बरेली की पराजय तथा नाना साहब : लखनऊ से पीछे हटकर मौलवी अहमदउल्ला साह ने अवध की बेगम के साथ सीतापुर जिले में मोहमदी स्थान पर अपना डेरा डाला। इसी समय १४ मार्च १८५८ ई० का कैनिंग का अवध-घोषणापत्र, जिसमें लगभग समस्त तालुकदारों की सम्पत्ति हड़प लेने की धमकी थी, पहुँचा। फलतः अवध में पुनः आग भड़क उठी। रहे सहे तालुकदार व राजा भी नाना साहब तथा बेगम से आ मिले। मौलवी अहमदउल्ला शाह तो शाहजहाँपुर में थे ही, उन्हें बरेली से सैनिक सहायता मिली।[1] शाहजहाँपुर से पुनः मौलवी मोहमदी पहुँच गये। वहाँ नाना साहब भी आ गये। ५ मई १८५८ ई० को अंग्रेजों से खान बहादुर खाँ ने बरेली में अन्तिम मोर्चा लिया, और नगर खाली कर दिया। बरेली पर अंग्रेजों का अधिकार हो जाने के कारण नाना साहब का मोहमदी रहना ठीक न था। फलतः २२ मई १८५८ ई० को अंग्रेज वहाँ पहुँचे तो नाना साहब, अवध की बेगम वहाँ से दूसरे स्थान को चले गये थे।

जून १८५८ ई० में क्रान्तिकारी सेनाओं की परिस्थिति और भी बिगड़ गयी। ग्वालियर की अल्पकालीन विजय के पश्चात् झाँसी की रानी की मृत्यु ने बुन्देलखण्ड व मध्यभारत में क्रान्तिकारियों के उत्साह को भंग कर दिया। राव साहब व तात्या टोपे तत्पश्चात् छापामार लड़ाई में संलग्न हो गये। खान बहादुर खाँ बरेली खाली कर चुके थे। ५ जून १८५८ ई० को पोवायाँ में मौलवी अहमदउल्ला शाह की मृत्यु के पश्चात् नाना साहब, अवध की बेगम, मम्मूखाँ, तथा फीरोजशाह शाहजादे ने नैपाल की तराई की ओर कूच किया। जून में बिर्जीस कद्र की ओर से राणा जंगबहादुर से पत्र-व्यवहार किया गया।[2] राणा ने उन्हें सहायता देने से इन्कार किया।

१. चार्ल्स बाल : 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' पृ० ३२७।

२. चार्ल्स बाल : 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' पृ० ३७०-३७१। निम्नलिखित तारीखों को पत्र लिखे गये :—

अ : अवध के नवाब के दूत मौलवी मुहम्मद सरफराज अली का महाराजा जंगबहादुर को पत्र- (बिना दिनांक के) ६ जून १८५८ को पहुँचा।

ब : नवाब रमजान अली खाँ, मिर्जा बिर्जीस कद्र बहादुर का नैपाल के महाराजा के नाम पत्र। तिथि--जेठ सप्तमी संवत् १९१५, ११ मई १८५८ ई०।

परन्तु नाना साहब तथा अन्य क्रान्तिकारियों को सिवाय नैपाल की तराई में शरण लेने के और कोई चारा न था। फलतः अपनी रही-सही सेना के साथ उन्होंने बहराइच की ओर प्रस्थान किया। परन्तु १ नवम्बर १८५८ को महारानी विक्टोरिया के घोषणापत्र से भारतीय नेताओं में अंग्रेजों से समझौता करने की आशा जागृत हुई। राजा मानसिंह समझौते के पक्ष में था परन्तु इसके फलस्वरूप अवध के क्रान्ति-कारी नेता उनसे नाराज हो गये व उनको पकड़ने का आदेश दिया। इसी समय अवध की बेगम ने एक अपना घोषणा-पत्र प्रकाशित किया जिसमें अंग्रेजों के झूठे वायदों की चर्चा की।[1] फलत: अवध की बेगम ने अंग्रेजों की हथियार डालने की प्रार्थना को ठुकरा दिया व नाना साहब के साथ नैपाल की तराई की ओर कूच किया।

नाना साहब नैपाल की तराई में : दिसम्बर १८५८ ई०—जैसे जैसे अंग्रेजों की सेनाएँ बहराइच की ओर बढ़ने लगीं, नाना साहब तथा अवध की बेगम, मम्मू खाँ तथा बालक नवाब ब्रिजीस कद्र नैपाल के जंगलों की ओर बढ़ने लगे। बहराइच व इन्था के मध्य में बड़ा घना जंगल था, जिसमें से होकर कोई मार्ग भी न था। यह छिपने के लिए अच्छा था। परन्तु जब अंग्रेजी सेना नानपारा तक पहुँच गई तब नाना साहब अपने दल के साथ चुरदा किले की ओर चले गये। वहाँ उन्होंने अवध की बेगमों को कमिश्नर से समझौते की बात करने की आज्ञा दे दी। परन्तु ब्रिटिश इससे सन्तुष्ट न हुए। वे तो नाना साहब को पकड़ना चाहते थे। उत्तर में नाना, दक्षिण में तात्या तो उनके गले में फाँसी के समान थे। २४ दिसम्बर १८५८ ई० को अंग्रेजी सेनाएँ इन्था पहुँच गयीं। नाना साहब का दल, बेगम व सेना की टुकड़ी सब ही नैपाल के घने जंगलों में विलुप्त हो गये।[2]

स : नवाब ब्रिजीस कद्र का महाराजा जंगबहादुर के नाम पत्र ११ मई, १८५८ ई०।

ह : अली मुहम्मद खाँ से जंगबहादुर को--मई १६।

य : महाराजा जंगबहादुर का उत्तर (बिना तारीख का)।

१. चार्ल्स बाल—'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' पृ०५४३-५४४।

२. विलियम हावर्ड रसेल : 'माई डायरी इन इंडिया' १८६० खण्ड, २, पृ० ३५६।

लार्ड क्लाइड ने नैपाल की सीमा पर पहुँचकर नाना की सेना की तोपों व बन्दूकों की गरज सुनी परन्तु आगे बढ़ने का साहस न किया। २५ दिसम्बर १८५८ ई० को बैसवारा के प्रसिद्ध राणा बेनीमाधो सिंह घूमते-घामते अंग्रेजों की पीछा करने वाली टुकड़ियों से बचते-बचते, अवध की बेगमों के डेरे में आ पहुँचे। वहाँ उन्होंने जंगल के मिट्टी के किले में मोर्चा बनाया व अंग्रेजी सेना की प्रतीक्षा करने लगे। इस समय अंग्रेजों के अनुमान के अनुसार भारतीय सेना में लगभग २०,००० सिपाही थे, ६ तोपें अग्रिम भाग में व १३ पृष्ठ भाग में थीं। यह डेरा दो-तीन मील जंगलों में फैला हुआ था। साथ में ८००-६०० सवार व हाथी, ऊँट तथा बैल-गाड़ियाँ भी थीं।[1] लार्ड क्लाइड ने नाना की सेना का समाचार पाते ही उन पर आक्रमण करने का प्रयास किया, परन्तु थोड़ी-सी झड़प के बाद भारतीय सेना जंगलों में ऐसी विलुप्त हो गयी कि अंग्रेज हाथ मलते ही रह गये।

बरजिडिया किले में : इस संकट-काल में नाना तथा उनके साथियों की चुरदा के राजा ने बहुत सहायता की। दिसम्बर मास में नाना राजा के जंगल के दुर्ग बरजिडिया में छिपे रहे। अंग्रेजों को इसकी सूचना उस समय मिली जब वे उसको छोड़कर चले गये। ३० दिसम्बर १८५८ ई० को नाना साहब तथा बेनीमाधो ने नानपारा से २० मील उत्तर में बाँकी स्थान पर डेरा डाला। जब नाना साहब को यह ज्ञात हुआ कि अंग्रेजों की सेना आगे बढ़ रही है तो उन्होंने ८ हाथियों पर अपना सामान लदवाकर राप्ती की ओर कूच की आज्ञा दी। अंग्रेजी सेना बाँकी की ओर बढ़ी, जंगलों में चक्कर काटती रही, परन्तु भारतीय सेना का कहीं पता न चला।[2]

तराई में अन्तिम झड़प : अंग्रेजी सेना तराई की ओर बढ़ती गयी व राप्ती नदी के किनारे पहुँच गई। यह अवसर देखकर भारतीय सेना ने उन पर तोप दाग दी। इस स्थान पर गोरखपुर के संघर्षकालीन नेता मेहंदी हुसेन तथा अवध की बेगम थीं। अंग्रेजी सेना अचानक आक्रमण से घबरा गयी।[3] उसी स्थान पर दोनों सेनाओं में झड़प हुई। भारतीय सवारों

---

१. विलियम हावर्ड रसेल—'माई डायरी इन इंडिया' पृ० ३६७-३६८।
२. वही : १ जनवरी १८५९ पृ० ३८५-३८६ खण्ड २, १८६०।
३. वही : पृ० ३८६।

ने राप्ती में घुसकर अंग्रेजों पर धावा बोला। अंग्रेजी सेना १ बजे के लगभग वहाँ से भाग खड़ी हुई। जंगल पार करके अपने डेरों में जाकर जान बचायी।[1] अब लार्ड क्लाइड की आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं रही। वह कैनिंग के आदेश की प्रतीक्षा करने लगे।

नाना साहब तथा नैपाल के अधिकारी : नाना साहब तथा अवध की बेगम की राणा जंगबहादुर से लखनऊ के युद्ध में मुठभेड़ हुई थी। उस समय राणा अंग्रेजों के चंगुल में था, फलतः उसने भारतीय क्रान्ति के नेताओं की बातें न सुनीं। परन्तु जब वह नैपाल पहुँच गया तथा उसे अंग्रेजों से मुँहमाँगा प्रसाद न मिला तो वह अन्यमनस्क सा हो गया। नाना के दल-बल सहित नैपाल की सीमा में घुस आने पर भी वह चुपचाप बैठा रहा। राप्ती पर गुरखाली फौजें थीं पर उसने अंतिम झड़प में कोई भाग न लिया।[2] राणा जंगबहादुर को लार्ड कैनिंग ने तराई का २०० मील का भाग देने का वचन दिया, परन्तु अंग्रेजों से पूर्णतया समझौता न हो पाया। इन्हीं कारणों से कैनिंग ने लार्ड क्लाइड को आदेश दिया कि तुम नैपाल की सीमा में प्रविष्ट न हो और सेना सहित लखनऊ वापिस चले आओ। फलतः ७ जनवरी १८५९ ई० को अंग्रेजी सेना हताश होकर नाना साहब, अवध की बेगम, राणा बेनीमाधो तथा मेहंदी हुसेन को नैपाल की तराई में दलबल सहित अन्तिम झड़प में विजेता के रूप में छोड़कर लखनऊ वापिस चली आयी।

नाना साहब का तराई में निवास : राप्ती की विजय के पश्चात् जब नाना साहब ने यह देखा कि अंग्रेजी सेना आगे बढ़ने में असमर्थ है और लखनऊ वापिस जाने की आज्ञा दे दी गयी है, तो उन्होंने नवाब फर्रुखाबाद, मेहँदीहुसेन तथा अन्य राजाओं को आत्मसमर्पण करने की आज्ञा दे दी। वह ७ जनवरी को अंग्रेजी सेना के कूच करने के समय उनके शिविर में पहुँचे तथा अपने को विशेष कमिश्नर के सुपुर्द कर दिया।[3] अंग्रेजों ने राणा जंगबहादुर को क्रान्तिकारियों को अपने देश से निकालने के लिए आदेश दिया। राणा ने तुरन्त एक घोषणा-पत्र निकाला और फिर अंग्रेजों से उन्हें निकालने के लिए सहायता माँगी। राणा ने पुनः बेगम से पत्र-व्यवहार किया। उसमें उन्हें अपनी सेना को भंग करने के लिए कहा।

१. रसेल : 'माई डायरी इन इण्डिया'—पृष्ठ ३१० ।
२. वही पृ० ३१२ ।
३. रसेल : 'माई डायरी इन इण्डिया'—पृ० ३१५ ।

वह केवल बेगम व उनके बेटे व कुछ साथियों को शरण देने को तैयार था। बेगम ने यह स्वीकार नहीं किया।[1] बेगम के साथ वार्तालाप में गुरखाली अधिकारी के सामने नाना साहब व बालाराव भी उपस्थित थे। नैपाली अधिकारी भद्रीसिंह ने राणा को बताया कि नाना व बेगम के साथ ६०,००० सैनिक हैं, १२,००० पैदल सेना व ५,००० घुड़सवार वर्दी में हैं, शेष सहायकों के रूप में। उसने राणा को यह भी बता दिया कि वे सब राणा से भेंट करने काठमाण्डू आने की सोच रहे हैं। भद्रीसिंह ने राणा को यह भी बताया कि बेगम के सम्मुख उपस्थित होने से पहले उसे प्रतीक्षा करनी पड़ी। सेना उसके स्वागत के लिए तैयार हो गयी। तब उसकी सर्वप्रथम बालाराव से भेंट हुई, फिर नाना से, उसके बाद मम्मू खाँ से, अन्त में अवयस्क नवाब ब्रिजीस कद्र से जो शाही पोशाक पहने था व चाँदी के सिंहासन पर विराजमान था। इन सबके बाद नवाब बेगम से भेंट हुई। बेगम ने खुले शब्दों में बताया कि वह राणा जंगबहादुर के चरणों पर गिरने को तैयार है परन्तु अंग्रेजों से समझौता करने को नहीं। वे मुसीबतें झेलने को तैयार थे। उनके पास खाद्य सामग्री की कमी थी। जंगल में खाने-पीने को कुछ पैदा न होता था। उनके घोड़े तथा अन्य पशु भूखों मर रहे थे। सैनिकों के पास थोड़ा-सा ही गोला-बारूद रह गया था। उनका कथन था कि यदि नैपाली शासन ने उन्हें शरण न दी तो मर जायँगे। यदि गोरखों ने अंग्रेजों को लखनऊ जीतने में सहायता न दी होती तो वह अंग्रेजों को परास्त कर देते।[2]

नाना का राणा जंगबहादुर से पत्र-व्यवहार : २ फरवरी १८५९ को नाना ने राणा को पत्र लिखा। साथ में ब्रिजीस कद्र की ओर से भी १ फरवरी १८५९ का पत्र संलग्न किया गया। इसमें राणा को बेगम व नवाब को चितवाँ में आश्रय देने के लिए धन्यवाद दिया गया। साथ ही साथ उन्होंने अंग्रेजों के झूठे आश्वासन की ओर संकेत किया।[3] नाना, बेगम तथा उनके साथी राप्ती नदी से ३५ मील घने जंगलों में शिविर-जीवन

१. चार्ल्स बाल—'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' पृ० ५८०।

२. चार्ल्स बाल—'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' पृ० ५८०।

३. वही : (अ) नाना का जंगबहादुर के नाम २८ जमादी उस्सानी १२७५ हिजरी अर्थात् २ फरवरी १८५९ ई० का पत्र, पृ० ५८०।

(ब) ब्रिजीस कद्र का १ फरवरी १८५९ ई० का पत्र, पृ० ५८१।

व्यतीत कर रहे थे। ६ फरवरी १८५६ को राप्ती तक अंग्रेजी सेना पहुँची। नैपाल में आगे बढ़ने का उनका साहस न हुआ। वे केवल दर्रों की रक्षा करने लगे। शेष सेना वापिस चली गयी।

क्रान्तिकारियों द्वारा बुटवल पर अधिकार[1] : १६ मार्च को तुलसीपुर तथा १८ मार्च को बुटवल पर क्रान्तिकारी सैनिकों ने अधिकार कर लिया। २८ ता० को अंग्रेजी सेना से मुठभेड़ हुई, क्रान्तिकारियों को तराई के जंगलों में पुनः शरण लेनी पड़ी। राणा जंगबहादुर ने बेगम व उनके साथियों को आश्रय देने का वचन दिया परन्तु उसने नाना साहब को पकड़ पाने पर अंग्रेजों के सुपुर्द करने का विचार प्रकट किया। नाना साहब अब भी १०,००० सैनिकों के साथ जंगलों में इधर-उधर छापा मारते रहे समय-समय पर क्रान्तिकारी सैनिक थोड़ी संख्या में बहराइच होते हुए अपने गाँवों को वापिस जाने लगे। अप्रैल १८५६ ई० के पश्चात् नाना साहब तथा अंग्रेजी सेना में कोई मुठभेड़ न हुई। अप्रैल १८५६ ई० में मेजर रिचर्ड्सन तथा नाना साहब में पत्र-व्यवहार हुआ। रिचर्ड्सन नाना साहब का आत्मसमर्पण चाहता था। नाना साहब ने १७वीं रमजान १२७५ हि० अर्थात् २८ अप्रैल १८५६ ई० के इश्तिहारनामा द्वारा उसे कटु शब्दों में उत्तर दिया व मृत्यु-पर्यन्त युद्ध करने का विचार बताया। रिचर्ड्सन को ऐसा पत्रव्यवहार करने पर कड़ी चेतावनी दी गयी।

१८५६ के पश्चात् : बुटवल की लड़ाई के पश्चात् नाना साहब तथा नवाब बेगम व उनके साथियों को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इसके बारे में कई किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। पेशवा वंश के एक व्यक्ति श्री लक्ष्मण ठट्ठे के एक प्रार्थनापत्र (ता० ६-६-५५) के अनुसार नाना साहब ने राणा जंगबहादुर से अन्तिम प्रार्थना की कि वह उनकी धर्मपत्नी तथा माताओं को शरण दे व उनकी देखभाल करे। इसके बाद वह, अपने कुछ साथियों के साथ, जिनमें अजीमउल्ला भी सम्मिलित थे, कहीं चले गये। उनके चले जाने के उपरान्त स्त्रियों ने नैपाल में पेशवाई गद्दी स्थापित की व लक्ष्मीनारायण का मन्दिर स्थापित किया।[2]

---

१. नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज़ प्रोसीडिंग्ज़—फारेन डिपार्टमेंट—साप्ताहिक विवरण ७ अप्रैल १८५६।

२. श्री लक्ष्मण ठट्ठे का डा० राजेन्द्रप्रसाद के नाम प्रेषित प्रार्थना-पत्र दिनांक ६-६-५५ की प्रतिलिपि आदरणीय डा० सम्पूर्णानन्द के नाम।

नाना की खोज : सन् १८६१ ई० में कराची में दो व्यक्ति पकड़े गये, जिनके वास्तविक नाम हरजी भाऊ वल्द छेवानन्द व वृजदास भगत रामजी थे। प्रथम को नाना साहब तथा द्वितीय को उनका सेवक समझा गया। उनको पहचानने का बहुत प्रयत्न किया गया, परन्तु सफलता न मिली। सन् १८६२ ई० के जुलाई मास में अंग्रेजी शासन ने नाना तथा उनके साथियों को पकड़ने के लिए उनके संकेत-चिह्न तथा अन्य ब्योरे प्रकाशित किए। उनमें निम्नलिखित नाम दिये हैं :[1]

(१) नाना राव धूँधूपन्त	अवस्था ३६	वर्ष
(२) बाला	२८	वर्ष
(३) पाण्डुरंग राव	३०	वर्ष
(४) नारो पन्त	४५	वर्ष
(५) सदाशिव पन्त	४५	वर्ष
(६) ज्वालाप्रसाद (ब्रिगेडियर)	४०	वर्ष
(७) लाल पुरी	५०	वर्ष
(८) आभा धनुषधारी (बख्शी)	६०	वर्ष
(९) नारायण मराठा (मुसाहेब)	४२	वर्ष
(१०) तात्या टोपे (कैप्टेन)*	४२	वर्ष
(११) छुमर्सीसिंह जमादार	६०	वर्ष
(१२) गंगाधर तात्या	२३	वर्ष
(१३) रामू तात्या (आत्मज बालाभट्ट)	२५	वर्ष
(१४) अलीमुल्लाह	२५	वर्ष

उपर्युक्त ब्योरे के साथ दिनांक २३ जून १८६३ ई० को डिप्टी कमिश्नर अजमेर तथा मारवाड़ का उत्तर-पश्चिमी प्रान्तीय शासन के सचिव के नाम पत्र है। इसके द्वारा मालूम होता है कि नाना साहब को पकड़ने का कितना प्रयास हो रहा था।

२२ जून १८६३ ई० को डिप्टी कमिश्नर की अदालत में २ बजे एक

१. 'उत्तर-पश्चिमी प्रान्तीय प्रोसीडिंग्स' —पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट जनवरी से जून १८६४ पृ० ११ संख्या नं० १७ प्रोसीडिंग्स न० ७२ तारीख ४ जुलाई १८६३ ई०।

* इसमें तात्या टोपे का नाम क्योंकर आया यह रहस्यमय है; क्योंकि उन्हें १८५९ ई० में सिप्री में फांसी दी गयी थी।

भेदिये ने आकर उन्हें सूचना दी, अपने संकेत-चिह्न दिखाये तथा बम्बई शासन के दो पत्र दिये जो जयपुर-स्थित कर्नल ब्रुक को सम्बोधित थे। यह भेदिया बम्बई शासन द्वारा नाना साहब को बन्दी बनाने के लिए नियुक्त था जो उस समय जयपुर में बताये जाते थे। परन्तु उस दिन वे अजमेर में ही माँडा में ठहरे हुए थे। फलतः अनेक सैनिकों को वहाँ गुप्त रूप से पहुँचने के लिए आदेश देकर डिप्टी कमिश्नर स्वयं रात्रि के समय स्थान पर पहुँचे। भेदिया पहले ही वहाँ पहुँच चुका था। वह सब फकीरों के वेष में थे। यह एक कुण्ड के पास था जो पुरानी तहसील के समीप बताया गया था। दालान में पहुँचते ही एक पुरुष दिखाई दिया। पूछने पर तुरन्त भेदिये ने सबका परिचय दिया। उनको वहाँ पकड़ लिया गया। इस दल में तथाकथित नाना साहब जिनका वास्तविक नाम अप्पाराम था नारो पन्त तथा एक पुजारी जो अन्धा था पकड़े गये। उनकी तलाशी ली गयी तथा संकेत-चिह्नों का मिलान किया गया, उनके कथन लिये गये। डिप्टी कमिश्नर तथा उनके साथियों को विश्वास हो गया कि नाना साहब पकड़े गये; और उन्होंने इस आशय का पत्र उत्तर-पश्चिमी-प्रान्तीय शासन के सचिव को लिखा। कथन में यह ज्ञात हुआ कि तात्या टोपे भी शायद बीकानेर में अभी तक जीवित हैं। यदि ये कथन सत्य थे तो उन सबके किसी अन्य प्रदेश को बच निकलने की सम्भावना हो सकती थी।[1]

नाना साहब को पहचानने का प्रयत्न : नाना साहब को बन्दी बनाने का शासन द्वारा प्रयत्न बराबर जारी रहा। २३ अक्तूबर सन् १८७४ ई० में पायनियर समाचारपत्र ने समाचार प्रकाशित किया कि नाना साहब—"प्रमुख विद्रोहियों में भी परम विद्रोही—शायद गदर के प्रवर्तक जो सफलतापूर्वक बच कर निकल गये" पकड़ गये हैं।[2] एक एक करके क्रान्ति के सभी नेता पकड़े जा

१. ए. जी. डेविडसन, डिप्टी कमिश्नर अजमेर मारवाड़ का पत्र : दिनांक २३ जून १८६३।
'उत्तर-पश्चिमी-प्रान्तीय प्रोसीडिंग्स' : ३० जनवरी १८३४ पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट **खण्ड** १ देखिए परिशिष्ट-६ नानाराव तथा बन्दी अप्पाराम के हुलियों का तुलनात्मक अध्ययन।

२. इलाहाबाद से प्रकाशित—'दि पायनियर' शुक्रवार—दिनांक २३ अक्तूबर १८७४ ई० की प्रति तथा २६ अक्तूबर १८७४ ई० की प्रति।

चुके थे अथवा खेत रहे थे। इसलिए शासन नाना साहब को भी बन्दी बनाने में प्रयत्नशील था। बहुत-से व्यक्तियों का विश्वास था कि वे मर गये; अन्य व्यक्ति उनको नैपाल में ही बताते थे। पायनियर के अनुसार तार द्वारा यह मालूम हुआ कि 'नाना साहब न केवल पकड़ गये हैं वरन् उन्होंने सब कुछ स्वीकार भी कर लिया है। पकड़ा हुआ व्यक्ति अपने को नाना साहब बताता है।' परन्तु पायनियर की ही दिनांक २६ अक्तूबर १८७४ ई० की प्रति में बतलाया गया कि नाना साहब का बन्दी बनाया जाना संदिग्ध है। पकड़ा हुआ व्यक्ति नकली नाना साहब मालूम होता है। सिन्धिया ने, बाबा साहब आप्टे तथा बाबाभट्ट के पुत्र ने और नाना साहब के भतीजे ने उन्हें पहचान लिया था। परन्तु फिर भी बन्दी को नकली नाना साहब बताया गया।

नवम्बर माह में पुनः यह समाचार प्रकाशित हुआ कि नाना साहब ने निराश होकर गंगा में शरीर त्याग दिया। उनके साथी रोते रह गये। एक वर्ष हुआ, आजमगढ़ में मरते समय एक व्यक्ति ने कथन दिया था कि वह नैपाल के जंगलों में नाना साहब के क्रिया-कर्म के समय उपस्थित था। कलकत्ता के एक संवाददाता ने इस विषय में प्रकाश डालते हुए बतलाया कि वह व्यक्ति शायद जीवित नाना के दिखावटी दाह-संस्कार के समय उपस्थित रहा हो। ३० नवम्बर १८७४ ई० की पायनियर की प्रति में मध्यभारत से एक संवाददाता ने प्रकाश डालते हुए बताया कि बन्दी व्यक्ति मराठा था। वह नाना साहब न हो परन्तु उसके साथ रहा अवश्य होगा।[1] फलतः दिसम्बर माह में यह निश्चय हो गया कि बन्दी व्यक्ति नाना साहब न होकर, कोई ऐसा व्यक्ति है जिसका हुलिया बिल्कुल उनसे मिलता-जुलता है। इस प्रकार मुरार में पकड़े गये तथाकथित नाना साहब नकली निकले जिसका वास्तविक नाम हनवन्त बताया गया।

१८ दिसम्बर, मंगलवार, सन् १८७४ ई० के पायनियर में पुनः यह समाचार मिला कि नाना साहब की धर्मपत्नी नैपाल में सधवा के रूप में

१. इलाहाबाद से प्रकाशित 'दि पायनियर' दिनांक ३० नवम्बर १८७४ की प्रति "A correspondent in Central India explained that the man in custody, (the supposed Nana), was Mahratta, was not doubted however, *and if he was not the rose, he had lived near it.*"

रह रही हैं। इसके उपरान्त नाना साहब के बारे में कोई विशेष समाचार शासन को न मिल पाये।

नाना साहब की सम्पत्ति का अपहरण : जुलाई माह में प्रथम कानपुर तथा बिठूर के युद्ध के पश्चात् नाना साहब की अतुल धन-सम्पत्ति अंग्रेजों के हाथ आ गयी। उन्होंने बिठूर को खाली पाकर नाना साहब के पेशवाई महल में आग लगा दी तथा वहाँ से लूटी हुई सामग्री कानपुर ले आये।[1] नाना साहब बहुत ही सीमित बहुमूल्य सम्पत्ति अपने साथ ले जा सके थे। क्रान्तिकारी संग्राम होने के पश्चात् शासन ने नाना साहब की काशी में स्थित सम्पत्ति को भी हड़प लिया। इसकी विस्तृत सूची वाराणसी कलेक्टरी के रिकार्ड रूम में १८६० ई० के रजिस्टर में दर्ज है। उस सूची के अनुसार काशी में कबीरचौरा उद्यान, भैरों बाजार के ५ मकान, २ अन्य खपरैलवाले मकान, मणिकर्णिका घाट पर मुहल्ला गढ़वासी टोला में भवन, बंगाली टोला में चौरासी घाट पर पक्का भवन तथा मन्दिर शासन द्वारा हड़प कर लिये गये। लक्ष्मणवाला भवन जो बड़ा प्रसिद्ध था, ग्वालियर के सिन्धिया को भेंट में दे दिया गया।[2]

नाना साहब की मृत्यु : सन् १८५७ ई० की महान् क्रान्ति के पश्चात् नाना साहब के बारे में अंग्रेजी शासन की खोज असफल रहा। १८६० ई० के पश्चात् बहुत छानबीन करने पर शासन ने कई व्यक्तियों को नाना साहब समझ कर पकड़ लिया था। कराँची में हरजीभाऊ वल्द छेदानन्द ; अजमेर में अप्पाराम ; ग्वालियर में जमुनादास ; मुरार में हनवन्त ; नाना साहब समझ कर पकड़ लिये गये थे। परन्तु उनमें कोई भी वास्तविक नाना साहब न निकले। उनको बन्दी बनाने के सम्बन्ध में जो १ लाख का पारितोषिक दिया जानेवाला था वह भी ब्रिटिश खजाने में धरा ही रह गया। नाना साहब कब और कैसे इस संसार से कूच कर गये, यह किसी को पता नहीं। इधर कुछ वर्षों में प्रतापगढ़ तथा पूना से कुछ व्यक्तियों ने अपने को पेशवावंश से सम्बन्धित बताते हुए नाना साहब के १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत लौट आने पर प्रकाश डाला है। प्रतापगढ़-निवासी श्री सूरजप्रताप ने अपने को नाना साहब के वंशज होने के बारे में कुछ कागजात

१. बिठूर में प्राप्त नाना साहब की सम्पत्ति की विस्तृत सूची कानपुर कलेक्ट्रेट रिकार्ड रूम से उपलब्ध हो गयी है।

२. वही : वाराणसी कलेक्ट्रेट बस्ता नं० ११, १८६० का रजिस्टर।

प्रस्तुत किए थे। उनका कथन था कि उनके पिता श्री रामसुन्दर लाल नाना साहब के पुत्र थे। परन्तु उनके पिता के पटवारी परीक्षा उत्तीर्ण होने की सनद में बाप का नाम माधोलाल लिखा था, और नाना साहब उसमें बाद में बढ़ा दिया गया। उसकी वास्तविक प्रति में राम सुन्दरलाल के पिता का नाम केवल माधोलाल तथा उनकी जाति कायस्थ लिखी है। इससे बताया जाता है कि सनद में कुछ काटछाँट की गयी है। श्री सूरजप्रताप ने जो दो कथन दिलवाये हैं, उनसे भी नाना साहब के विषय में कोई बात निश्चय-पूर्वक मालूम नहीं होती। इस विषय में खोज जारी है। (प्रतिलिपि बयान हरिश्चन्द्र सिंह सुत धृतेन्द्रबहादुर सिंह निवासी ग्राम जगदीशपुर तहसील सदर, जिला प्रतापगढ़, अवस्था ४६ वर्ष तथा प्रतिलिपि कथन परमेश्वर-बख्शसिंह, ग्राम रायगढ़, प्र० पट्टी, जिला प्रतापगढ़ सन् १८५७ ई० के निमित्त प्रमुख नेता बिठूर के नाना साहब पेशवा अर्थात् पेशवा सरकार नाना बाजी-राव— संलग्न।[1])

श्री सूरजप्रताप ने नाना साहब के साथी दीवान अजीमुल्ला खाँ की एक डायरी भी प्रेषित की है। इसकी एक प्रति उर्दू में तथा दूसरी हिन्दी में है। इसमें दो तरह की शैली का प्रयोग किया गया है. एक तो हिन्दी उर्दू की मिश्रित शैली तथा दूसरी ब्रजभाषा अथवा स्थानीय बोलचाल की भाषा की। इससे उसकी सत्यता में सन्देह होता है। अन्तिम पृष्ठों में श्री सूरजप्रताप का नाना साहब से सम्बन्ध दिखाने का भाग पूर्णतया क्षेपक मालूम होता है। अस्तु. इन सबके आधार पर यह कहना कठिन है कि नाना साहब नैपाल से आने के पश्चात् कहाँ रहे, व उनकी धर्मपत्नी वापिस आयीं अथवा नहीं और आयीं तो कब और किसके साथ तथा उनकी मृत्यु नैमिषारण्य, सीतापुर जिले में गोमती तट पर सन् १६२६ ई० में अकस्मात् नदी में बाढ़ आने के कारण हो गयी। उनके साथी अजीमुल्ला खाँ का भी कुछ पता नहीं चलता।

नैमिषारण्य में पूछताछ करने पर ज्ञात हुआ कि वहाँ के पण्डा श्री जगदम्बाप्रसाद तिवारी के पास बिठूर के पेशवा-परिवार के कुछ व्यक्तियों के नीमसार आने तथा ठहरने का उल्लेख है। वह श्रीजगदम्बा के पूर्वजों के

१. परिशिष्ट. ३ व ४। देखिए म्युटिनी बस्ते : कानपुर कलेक्ट्रेट नाना साहब के पहचानने सम्बन्धी फाइलें।

पास संवत् १६४५ अर्थात् १८८७-८८ ई० में आये थे। उन व्यक्तियों के मोरी लिपि में हस्ताक्षर हैं जो प्राप्य हैं। नैमिषारण्य में सन् १६५४ ई० में कुछ वृद्ध पुरुषों से पूछताछ भी की गयी। उन्होंने एक कैलाशन बाबा के बारे में बताया, जो ललिता देवी के मन्दिर में रहते थे तथा जंगल में गड़ी हुई सम्पत्ति से उस मन्दिर में संगमरमर के पत्थर आदि लगवाया करते थे। वह अपने को राजा बताते थे। एक व्यक्ति के कथन के अनुसार वह बाणपुर के राजा थे। अन्य व्यक्तियों ने उन्हें अपने को पूना तथा सतारा का राजा बताते हुए सुना था। इन कथनों से भी कुछ निर्णय नहीं हो सकता। यह कैलाशन बाबा सन् १८८८ ई० में मन्दिर में आये थे। वह लगभग २० वर्ष वहीं रहे। इलाहाबाद में तीर्थ-पुरोहितों से नाना साहब के प्रयाग आने के बारे में कुछ नहीं मालूम हुआ। केवल रत्नागिरी से नारायण विश्वनाथ भट्ट शक संवत् १८१६ में प्रयाग आये थे। उनके साथ उनके पुत्र महादेव राव, विनायक राव, पुरुषोत्तम राव तथा वामनराव तथा दो भतीजे वासुदेव और कृष्णा भट्ट थे।[1] संवत् १६२८ में श्रीमती रामबाई पेशवा प्रयाग आयी थीं। वे अपने को बिठूर से आयी बताती थीं।[2] फलतः नाना साहब के नैपाल से भारत चले आने के उपरान्त निवासस्थानों के बारे में तथा मृत्यु के बारे में अभी कुछ निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता।

डा० मोतीलाल भार्गव
एम० ए०, डी० फिल०

१. श्री रामप्रसाद मिश्र—बिठूर परिवार के प्रयाग में पण्डा की बही नं० ३ पृ० १७०।

२. वही :—बही नं० ४—पृ० १८२-८३।

मौलवी अहमदउल्लाह शाह

परिचय

सिकन्दर शाह जो कि अहमद उल्लाह शाह अथवा फैजाबाद के मौलवी के नाम से विख्यात हैं दक्षिण भारत में स्थित मद्रास प्रेसीडेन्सी के अर्काट जनपद के निवासी बताये जाते हैं।[1] खेद है कि मौलवी के प्रारम्भिक जीवन से सम्बन्धित अधिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। जितना भी कुछ उपलब्ध है उससे यही ज्ञात होता है कि वे एक सुन्नी मुसलमान थे तथा उनका परिवार धन-सम्पदा से परिपूर्ण था। जैसा कि मौलवी शब्द से ही ज्ञात होता है अहमद उल्लाह शाह वास्तव में विद्वान् थे। उन्हें विदेशी भाषा

---

१. तत्कालीन लेखक हचिन्सन ने अपनी पुस्तक 'नैरेटिव आव ईवेन्ट्स इन अवध' के पृष्ठ ३४ पर यह लिखा है कि मौलवी अर्काट के निवासी थे। गबिन्स ने भी अपनी पुस्तक 'म्यूटिनी इन अवध' के १३७ पृष्ठ पर बताया है कि मौलवी मद्रास से आये थे। सचिवालय लखनऊ में सुरक्षित चीफ कमिश्नर, अवध की प्रोसीडिंग्स, संख्या २६ तिथि २१ फरवरी सन् १८५७ से भी इसकी पुष्टि होती है। तत्कालीन भारतीय लेखक सैयद कमालुद्दीन हैदर हसनी हुसैनी ने भी अपनी पुस्तक, 'कैसरुत्तवारीख' में यह कहकर कि "अहमद उल्लाह शाह फकीर रहनेवाला मन्दरास या दकिन का कई बरस से लखनऊ में घसियारी मंडी में रहा करता था," उपर्युक्त मत का समर्थन किया है। परन्तु मैलेसन ने अपनी पुस्तक, 'इंडियन म्यूटिनी आव १८५७' के पृष्ठ १७ पर यह मत प्रकट किया है कि मौलवी फैजाबाद के निवासी थे। ऐसा भास होता है कि सरकारी रेकार्ड तथा तत्कालीन लेखकों का मत पुस्तक लिखते समय मैलेसन के सम्मुख न था। ऐसी दशा में यही उचित होगा कि सरकारी रेकार्ड एवं तत्कालीन लेखकों की बात मानी जाय।

['कैसरुत्तवारीख' का लेखक सैयद कमालुद्दीन हैदर हसनी हुसैनी, जो सैयद मुहम्मद मीर साहब जाफर के नाम से प्रसिद्ध था, शाही वेधशाला का एक मुख्य कर्मचारी था और कम्पनी के अधिकारियों के अधीन उसने

अंग्रेजो में भी अधिकार था।[1] इस 'अद्वितीय एवं सर्वव्यापी' व्यक्ति के शारीरिक गठन का वर्णन करते हुए चार्ल्स बाल लिखता है कि डीलडौल के लंबे, दुबले पर गठे हुए शरीरवाले मौलवी का जबड़ा लम्बा, ओंठ पतले, नासिका गरुड़ जैसी उभरी हुई, नेत्र गहरे तथा लम्बे और भौंहें चेहरे पर प्रमुखता लिए हुए थीं। उनकी दाढ़ी लम्बी था तथा उनके बालों का गुच्छा उनके कन्धे को छूता था।[2]

मुरक्कये खुसरवी के अनुसार अहमद उल्लाह शाह की क्रान्ति के समय ३६ अथवा ४० वर्ष की अवस्था थी। इस हिसाब से इनका जन्म १-३३ हिजरी (१८१७) या १२३४ हिजरी (१८१८) में हुआ था। वे बड़े रूपवान्, शिष्ट तथा दानी थे और यात्रा में रुचि रखते थे। उनके मुख से पता चलता था कि वे किसी धनवान् के पुत्र हैं। उनके निवास स्थान के सम्बन्ध में किसी को कुछ ज्ञात नहीं। युवावस्था में फकीरी से प्रभावित होकर अपने देश से १०-१५ आदमी ले निकल पड़े। उनके साथ पताका तथा नक्कारा होता था। प्रत्येक स्थान के लोग उनसे प्रभावित होकर उनका बड़ा आदर-सम्मान करते थे। अवध में अंग्रेजों के राज्यकाल प्रारम्भ हो जाने के उपरान्त ही लखनऊ पहुँचे और मोहल्ला घसियारी मंडी में ठहरे।

लगभग २१ पुस्तकों की रचना की थी जिसमें ज्योतिषशास्त्र की पुस्तकों को प्रधानता प्राप्त है। लगभग १७ पुस्तकें उसने ज्योतिषशास्त्र से सम्बन्धित लिखीं। अवध के इतिहास की रचना भी उसने क्रान्ति के बहुत पूर्व प्रारम्भ कर दी थी। क्रान्ति के समय वह लखनऊ में ही था और उसे लखनऊ के दरबार का विशेष ज्ञान था। यद्यपि यह पुस्तक उसने सर हेनरी इलियट के आदेशानुसार लिखी थी और इसमें अंग्रेजों के दृष्टिकोण को ही प्रधानता प्राप्त है, फिर भी लखनऊ के दरबार के सम्बन्ध में इस पुस्तक द्वारा बहुमूल्य ज्ञान प्राप्त होता है। संभवतः लेखक शिया होने के कारण मौलवी का प्रभुत्व पसन्द न करता था। अतः मौलवी के लिए उसने प्रत्येक स्थान पर कठोर शब्दों का प्रयोग किया है और उसकी यशस्वी कीर्ति को घटाने की चेष्टा की है (संस्करण, लखनऊ, १८६६)।

१. हचिन्सन : 'नैरेटिव आव इवेन्ट्स इन अवध' पृष्ठ ३४। उरूजे अहदे सल्तनते इंग्लिशिया' पृष्ठ ६१।

२. चार्ल्सबाल : 'दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग २, पृष्ठ ३३७।

वहाँ के लोग भी उनके पास आने-जाने लगे। वह खुल्लमखुल्ला अपनी योग्यता का डंका पीटते थे और कहते थे कि मैं अंग्रेजों का विनाश करने आया हूँ। अंग्रेजों ने उन्हें लखनऊ छोड़ने पर विवश कर दिया और वह फैजाबाद पहुँच गये।[1]

दृढ़प्रतिज्ञ मौलवी, एक अच्छे सैनिक, वक्ता, नेता, लेखक, परामर्शदाता तथा संगठनकर्ता थे। जो भी वीर अंग्रेज उनके संपर्क में विरोधी के रूप में आया उनके सौम्य, साहस, शौर्य्य एवं अद्वितीय कार्यक्षमता की प्रशंसा किये बिना न रहा। मैलेसन का कथन है कि सन् १८५७ ई० के संग्राम में मौलवी को समझने का सबसे अच्छा अवसर थामस सीटन को मिला। सीटन ने मौलवी के गुणों की प्रशंसा में लिखा है कि "वे अद्वितीय योग्यता, साहस एवं दृढ़ संकल्प वाले व्यक्ति थे तथा विद्रोहियों में सर्वोत्तम सैनिक।"[2] फिशर ने मौलवी को क्रान्ति के तीन बड़े व्यूह-रचनाकुशल व्यक्तियों में से एक बताया है। उसके अनुसार दो अन्य, तात्या टोपे तथा कुँवर सिंह थे।[3] मैलेसन के अनुसार षड्यंत्रकारियों में "फैजाबाद के मौलवी अवध में असंतुष्ट व्यक्तियों के प्रवक्ता एवं प्रतिनिधि" थे। अन्य षड्यंत्रकारियों में उसने नानासाहब, झाँसी की रानी एवं कुँवरसिंह को बतलाया है।[4] भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में मौलवी का कार्यक्षेत्र उत्तर भारत, विशेषकर अवध रहा, जहाँ विदेशी शासकों के विरुद्ध अन्तिम युद्ध लड़े गये। यों रुहेलखंड में भी मौलवी ने अपने शौर्य्य का प्रदर्शन किया और शाहजहाँपुर में

१. मुहम्मद अज़मत अलवी : 'मुरक्कये खुसरवी' पृष्ठ २६१ ब। (आप काकोरी निवासी थे। अवध के नवाबों के राज्यकाल में लगभग २० वर्ष आप विभिन्न उच्च पदों पर आसीन रहे। वाजिदअली शाह के राज्य के उपरान्त आपने अंग्रेजी सरकार की नौकरी नहीं की और क्रान्ति के समय आप एकान्तवासी रहे। क्रान्ति के उपरान्त १२८६ हिजरी तद्नुसार १८६९-७० में उन्होंने इस पुस्तक की रचना की। यह पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई है और इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ भी अप्राप्य हैं। एक प्रति लखनऊ विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है।)

२. मैलेसन : 'इन्डियन म्यूटिनी आव १८५७' पृष्ठ १७।

३. एफ. एच. फिशर : 'आजमगढ़ गजेटियर' (१८८३) पृ० १४०।

४. मैलेसन : 'इन्डियन म्यूटिनी आव १८५७' भूमिका पृष्ठ ८।

कॉलिन कैम्पबेल सरीखे मँझे हुए सेनापति को भी व्यूह-रचना में उनके सम्मुख मुँह की खानी पड़ी।

युद्ध में भाग लेने का कारण—यह कहना बड़ा कठिन है कि वे उत्तरी भारत तथा अवध में कब पहुँचे किन्तु अनुमानतः स्वतंत्रता-संग्राम के प्रारम्भ होने के दो-तीन वर्ष पूर्व वे अवध पहुँच चुके होंगे। उपलब्ध सामग्री से ज्ञात होता है कि मद्रास से आने के पश्चात् लखनऊ में घसियारी मंडी नामक मोहल्ले में वे निवास करने लगे। यहाँ वे नक्काराशाह के नाम से प्रसिद्ध थे।[1] १३ फरवरी सन् १८५६ को भारतवर्ष के गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी द्वारा अवध का अन्यायपूर्ण अपहरण किये जाने के फलस्वरूप अवध की जनता विदेशी शासकों की विरोधी हो गयी। मौलवी पर भी इसका बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्होंने भारत को विदेशी शासन से छुटकारा दिलाने का बीड़ा उठा लिया। किंवदन्ती है कि किन्हीं पीर ने उन्हें भारत को विदेशियों के चंगुल से छुड़ाने को प्रेरित किया। इसके अनुसार उनके पीर (गुरु) ने, जिनका कि नाम अज्ञात है, उन्हें इसी शर्त पर शिष्य बनाया था कि वे अपना जीवन अंग्रेजों को भारत से निकालने की चेष्टा में उत्सर्ग कर देंगे। निश्चित रूप से यह कह सकना तो कठिन है कि उनके पीर ने उनसे कोई ऐसा वचन लिया था अथवा नहीं, पर अवध के चीफ कमिश्नर की आख्या से इस समाचार की पुष्टि होती है कि उन्हें उनके पीर ने कुछ शस्त्र अवश्य दिये थे जिनका उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध प्रयोग भी किया।[2]

फकीर के भेष में पर्यटन एवं गुप्त संघटन—मौलवी की धारणा थी कि सशस्त्र विद्रोह की सफलता के लिए सेना से अधिक जनता के सहयोग की आवश्यकता है। अतः जनता के विचारों को मनोवांछित मोड़ देने एवं उनमें जागरण फूँकने के हेतु उन्होंने फकीर

---

१. "अहमदउल्लाह शाह फकीर रहनेवाला मन्दरास (मद्रास) या डाकिन का कई बरस से लखनऊ में घसियारी मंडी में रहा करता था। मशहूर नक्काराशाह था"—(सैय्यद कमालुद्दीन हैदर हसनी हुसैनी : 'कैसरुत्तवारीख' भाग २ पृष्ठ २०३)।

२. अवध फॉरेन्स्ट्रैक्ट प्रोसीडिंग्स (पोलिटिकल), जनवरी से २८ म[illegible] [illegible] १८५[illegible] [illegible] के चीफ कमिश्नर की प्रोसीडिंग्स, २१ फरवरी १८[illegible]

के भेष में विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया, तथा हर स्थान पर अपने चेले बनाये।[1] उनकी ओजस्वी वाणी ने जनता को वास्तविकता से अवगत कराया तथा उनकी प्रभावोत्पादक एवं उत्साहवर्धक लेखनी ने अनेक गुप्त सभाओं को जन्म दिया। दिल्ली, मेरठ, पटना, कलकत्ता तथा अन्य अनेक स्थानों पर जाकर स्वतंत्रता के इस दीवाने ने स्वतंत्रता के बीज बोये।[2] अपने इस प्रयास में अनेक स्थानों पर उन्हें शासन द्वारा दण्डित एवं असम्मानित भी होना पड़ा। लखनऊ में घसियारी मंडी से शहर कोतवाल ने इन्हें चेतावनी देकर निकाल दिया।[3] आगरा शहर में मजिस्ट्रेट की आज्ञा से उन पर कड़ी निगरानी होती थी।[4] यहाँ से भी उनके निष्कासन का आदेश हुआ।[5] मैलेसन का मत है कि चपाती योजना के प्रणेता मौलवी ही थे।[6] गुप्त रूप से संघटन करने में इस योजना ने भी बड़ी सहायता पहुँचायी।

फैजाबाद में बन्दी एवं प्राणदंड की आज्ञा—फरवरी सन् १८५७ में मौलवी अहमदउल्लाह शाह अपने कतिपय साथियों तथा अनुयायियों सहित फैजाबाद की सराय में आकर ठहरे। १६ फरवरी की शाम को शहर कोतवाल ने नगर के विशेष अधिकारी, लेफ्टिनेन्ट थरबर्न को इस समाचार से भिज्ञ कराया। शहर कोतवाल ने उन्हें यह भी बताया कि उस फकीर के पास जनता की बड़ी भीड़ आ-जा रही है और उससे शान्ति के भंग होने का भय है। लेफ्टिनेंट थरबर्न ने मौलवी के पास जाकर उनसे शान्तिपूर्वक अपने शस्त्र दे देने को कहा और यह आश्वासन दिया कि वे उनके नगर छोड़ने पर उन्हें वापस लौटा दिये जायँगे। किन्तु मौलवी ने शस्त्र देना अस्वीकार करते हुए कहा कि शस्त्र उन्हें उनके पीर से प्राप्त हुए हैं अतः वे उन्हें नहीं दे सकते। थरबर्न के यह पूछने पर कि "आप फैजाबाद कब

---

१. हचिन्सन : 'नैरेटिव आव ईवेन्ट्स इन अवध' पृष्ठ ३४-३५।
२. मैलेसन : 'दि इन्डियन म्यूटिनी आव १८५७' पृष्ठ १८।
३. सिहूर सामरी, ९ मार्च १८५७ ई० जिल्द १, संख्या १७, पृष्ठ ६ व ७।
४. चार्ल्स बाल : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग २ पृष्ठ ३३७।
५. गबिन्स : 'म्यूटिनीज इन अवध' पृष्ठ १३७।
६. मैलेसन : 'दि इन्डियन म्यूटिनी आव १८५७' पृष्ठ २१।

छोड़ेंगे ?" मौलवी ने बड़ी लापरवाही से उत्तर दिया कि "जब इच्छा होगी।" इस पर विवश हो थरबर्न ने 'डिप्टी कमिश्नर फोर्बेस को इसकी सूचना दी। १७ फरवरी को प्रातःकाल फोर्बेस दलबल सहित मौलवी के पास गया किन्तु उसे भी निराश हो लौटना पड़ा।

अन्त में लेफ्टिनेन्ट थामस का सुझाव मान यह निश्चय किया गया कि जिस समय सराय के पहरे पर नियुक्त पहरेदार बदलें वे अचानक मौलवी एवं उनके साथियों पर टूट पड़ें जिससे उन्हें इतना अवसर ही न मिले कि वे अपने शस्त्रों का प्रयोग कर सकें और इस प्रकार उन्हें बन्दी बना लिया जाय। अतः पूर्व निश्चित योजना के अनुसार ऐसा ही किया गया। २२वीं भारतीय पदाति सेना के सैनिक, लेफ्टिनेन्ट थामस के नेतृत्व में अपने अस्त्रशस्त्र से लैस होकर मौलवी अहमदउल्लाह शाह एवं उनके अनुयायियों पर उन्हें बन्दी बनाने के अभिप्राय से टूट पड़े। किन्तु जैसा फोर्बेस ने सोचा था उसके विपरीत ही हुआ। मौलवी एवं उनके साथी क्षण भर में सारी स्थिति समझ गये और पलक मारते ही अपने-अपने शस्त्र लेकर प्रतिकार हेतु उद्यत हो गये। अवध के चीफ कमिश्नर की आख्या के अनुसार वे शहीदों की भाँति मरने को प्रस्तुत थे। इस झड़प के फलस्वरूप मौलवी आहत हुए तथा उनके अनुयायियों में से पाँच बुरी तरह घायल हुए, तीन वीरगति को प्राप्त हुए तथा अन्य तीन बन्दी बना लिये गये। मौलवी के आहत हो जाने के उपरान्त उनसे तत्क्षण आत्मसमर्पण करने को कहा गया, और यह आश्वासन दिया गया कि यदि उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया तो उन पर न्यायपूर्वक मुकदमा चलाया जायगा अन्यथा उन्हें तत्काल गोली मार दी जायगी। अतः मौलवी ने आहत अवस्था में आत्मसमर्पण कर दिया। इन लोगों को बन्दी बनाने के उपरान्त सेना के चिकित्सालय में रक्खा गया। थामस तथा २२वीं पलटन के अन्य दो सैनिक भी आहत हुए। थामस एक प्राणघातक वार से बाल-बाल बचा। मौलवी तथा उनके साथियों की तलाशी में उनके पास से अनेक मुसलमानों के पत्र प्राप्त हुए जिनमें अंग्रेजों के विरोध में षड्यंत्र सम्बन्धी बातें लिखी थीं।[1] उपर्युक्त समाचार की पुष्टि तत्कालीन समाचार

१. 'अवध ऐक्स्ट्रैक्ट प्रोसीडिंग्स (पोलिटिकल)' जनवरी से १८ मई १८५७, अवध के चीफ कमिश्नर की प्रोसीडिंग्स, २१ फरवरी १८५७ संख्या २६।

पत्र 'सिहरे सामरी' से भी होती है।[1] अंग्रेज लेखक गबिन्स के अनुसार मौलवी ने प्रकट रूप से अंग्रेजों के विरुद्ध फैजाबाद में धर्मयुद्ध (जेहाद) की घोषणा की थी तथा षड्यंत्र के पर्चे बाँटे थे।[2] हचिन्सन का भी कथन है कि मौलवी हर स्थान पर जहाँ-जहाँ गये, काफिरों (यूरोपियनों) के विरुद्ध जेहाद की घोषणा करते थे।[3] मौलवी पर अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह एवं साठ-गाँठ करने के आरोप में मुकदमा चलाया गया तथा उन्हें माँ की स्वतन्त्रता के

---

१. 'सिहरे सामरी,' १२ रजब, १२७३ हिजरी, जिल्द १ संख्या १७ पृष्ठ ६ व ७

चार्ल्सबाल के अनुसार यह घटना लखनऊ में घटी थी। वह लिखता है कि "इस मास की १६ को अवध की शान्ति खुल्लम-खुल्ला मौलवी सिकंदर शाह द्वारा भंग हुई। वे अपने कुछ सशस्त्र अनुयायियों को लेकर लखनऊ पहुँचे और काफिरों (अंग्रेज़ों) के विरुद्ध युद्ध का प्रचार करने लगे। वे मुसलमानों और साथ ही साथ हिन्दुओं को भी विद्रोह करने अथवा सर्वदा के लिए नष्ट हो जाने की शिक्षा देते थे। मौलवी तथा उनके साथी संघर्ष के उपरान्त बन्दी बना लिए गये। इसमें २२वीं भारतीय पदाति सेना के लेफ्टिनेन्ट थामस तथा चार सैनिक आहत हुए। मौलवी के अनुयायियों में से ३ व्यक्ति मारे गये और ४ अन्य मौलवी सहित घायल हुए।" (चार्ल्स बाल : हिस्ट्री आव दि इण्डियन म्यूटिनी, भाग १ पृष्ठ ४०)। बाल ने इस विवरण में लखनऊ लिखकर भूल की है। सरकारी रिपोर्ट तथा समाचारपत्र 'सिहरे सामरी', लखनऊ दोनों ही के अनुसार घटना फैजाबाद की है। गबिन्स अपनी पुस्तक 'म्यूटिनीज इन अवध' के १३७ पृष्ठ पर कहता है कि उपर्युक्त घटना फैजाबाद में अप्रैल में हुई जो कि सरकारी रेकार्ड तथा सिहरे सामरी द्वारा प्राप्त सूचना के अनुसार ठीक नहीं जान पड़ती। घटना फरवरी में ही हुई थी। हचिन्सन ने भी अपनी पुस्तक 'नैरेटिव आव ईवेन्ट्स इन अवध' के ३५ पृष्ठ पर इसी मत की पुष्टि की है कि घटना फरवरी में घटित हुई। हचिन्सन इसी पुस्तक के पृष्ठ ३६ पर कहता है इस समय वह फैजाबाद में ही था। अतः गबिन्स से अधिक विश्वसनीय हचिन्सन का मत माना जाना चाहिए।

२. गबिन्स : 'म्यूटिनीज इन अवध' पृष्ठ १३७।

३. हचिन्सन : 'नैरेटिव आव दि ईवेन्ट्स इन अवध' पृष्ठ ३५।

लिए प्रयास करने के भीषण आरोप में मृत्युदण्ड की आज्ञा हुई।[1] मौलवी को प्राणदण्ड की आज्ञा देनेवाला कर्नल लेनाक्स था।

जेल के कर्मचारियों की सहानुभूति—संभवतः जनता पर मौलवी के प्रभाव के कारण उन्हें दिये गये दण्ड को तत्काल कार्यरूप में परिणत न किया जा सका। हचिन्सन के अनुसार मौलवी एवं उनके साथियों को नगर के बन्दीगृह में रखना उचित न समझा गया और उन्हें छावनी में सेना के संरक्षण में रक्खा गया।[2] सम्भवतः भविष्य में उन्हें जेल में भेज दिया गया। उस निश्चित तिथि का ज्ञान नहीं है जब वे जेल भेजे गये। उनका व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि उनके सम्पर्क में आने के पश्चात् कोई भी उनका 'मुरीद' हुए बिना न रहता था। जो लोग खुलेआम अंग्रेजों का विरोध नहीं करते थे अथवा अंग्रेजों के नौकर थे वे भी मौलवी के साथ सहानुभूति रखते थे तथा अपने वश भर छिपे-छिपे उनकी हर प्रकार की सहायता करते थे। बन्दीगृह के कर्मचारीगण भी उनसे बहुत प्रभावित थे और भरसक इस चेष्टा में रत रहते थे कि मौलवी को कुछ कष्ट न हो। इसका एक उदाहरण लखनऊ जिलाधीश के माल मुहाफिज़खाने में सुरक्षित, सन् १८५७ की क्रान्ति से सम्बन्धित कागजों से मिलता है। एक दण्डित अभियोगी की फाइल से, जो कि उपर्युक्त मुहाफिजखाने में 'बस्ता गदर' नं० १ में रक्खी है, यह पता चलता है कि डा० नजफअली को १४ वर्ष काले पानी तथा कारागार का दण्ड इस कारण दिया गया था कि उन्होंने मौलवी को बन्दीगृह में अच्छा भोजन पहुँचाया था। डाक्टर नजफअली जेल के डाक्टर थे। अंग्रेजों के नौकर होने के कारण वे प्रकट रूप से तो उनका विरोध नहीं कर सकते थे किन्तु गुप्तरूप से उनके विरोधियों की हर प्रकार की सहायता करते थे। इन्हीं प्रपत्रों में डाक्टर कालिन्स तथा कर्नल लेनाक्स आदि की गवाहियों से यह पता चलता है कि यह डाक्टर ४ जून १८५७ से २८ जुलाई सन् १८५७ तक मौलवी की सेना का डाक्टर रहा।[3]

१. मैलेसन : 'दि इन्डियन म्यूटिनी आव १८५७' पृष्ठ १८।

२. हचिन्सन : 'नैरेटिव आव ईवेन्ट्स इन अवध' पृष्ठ ३१।

फैजाबाद में क्रान्ति होने के पश्चात् मौलवी जेल से छुड़ाये गये। अतः सम्भव है कि कुछ समय पश्चात् वे छावनी से हटाकर जेल भेज दिये गये हों।

३. 'बस्ता गदर नं० १' मुकद्दमा : सरकार बनाम डा० नजफअली (माल मुहाफिजखाना, दफ्तर जिलाधीश, लखनऊ)

फैजाबाद में क्रान्ति से पूर्व—मौलवी के बन्दी बनाये जाने से ही फैजाबाद की जनता में अपार असंतोष था, उन्हे प्राणदण्ड की आज्ञा से यह असंतोष अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। जिस समय अंग्रेजों को यह ज्ञात हुआ कि अंग्रेजों के विरोध की भावना सैनिकों में बढ़ रही है उन्होंने स्त्रियों एवं बच्चों की रक्षा का प्रबन्ध करना आरम्भ किया। फैजाबाद में उस समय उपस्थित हचिन्सन बताता है कि केवल राजा मानसिंह ही इतने शक्तिशाली थे कि अंग्रेजों को शरण दे सकते थे। इसी सम्बन्ध में हचिन्सन यह भी बताता है कि राजा मानसिंह को लखनऊ के आदेश पर फैजाबाद के कमिश्नर ने बन्दी बना लिया था। उन्हें इस समय हचिन्सन के कहने से मुक्त कर दिया गया।[1] कहना न होगा कि राजा मानसिंह से प्रार्थना की गयी कि वे स्त्रियों एवं बच्चों की रक्षा का भार अपने ऊपर ले लें। उदार-हृदय राजा मानसिंह ने अपनी सहमति दे दी। राजा मानसिंह यद्यपि क्रान्तिकारी थे फिर भी अंग्रेज स्त्रियों एवं बच्चों की रक्षा का भार अपने ऊपर लेकर उन्होंने भारतीयों की उदार-हृदयता का परिचय दिया। अतः ८ जून सन् १८५७ की सुबह को कुछ को छोड़ अन्य सब स्त्रियाँ एवं बच्चे राजा मानसिंह के शाहगंज स्थित किले में चले गये।[2] चार्ल्स बाल का कथन है कि अंग्रेजों को यह सूचना मिली कि आजमगढ़ से क्रान्तिकारी फैजाबाद आ रहे हैं। अतः उन्होंने ३ तथा ७ जून सन् १८५७ को सैनिक कौन्सिल इस विषय पर विचार करने के हेतु बुलायी।[3] इस कौंसिल के बुलाए जाने से यह ज्ञात होता है कि अंग्रेजों को इसकी सूचना थी कि फैजाबाद में क्रान्ति होनेवाली है तथा वे पूर्ण रूप से सजग भी थे। हचिन्सन का कथन है कि पहले अंग्रेजों का विचार था कि फैजाबाद में रहकर ही होनेवाली क्रान्ति का प्रतिकार करें। इसी मन्तव्य से थरबर्न ने किलेबंदी भी की। पर अंग्रेजों को इस विचार को त्यागने पर विवश होना पड़ा क्योंकि उन्होंने देखा कि तथाकथित स्वामिभक्त जमींदार भी अनुशासित सैनिकों से न लड़ सकेंगे।[4] इससे यह जानना शेष नहीं रह जाता कि फैजाबाद अंग्रेजों ने विवश होकर छोड़ा, किसी अन्य सैनिक अथवा सामरिक कारण से नहीं।

१. हचिन्सन : 'नैरेटिव आव ईवेन्ट्स' पृष्ठ १०६।
२. हचिन्सन : 'नैरेटिव आव ईवेन्ट्स' पृष्ठ १०६-१०७।
३. चार्ल्स बाल : 'दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग १ पृष्ठ ३६३।
४. हचिन्सन : 'नैरेटिव आव ईवेन्ट्स इन अवध' पृष्ठ १०५।

क्रान्ति का प्रादुर्भाव—हचिन्सन का कथन है कि ८ जून सन् १८५७ ई० को दोपहर को आजमगढ़, बनारस तथा जौनपुर आदि से आये हुए क्रान्तिकारियों ने सैनिकों से कहा कि वे भी उन्हीं में सम्मिलित हो जायँ। हचिन्सन कहता है कि उसे बताया गया था कि पहले सैनिकों ने एक परवाना बहादुरशाह का भी पाया था जिसमें यह लिखा था कि सम्पूर्ण देश उसके अधिकार में है और उन लोगों को भी अपने झंडे के नीचे आने का आह्वान किया था।[1] फैज़ाबाद तथा अवध के अन्य जनपदों में अब तक क्रान्ति न होने का कारण लखनऊ में देर से क्रान्ति का होना था। क्रान्तिकारियों की दृष्टि राजधानी लखनऊ की ओर थी और लखनऊ में क्रान्ति होने के पश्चात् एक के बाद दूसरे, लगभग अवध के सभी जनपदों में क्रान्ति हो गयी। लखनऊ में क्रान्ति ३० मई सन् १८५७ ई० की रात को ९ बजे हुई।[2] अन्त में आठ जून १८५७ की रात के दस बजे फैजाबाद की सेना ने भी क्रान्ति का झण्डा ऊँचा किया।[3] क्रान्तिकारियों ने अन्य स्थानों की भाँति क्रान्ति के लिए कोई बहाना, कारतूस में चर्बी अथवा आटे में पिसी हड्डी मिली होने का नहीं किया। उन्होंने स्पष्ट रूप से यह कहा कि "हम अंग्रेजों को भारत से निकाल सकने में अब पूर्णरूप से समर्थ हैं। उन्होंने यह भी कहा कि वे क्रान्ति इसलिए कर रहे हैं कि वे अब अंग्रेजों को देश से निकालना चाहते हैं।"[4]

मौलवी का राजनैतिक पुनर्जन्म—क्रान्तिकारियों ने सबसे पहले सरकारी कोषालय पर अधिकार किया। सरकारी कोषालय में उस समय दो लाख बीस हजार रुपये थे।[5] तत्पश्चात् वे बन्दी-

१. हचिन्सन : 'नैरेटिव आव ईवेन्ट्स इन अवध' पृष्ठ १०८।
२. 'ए लेडीज़ डायरी आव दि सीज आव लखनऊ' पृष्ठ ३०। हचिन्सन की 'नैरेटिव आव दि ईवेन्ट्स इन अवध' के पृ० ५९ से भी उक्त समाचार एवं तिथि की पुष्टि होती है।
३. 'तारीखे आफताबे अवध' लेखक मिर्ज़ा मोहम्मद तकी पृष्ठ ३२२। हचिन्सन : 'नैरेटिव आव ईवेन्ट्स इन अवध' पृष्ठ १०८ से भी इसकी पुष्टि होती है।
४. हचिन्सन : 'नैरेटिव आव ईवेन्ट्स इन अवध' पृष्ठ १०८।
५. हचिन्सन : 'नैरेटिव आव दि ईवेन्ट्स इन अवध' पृष्ठ १११।

...र की ओर गये जहाँ उनका प्रिय नेता मौलवी अहमद उल्लाह शाह बन्दी के रूप में बन्द था। उन्होंने बन्दीगृह के दरवाज़े तोड़ डाले और मौलवी अहमद उल्लाह शाह को मुक्त कर दिया।[1] उनके साथ बन्दीगृह में बन्द अन्य बन्दी भी मुक्त कर दिये गये। यह मौलवी का राजनीतिक दृष्टि से पुनर्जन्म था। 'मुरक्कए खुसरवी' के लेखक का कथन है कि "जब फैज़ाबाद में क्रान्ति प्रारम्भ हुई तो उन्हें भी बन्दीगृह से निकाला गया। जिसने सुना वह मियाँ कहे और जिसे देखो गोया उनका बन्दा है। हर अमीर, गरीब, महाजन अथवा बनिया जो शाह जी तक पहुँचा उसे शान्ति प्राप्त हुई।"[2] सैनिक क्रान्तिकारियों ने उन्हें मुक्त कर अपना नेता चुना तथा उनके सम्मान में सलामी दागी।[3] मौलवी ने सैनिकों का चुनाव स्वीकार कर उनका नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया।

क्रान्तिकारियों की उदारता

क्रान्तिकारियों ने यद्यपि अंग्रेजों से भारत की स्वतंत्रता के लिए युद्ध किया किन्तु उनकी स्त्रियों एवं बच्चों पर बहुत कम हाथ उठाया। अनेक स्थानों पर तो पुरुषों तक से यह कहा गया कि वे भाग जायँ और इतना ही नहीं उन्हें भागने में भी सहायता दी। स्वयं कर्नल लेनाक्स का कथन है कि "विद्रोही सैनिकों के नेता सूबेदार दलीपसिंह (२२वीं भारतीय पदाति सेना) ने अंग्रेजों को यह आश्वासन दिया था कि वह सबको भाग जाने देगा और उसने अपने वचन का पूर्ण रूप से पालन भी किया। केवल वे ही दो अंग्रेज मारे गये जिन्होंने छिपकर भागने की चेष्टा की। ९ जून की सुबह को क्रान्तिकारियों ने अंग्रेज अधिकारियों को नावें ला दीं और भाग जाने में सहायता दी।" कर्नल लेनाक्स एवं उनकी पत्नी फैजाबाद में दोपहर के दो बजे तक रह गये। मौलवी अहमद उल्लाहशाह ने डा० नजफ अली को उनके पास भेजकर उन्हें इसके लिए धन्यवाद दिया कि उन्होंने मौलवी को बन्दीगृह में हुक्का पीने

१. हचिन्सन : 'नैरेटिव आव दि ईवेन्ट्स इन अवध' पृष्ठ १११। 'तारीखे आफताबे अवध' ले० मिर्जा मोहम्मद तकी, पृष्ठ ३२२ से भी इसकी पुष्टि होती है।

२. 'मुरक्कए खुसरवी' लेखक मुहम्मद अजमत अलवी, पृष्ठ २९२ अ।

३. गबिन्स : 'म्यूटिनीज इन अवध' पृष्ठ १३७।

की अनुमति दी थी और उनसे कहलाया कि वे न भागें। मौलवी स्वयं उनकी देख-रेख करेंगे। पाठकों को याद होगा ये वे ही कर्नल लेनाक्स हैं जिन्होंने फ़रवरी सन्' ५७ में मौलवी को प्राणदण्ड की आज्ञा दी थी। इस पर भी मौलवी का उन्हें धन्यवाद देना यह बतलाता है कि वे स्वार्थवश अथवा किसी व्यक्ति-गत भावनावश स्वतंत्रता-समर में योग देने को प्रेरित नहीं हुए थे। उनका ध्येय बहुत ऊँचा था। वे तो माँ को स्वतंत्र देखना चाहते थे। अपने नेता ही की भाँति सैनिकों ने भी आचरण किया जिसका उदाहरण ऊपर दिया जा चुका है। स्त्रियों के प्रति प्रदर्शित उदारता का उदाहरण हमें हचिन्सन द्वारा संकलित 'नैरेटिव आव ईवेन्ट्स इन अवध' में भी मिलता है। इस विवरण के अनु-सार मिसेज मिल्स ने एक हवलदार के घर में अपने आपको छिपाने की चेष्टा की। पर उसने उन्हें भोजन देने से इन्कार कर दिया अतः विवश होकर मिसेज मिल्स को अपने आपको क्रान्तिकारियों के नेता के सम्मुख उपस्थित करना पड़ा जिसने कुछ रुपया देकर उन्हें घाघरा नदी के पार गोरखपुर जन-पद में भेज दिया।[1] यदि वह चाहता तो मिसेज़ मिल्स को तत्काल यमलोक पहुँचा सकता था पर उसने ऐसा नहीं किया यह उसकी उदारता एवं वीरता का परिचायक है।

मौलवी द्वारा सिंहासन का त्याग

क्रान्ति के श्रीगणेश एवं मौलवी अहमदउल्लाह शाह के मुक्त होने के उपरान्त क्रान्तिकारियों के समक्ष फैजाबाद के सिंहासन को किसी योग्य व्यक्ति को सौंपने का प्रश्न उठा। यद्यपि सेना ने मौलवी को अपना नेता चुन लिया था पर सिंहासन के प्रश्न का कोई उचित समाधान अभी तक न निकल सका था। मौलवी के जीवन एवं कार्य-कलापों को देखने से ज्ञात होता है कि क्रान्ति के एक महान् नेता होने के कारण उन्होंने इस बात को पूर्ण रूप से समझ लिया था कि उनका स्वयं सिंहासनारूढ़ होना उचित नहीं। वे यह भली भाँति समझते थे कि सिंहासन पर बैठ कर क्रान्ति का संचालन नहीं हो सकता, उसके लिए तो सेना तथा जनता के कन्धे से कन्धा मिलाकर शत्रु के विरुद्ध कर्मयोगी की भाँति संघर्ष करने की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त फैजाबाद में बहुत समय से अवध का शासन रहने के कारण वहाँ मुसलमानों में शियों को अधिक प्रभुत्व प्राप्त था। मौलवी को

---

१. हचिन्सन–'नैरेटिव आव ईवेन्ट्स इन अवध' पृष्ठ ११०।

वह समझने में अधिक देर न लगी कि यदि सिंहासन के प्रश्न का उचित रूप से समाधान न किया गया तो सम्भव है क्रान्ति की प्रगति में बाधा पड़े। फैजाबाद में सुन्नियों का अधिक प्रभाव न होने के कारण सुन्नी राजा का प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसी दशा में केवल दो ही मार्ग शेष रह गये। प्रथम, किसी शिया अवधवंशीय को ही सिंहासनारूढ़ किया जाना तथा द्वितीय, किसी हिन्दू के कन्धों पर यह भार छोड़ा जाना, जोकि वहाँ बहुत बड़ी संख्या में थे। 'कैसरुत्तवारीख' का लेखक लिखता है कि "इस कारण कि कहीं हिन्दू-मुसलमान में फसाद न हो जाय मौलवी को सिंहासनारूढ़ न किया गया।" अतः शुजाउद्दौला के पोते, मिर्जा अब्बास को राजा चुना गया। परन्तु वे वृद्धावस्था के कारण इस भार को ढो सकने में असफल सिद्ध हुए। तदुपरान्त उस क्षेत्र के सबसे सशक्त हिन्दू नेता राजा मानसिंह को फैजाबाद देकर क्रान्तिकारी लखनऊ चले गये।[1] सेना के नेता मौलवी अहमदउल्लाह शाह ही रहे और उन्होंने भी सेना के साथ लखनऊ की ओर प्रस्थान किया। उन्होंने सेना के विभिन्न दलों को एक दूसरे के निकट लाने में बड़ी योग्यता से काम किया।[2]

चिनहट का युद्ध

मौलवी के नेतृत्व में फैजाबाद की सेना के लखनऊ के निकट पहुँचने के समाचार ने अंग्रेजों में खलबली पैदा कर दी।[3] वे समझने लगे कि अब उनका क्रान्तिकारियों के हाथों से बचना कठिन है। अतः चीफ कमिश्नर ने २५ जून १८५७ ई० को कैसरबाग से समस्त बहुमूल्य धन-सम्पत्ति हटा दी।[4] 'कैसरुत्त-

१. 'कैसरुत्तवारीख' भाग २, पृष्ठ २०३-२०४। गबिन्स का मत है कि मौलवी २ दिन बाद नेतृत्व से वंचित कर दिये गये पर यह ठीक नहीं जान पड़ता, क्योंकि 'कैसरुत्तवारीख' के अनुसार वे प्रारम्भ में भी सेना के नेता थे और २ दिन बाद भी सेना उन्हीं के नेतृत्व में लखनऊ की ओर गई। (गबिन्स : 'म्यूटिनीज इन अवध', पृष्ठ १३७)।

२. 'कैसरुत्तवारीख' भाग २ पृष्ठ २१०—"अहमदउल्लाह शाह फकीर भी ब-इरादए-फासिद बादशाहत लखनऊ (लखनऊ के राज्य को हथियाने के कुत्सित विचार से) फौज के साथ था।"

३. 'कैसरुत्तवारीख' भाग २, पृष्ठ २१०-२११।

४. 'कैसरुत्तवारीख' का लेखक लिखता है कि "महल की बेगमों ने अपनी

वारीख' का लेखक लिखता है कि ३० जून को चीफ कमिश्नर को सूचना मिली कि ७ कम्पनी तिलंगों की, घोड़चढ़ी तोपें, एक रिसाला लखनऊ से २ कोस पर अलीगंज में हनुमान्‌जी के मन्दिर पर पहुँच गया है। शेष सेना विभिन्न टुकड़ियों में नवाबगंज की ओर से एक दूसरे के पीछे चली आती हैं। यह सब लगभग १५ हज़ार होंगे। हचिन्सन के मतानुसार स्वयं कैप्टेन लारेंस के अधीन १० तोपें, १२० अश्वारोही तथा ५३० पदातियों की एक सेना मौलवी के प्रतिरोध के लिए पहुँची।[1] लोहे का पुल पार करके वह सुबह होते-होते कुकराल पहुँचा।[2] महावीरजी के मन्दिर के निकट दोनों सेनाओं में घोर युद्ध हुआ। अंग्रेज सेना परास्त हुई और इस्माइलगंज में शरण लेने की सोचने लगी किन्तु किसी निश्चय पर न पहुँची। इसी समय क्रान्तिकारी सेना ने इस्माइलगंज को अपने पीछे रख दाएँ, बाएँ तथा पीछे से तोप तथा

मूर्खता से विलाप प्रारम्भ कर दिया कि 'बादशाह का घर लूटे लिये जाते हैं।' चीफ साहब ने फरमाया कि 'फौजें-बागियों के डर से अपनी रक्षा में लिए जाते हैं अन्यथा यहाँ रखने में इनके नष्ट हो जाने का भय है।' ('कैसरुत्तवारीख,' भाग २, पृष्ठ २११) हचिन्सन भी उक्त समाचार की पुष्टि करता है। वह कहता है कि लखनऊ का घेरा प्रारम्भ होने के ४ दिवस पूर्व कैसरबाग से पुराने राजा के जवाहरात इत्यादि हटाकर बेलीगारद में रख दिये गये थे। उसका कहना है कि ऐसा इसलिए किया गया कि वे क्रान्तिकारियों के हाथ में न पड़ें। (हचिन्सन : 'नैरेटिव आव दि ईवेन्ट्स इन अवध', पृष्ठ १६२) हचिन्सन लिखता है कि "इस प्रकार हेनरी लारेन्स ने विद्रोहियों को अस्सी लाख जवाहरातों से वंचित किया।" (हचिन्सन : 'नैरेटिव आव दि ईवेन्ट्स इन अवध', पृष्ठ १६३)।

१. हचिन्सन : 'नैरेटिव आव दि ईवेन्ट्स इन अवध' पृष्ठ १६४-१६५। 'कैसरुत्तवारीख' के अनुसार इस सेना में ३०० सवार सिक्ख, १२०० बरकन्दाज, ५ कम्पनी तिलंगा व गोरा, ११ बड़ी तोपें बैल से खिंचने वाली और घोड़े से खिंचनेवाली ५० थीं। इसके अनुसार अंग्रेजी सेना का नेतृत्व मेजर कार्नेगी कर रहा था। ('कैसरुत्तवारीख' भाग २, पृष्ठ २१०-२११) किन्तु 'मुरक्कए खुसरवी' के अनुसार मिस्टर लारेन्स ही नेतृत्व कर रहे थे। (पृष्ठ २८८ अ)।

२. 'कैसरुत्तवारीख' भाग २, पृष्ठ २१२।

बन्दूक चलाना प्रारम्भ कर दिया। अंग्रेजी सेना के पैर न जम सके और वापसी का बिगुल बजाना पड़ा। लोहे के पुल तक अंग्रेजी सेना का पीछा किया गया। कैप्टेन हन्डरसन के मतानुसार १११ गोरे जान से मारे गये।[1] बहुत-सी अंग्रेजी तोपें क्रान्तिकारियों के अधिकार में आ गयीं। अंग्रेज भागते हुए मिर्जा सुलेमान शुकोह के घर से बेलीगारद् में प्रवेश कर गये। 'कैसरुत्त-वारीख' के लेखक ने अंग्रेजों के भागने का बड़े मार्मिक शब्दों में विवरण दिया है। मौलवी का यश गाते हुए वह लिखता है कि "अहमदउल्लाह अत्यन्त क्रियाशील था, पाँव में गोली लगी। अपनी तलवार चलाने तथा वीरता पर बड़ा गर्व करता था।"[2]

बेलीगारद् पर प्रथम आक्रमण

"जब बेलीगारद वालों ने पराजय के समाचार सुने और बाहर से सबको घबड़ाया हुआ प्रविष्ट होते देखा और तोप को दोनों मोर्चों से चलते देखा तो प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी जान बचाकर जिस प्रकार हो सका निकल भागा। कुल २७०० सिपाही, ५०० गोरे, ४०० से अधिक मेमें व बच्चे, शेष दफ्तर के कर्मचारी, ईसाई, सिक्ख, पंजाबी, तिलंगे इत्यादि........ . इस समय अजब तरह का तहलका मचा हुआ था। अंग्रेज सिपाही जिन्हें घर से बुलाकर विभिन्न मोर्चों पर नियुक्त कर दिया गया था सब प्राण लेकर हर ओर से भागे।"[3] 'कैसरुत्तवारीख' के लेखक का कथन है कि यह मौलवी की अन्तिम विजय थी। वास्तव में मौलवी बड़े साहस एवं वीरता के साथ लड़े तभी अंग्रेजों को बेलीगारद के अन्दर खदेड़ने में सफल हो सके।

मच्छी भवन पर आक्रमण

मौलवी अहमद उल्लाह शाह के लखनऊ पहुँच जाने से क्रान्तिकारिय

1. 'मुरक्कए खुसरवी' हस्तलिखित पृष्ठ २८८ ब के अनुसार १४० व्यक्ति खेत रहे।

2. 'कैसरुत्तवारीख' भाग २ पृष्ठ २१३।

3. 'कैसरुत्तवारीख' भाग २, पृष्ठ २१४-२१५।

'ए लेडीज डायरी आव दि सीज आव लखनऊ' की लेखिका ने अपनी पुस्तक के ७५ पृष्ठ पर लिखा है कि "३० जून को ९ बजे हमलोग घेरे क स्थिति में थे। बेलीगारद के पीछे से बड़ी भीषण गोलों की वर्षा हुई। सब स्त्रियाँ एवं बच्चे एक अंधेरे तथा गंदे तहखाने में भेज दिये गये जहाँ सब दुखी, उत्सुक तथा भयभीत पूरे दिन बैठे रहे।"

की शक्ति द्विगुणित हो गयी तथा इसी समय से लखनऊ से अंग्रेजी राज्य का पूर्णरूप से अन्त हो गया तथा वे घेरे की स्थिति में आ गये। इस समय अंग्रेज दो स्थानों को अपने अधिकार में किए थे। एक बेलीगारद तथा दूसरा मच्छी भवन। पहली जुलाई को क्रान्तिकारियों ने मौलवी के नेतृत्व में मच्छी भवन पर आक्रमण कर दिया। बड़ी भीषण गोलाबारी की। मच्छी भवन से जो तोपें चलती थीं उनका क्रान्तिकारियों पर कोई प्रभाव न होता था। शहर के निवासियों ने मौलवी की एक दिन पहले की विजय तथा अपने मध्य उनकी उपस्थिति से प्रोत्साहित होकर अपनी-अपनी वीरता का प्रदर्शन करना आरम्भ कर दिया। मौलवी के लखनऊ पहुँचने के पूर्व न तो बेलीगारद पर ही घेरा डाला गया था न ही मच्छी भवन पर आक्रमण। अब जैसा कि 'कैसरुत्तवारीख' का लेखक लिखता है शहर के निवासियों ने, जिन्हें वह "शोहदा" कहता है शत्रु पर आक्रमण करने के लिए प्रातःकाल से ही तोपें लगा दीं। उसके अनुसार शहर के बच्चे-बच्चे ने इसमें भाग लिया।[1] अंत में विवश होकर कैप्टेन फुल्टन को बे तार-के-तार द्वारा मच्छी भवन खाली करने का आदेश अंग्रेजों को देना पड़ा और उसी रात को १२ बजे लेफ्टिनेंट थामस ने मच्छी भवन खाली कर उसे बारूद से उड़ा दिया[2] और बेलीगारद में शरण ली।

बेलीगारद पर दूसरा आक्रमण

शुक्रवार के दिन संभवतः २ जुलाई सन् १८५७ को मौलवी अहमद उल्लाह शाह ने बेलीगारद पर एक बहुत भीषण आक्रमण किया। ऐसा भास होता था कि वे उस दिन उस पर अधिकार करने का निश्चय कर चुके थे। मौलवी सैनिकों को बार-बार जोश दिला रहे थे। वे स्वयं बेलीगारद की दीवार के फाटक के नीचे जा पहुँचे। बेलीगारद में जो लोग घिरे हुए थे

---

१. 'कैसरुत्तवारीख' भाग २, पृष्ठ २१७।

२. 'हचिन्सन: 'नैरेटिव आव दि इवेन्ट्स इन अवध' पृष्ठ १६७।

'ए लेडीज डायरी आव दि सीज आव लखनऊ' की लेखिका अपनी २ जुलाई की दैनन्दिनी में लिखती है कि "पिछली रात को मच्छी भवन उड़ा दिया गया। ऐसा भीषण विस्फोट हुआ कि यद्यपि हम लोगों को मालूम था कि क्या होने वाला है फिर भी न समझ सके कि यह क्या हुआ" (पृष्ठ७८)।

'कैसरुत्तवारीख' भाग २ पृष्ठ २१५ से भी इसकी पुष्टि होती है।

उनका कथन है कि उन सबको विश्वास हो गया था कि उनका विनाश हो जायगा। इसका कारण यह था कि कई दिन के निरन्तर आक्रमण के कारण बेलीगारद के समस्त गोरे तथा भारतीय सैनिक थक कर चूर हो चुके थे। इसी दिन सुबह ८॥ बजे हेनरी लारेन्स एक गोले से घायल हुआ जो उसके लिए प्राण-घातक सिद्ध हुआ।[१] सारे दिन भीषण गोलाबारी होती रही। शायद क्रान्तिकारियों को यह ज्ञात था कि लारेन्स अभी जीवित है अतः जिस मकान में वह लेटा था उसी को लक्ष्य कर गोले पर गोले फेंके जा रहे थे।[२] मौलवी अहमद उल्लाह शाह ने फाटक के पीछे से सैनिकों को ललकारा कि इसी आक्रमण में बेलीगारद पर अधिकार कर लेना है। पर सैनिक इस बात का साहस न कर सके और बेलीगारद से निरंतर गोलों की वर्षा होने के कारण उन्हें वापस होना पड़ा।[3]

ब्रिजीसकद्र सिंहासनारूढ़

मौलवी अहमदउल्लाह शाह अनेक स्थानों से लखनऊ आयी हुई क्रान्तिकारी सेना के नेता हो गये। सेना ने तुरन्त ही एक सैनिक समिति बनायी जिसकी देख-रेख में क्रान्ति का संचालन प्रारम्भ हुआ। लूटमार को रोकने तथा नगर में शान्ति-स्थापना का प्रयत्न किया गया।[४] उचित अधिकारी भी प्रत्येक कार्य के लिए ढूँढ़े जाने लगे।[५] फैजाबाद के समान ही लखनऊ में भी उचित व्यक्ति को सिंहासनारूढ़ करने का प्रश्न उठा। बहुत वाद-विवाद के उपरान्त अवध की बेगम हजरत महल तथा मम्मू खाँ के प्रभाव से यह निश्चय हुआ कि नवाब वाजिदअली शाह तथा बेगम हजरत महल के पुत्र ब्रिजीसकद्र को, जिनकी आयु केवल ११ वर्ष की थी, सिंहासनारूढ़ किया जाय। 'मुरक्कए खुसरवी' के अनुसार यह निर्णय अहमद उल्लाह शाह के नेतृत्व में सेना के अधिकारियों ने अपने कोर्ट अथवा सैनिक समिति में विचार-विमर्श के उपरान्त किया था।[६] मिर्जा ब्रिजीसकद्र का

१. 'ए लेडीज डायरी आव दि सीज आव लखनऊ' पृष्ठ ७६।
२. 'ए लेडीज डायरी आव दि सीज आव लखनऊ' पृष्ठ ७८।
३. 'कैसरुत्तवारीख' भाग २, पृष्ठ २३०।
४. 'कैसरुत्तवारीख' भाग २, पृष्ठ २२०।
५. 'कैसरुत्तवारीख' भाग २, पृष्ठ २२४।
६. 'मुरक्कए खुसरवी' पृष्ठ २१३ अ।

सिंहासनारोहण १२ जीकाद १२७३ हिजरी तदनुसार ५ जुलाई १८५७ को हुआ था।[1] सेना के अधिकारियों ने बिर्जीसकद्र से कुछ शर्तें भी की थीं जिनमें से एक यह थी कि बिना कोर्ट कौन्सिल के परामर्श के कोई आदेश न दिया जाये।[2] इस प्रकार मिर्जा बिर्जीसकद्र को सिंहासनारूढ़ किया गया और जहाँगीरबख्श, फैजाबाद के तोपखाने के सूबेदार, ने २१ तोपों की सलामी दागी।[3]

पद की लिप्सा नहीं

जिस प्रकार मौलवी फैजाबाद में स्वयं सिंहासनारूढ़ न हुए वरन् सिंहासन दूसरों को दे दिया उसी प्रकार उन्होंने लखनऊ में भी सिंहासन दूसरों को प्रदान कर दिया। स्वयं तो वे फकीर के फकीर ही बने रहे। यदि चाहते तो स्वयं अपने-आपको सिंहासन पर आरूढ़ कर सकते थे। जैसा कि अभी ऊपर कहा गया उनका सेना पर बड़ा प्रभाव था। यह उन्हीं के प्रभाव का

१. दोनों तत्कालीन भारतीय लेखक, मुहम्मद अजमत अलवी लेखक 'मुरक्कए खुसरवी' (पृष्ठ २६३ अ) तथा सैयिद कमालुद्दीन हैदर हसनी हुसैनी लेखक 'कैसरुत्तवारीख' (भाग २, पृष्ठ २२५) का इस प्रश्न पर एक मत है। परन्तु 'ए लेडीज डायरी आव दि सीज आव लखनऊ' की लेखिका अपनी पुस्तक के पृष्ठ ६२ पर इस घटना को २६ जुलाई की बताती हैं। भारतीय लेखक क्रान्तिकारी दरबार के अधिक निकट थे अतः क्रान्तिकारी दरबार के सम्बन्ध में उनके द्वारा प्राप्त सूचना लेखिका, जो कि बेलीगारद की चहारदीवारी में बन्द थीं, से अधिक विश्वसनीय है। फिर लखनऊ में ३० मई को क्रान्ति हो चुकी थी और ३० जून को मौलवी लखनऊ आ चुके थे। उसी दिन से बेलीगारद का घेरा शुरू हो गया था। उधर क्रान्तिकारी जुलाई के प्रारम्भ में ही सैनिक समिति बना चुके थे। राज्य का शासन सुव्यवस्थित रूप से होने लगा था। ऐसी दशा में सिंहासन पर २६ ता० तक किसी का न रहना कुछ समझ में नहीं आता। ऐसा भास होता है कि लेखिका ने इस तिथि के निश्चय में कल्पना से ही अधिक काम लिया है। इतना तो वे स्वयं ही कहती हैं कि उनकी सूचना सुनी हुई बात पर आधारित है। अतः ५ जुलाई ही इसकी तिथि मानी है।

२. 'कैसरुत्तवारीख', भाग २, पृष्ठ २२५।

३. 'कैसरुत्तवारीख', भाग २, पृष्ठ २२६।

फल था कि बिर्जीसकद्र को राजा चुना गया अन्यथा उस ११ वर्ष के बालक को सिंहासन कभी न मिला होता। वास्तव में मौलवी अहमदउल्लाह शाह यह तो चाहते थे कि अंग्रेजी शासन का सशस्त्र विरोध किया जाय, जड़मूल से उखाड़ फेंका जाय पर वे यह कभी न चाहते थे कि कोई ऐसा कार्य हो जिससे जनता को दुःख पहुँचे अथवा अशान्ति फैले। इसी से अंग्रेजों को बेलीगारद में घेर देने के पश्चात् तत्काल उन्होंने सिंहासनारोहण एवं शान्ति-स्थापना तथा शासन-प्रबन्ध की ओर ध्यान दिया। स्वयं अपने लिए उन्होंने न ही सिंहासन रक्खा न अन्य कोई महत्त्वपूर्ण पद। सभी महत्त्वपूर्ण पदों पर अन्य लोगों को आसीन किया। 'मुरक्कए खुसरवी' के अनुसार नवाब शरफुद्दौला को 'वजीर और मदारूल महाम' बनाया गया। यद्यपि वह क्रान्तिकारियों की ओर से कार्य नहीं करना चाहता था परन्तु मौलवी ने उसे समझा-बुझाकर इसके लिए राजी किया। सेना के जनरल नवाब हुसामुद्दौला बनाये गये और महाराजा बालकृष्ण को दीवानी का अधिकारी बनाया गया। राजा जयलाल सिंह को कलेक्टरी सौंपी गयी।[1] यह बिल्कुल स्पष्ट है कि मौलवी के हृदय में अपने किसी स्वार्थ की बात न थी नहीं तो यदि स्वयं सिंहासन पर आरूढ़ न भी होते तो प्रधान मंत्री अथवा सेनापति तो बन ही सकते थे। जिस देश में मौलवी जैसे त्यागी, निर्लिप्त एवं कर्मठ वीर जन्म लें वह कभी अधिक दिनों तक परतंत्र नहीं रह सकता।

नगरवासियों की प्रतिक्रिया

राजसिंहासन के प्रश्न का उचित समाधान हो जाने एवं उचित अधिकारियों के महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्त हो जाने से जनता बड़ी प्रसन्न हुई। जनता ने सोचा कि अब उसे अत्याचार से छुटकारा मिल गया। 'मुरक्कये खुसरवी' के अनुसार "तमाम नगरवासियों को बड़ी प्रसन्नता हुई कि एक सूरत आज और शान्ति की निकल आयी, नौबत बजी, मनादी हुई........"[2] इस पुस्तक के लेखक मुहम्मद अजमत अलवी ने इसका समस्त श्रेय मौलवी अहमद उल्लाह शाह को ही दिया है।[3] हर ओर खुशियाँ मनायी गयीं। उक्त पुस्तक का लेखक लिखता है कि "बेगम साहिबा ने भी शाह की सेवा में

१. 'मुरक्कये खुसरवी', पृष्ठ २६४ ब।
२. 'मुरक्कये खुसरवी', पृष्ठ २६३ अ।
३. 'मुरक्कये खुसरवी', पृष्ठ २६३ ब।

उपहार भेजे और दावतों का प्रबन्ध होने लगा। शाह के यहाँ आम दरबार था। सवारों, प्यादों, तिलंगों, अफसरों तथा दरिद्रों की भीड़ थी। सब यह समझे कि अब अशान्ति का अन्त हो गया और राज्य एक को प्रदान हो गया। लोगों के उत्साह तथा वीरता में वृद्धि हो गयी..........."[1]

महल में षड्यन्त्र

हजरत महल का अधिकार तथा बिर्जीसकद्र का सिंहासनारोहण वाजिद-अली शाह की अन्य स्त्रियों को पसन्द न था। वे बेगम हजरत महल से ईर्ष्या करने लगीं। उन्होंने इसका विरोध प्रारम्भ से ही किया।[2] जब क्रान्तिकारियों ने बेलीगारद पर तीव्र आक्रमण प्रारम्भ कर दिये और उन्हें सफलता की आशाएँ होने लगीं तभी राजप्रासाद में भी षड्यंत्र तथा द्वेष बढ़ने लगा। नवाब फख्र महल, मेहँदी बेगम, वन्दी जान, नवाब सुलेमान महल, नवाब शिकोह महल, नवाब फरखुन्दा महल, यास्मीन महल, महबूब महल, ख्वुर्द महल, सुल्तानजहाँ महल, तथा अन्य अनेक बेगमें, बेगम हजरत महल के पास गयीं और कहने लगीं, "तुम सब तरह से अच्छी रहीं, तुम्हारा बेटा बादशाह हुआ, मुबारक। मगर हम सब बेवारिस हुई जाती हैं। कल फौज का यह इरादा[3] सुना है। अब तुम्हीं इन्साफ करो कि बादशाह और बेगमें इत्यादि जितने कलकत्ते में हैं वे जीवित बचेंगे या सब फाँसी पर लटकाए जाएँगे? ऐसी सल्तनत को चूल्हे में डालो।" जनाब आलिया हजरत महल ने क्रोधित हो उत्तर दिया कि "ज्ञात होता है कि तुम सब हमारा बुरा चाहती हो अपितु इस सल्तनत के होने से जलती हो।" जब सेना के अधिकारियों को यह ज्ञात हुआ तो वे बड़े क्रोधित हुए और उन्होंने बेगम हजरत महल को चेतावनी दी कि

---

१. 'मुरक्क़ये खुसरवी', पृष्ठ २६३ अ।

२. 'कैसरुत्तवारीख़' भाग २ पृष्ठ २२५।

३. 'कैसरुत्तवारीख़', भाग २, पृष्ठ २३१।

जुलाई के अन्त में यह निश्चय हुआ था कि सेना एक बार आक्रमण कर अंग्रेजों को परास्त कर दे। अन्य बेगमों को इससे बड़ा भ्रम हुआ और वे यह समझती थीं कि यदि लखनऊ में ऐसा हुआ तो वाजिदअली शाह, जो कलकत्ते में बन्दी अवस्था में थे, की हत्या कर दी जायगी। उनका भ्रम निराधार न था। किन्तु वीरता से युद्ध करने के स्थान पर सफलता प्राप्ति के लिए वे षड्यंत्र में ही उचित मार्ग देखती थीं।

अन्य बेगमें अंग्रेजों से मिली हैं और उनके कारण सबका विनाश हो जायगा। बेगम ने भी उनके इस निष्कर्ष का समर्थन किया। क्रान्ति के संचालन में इस प्रकार के विघ्न प्रारम्भ से अन्त तक होते रहे। महल में पारस्परिक द्वेष बहुत बार क्रान्तिकारियों के मार्ग में आये। पर क्रान्तिकारी भी अपने उद्देश्य की पूर्ति करने के निश्चय पर अटल थे। अतः उन्होंने बेलीगारद पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लेने का निश्चय किया।[1]

बेलीगारद पर पुनः आक्रमण

३१ जुलाई सन् १८५७ को समस्त सेना मौलवी के नेतृत्व में युद्ध के लिए तैयार होकर चली। मौलवी के आगे-आगे उद्घोषक घोषणा करता जाता था और डंका पीटता जाता था। जब मोर्चे पर पहुँचे तो भिन्न-भिन्न स्थानों पर रुई के गट्ठे रखवा दिये गये। उनकी आड़ में धावा किया गया। मौलवी अहमदउल्लाह शाह की आज्ञा से कुछ क्रान्तिकारी बेलीगारद की दीवार के नीचे पहुँचकर दीवार खोदने लगे। मौलवी का विचार दीवार तोड़कर बेलीगारद में प्रविष्ट करने हेतु मार्ग बनाने का था। गोरे जी तोड़-कर अपनी रक्षा का प्रयत्न करने लगे। घोर युद्ध हुआ पर अन्त में क्रान्ति-कारियों को पीछे हटना पड़ा।[2]

मम्मू खाँ तथा बेगम से अनबन

बेगम हजरत महल, मम्मू खाँ इत्यादि सम्भवतः सेना के कार्यों में भी अत्यधिक हस्तक्षेप करने लगे थे। बिर्जीसकद्र को सिंहासनारूढ़ करते समय यह शर्त सैनिकों ने ले ली थी कि कोई भी आज्ञा कोर्ट कौंसिल से

---

१. 'कैसरुत्तवारीख' भाग २, पृष्ठ २३२, यहाँ पर यह बता देना अनुपयुक्त न होगा कि बेगमों के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रभावशाली व्यक्ति भी क्रान्ति के मार्ग में बाधक थे और अंग्रेजों से मिले थे। इनमें से एक मीर वाजिदअली थे जिन पर मौलवी ने १८ मार्च सन् १८५८ को आक्रमण किया था इसलिए कि उन्होंने अपने घर में कुछ अंग्रेज औरतों को छिपा लिया था जो कि क्रान्तिकारियों के यहाँ बन्दी थीं। बन्दीगृह से उन्हें मीर वाजिदअली ने क्रान्तिकारियों के साथ विश्वासघात कर हटा लिया था। (हचिन्सन—'नैरेटिव आव दि ईवेन्ट्स इन अवध', पृष्ठ २४४-२४५)

२. 'कैसरुत्तवारीख', भाग २, पृष्ठ २३२।

परामर्श किये बिना न दी जायगी परन्तु ऐसा आभास होता है कि मम्मू खाँ आदि इसकी तनिक भी परवाह किये बिना ही अपनी इच्छानुसार आज्ञाएँ देने लगे। वास्तव में मम्मू खाँ में सेना का नेतृत्व करने की योग्यता न थी। हचिन्सन का यह कथन सर्वथा उचित है कि "मुन्नू खाँ गुणहीन व्यक्ति था तथा उस शारीरिक तथा नैतिक शक्ति एवं साहस से हीन था जिसकी मुन्नू खाँ की स्थितिवाले व्यक्ति में आवश्यकता होती है।"[1] कानपुर का पतन हो चुका था, अंग्रेजों की शक्ति बढ़ रही थी और क्रान्तिकारी हर ओर से सिमटकर लखनऊ में एकत्रित हो रहे थे। ऐसी दशा में क्रान्तिकारियों को एक योग्य नेता की आवश्यकता थी। मम्मू खाँ जैसे स्वार्थी, निकम्मे, विलासी, महत्वाकांक्षी एवं निरंकुश व्यक्ति द्वारा यह भार ढोया जा सकना सर्वथा असम्भव था। अतः ऐसी दशा में उनका मौलवी से मतभेद हो जाना अस्वाभाविक नहीं है। मौलवी अहमदउल्लाह शाह ने दृढ़ता के साथ सेना को अपने अधिकार में रखने का निश्चय कर लिया था। अतः उन्होंने सेना को चेतावनी दे दी कि "तुम हमारे नौकर हो और बेगम के हुक्म से लड़ने जाते हो, यदि बेगम लड़ने का हुक्म देती हैं तो तनख्वाह भी वे ही देंगी।"[2] सम्भवतः मौलवी की इस चेतावनी पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया और मम्मू खाँ द्वारा सेना मोर्चों पर भेजी जाती रही।[3]

२५ सितम्बर, सन् ५७ : हैवलाक भी बेलीगारद में बन्द

१६ जुलाई सन् १८५७ को कानपुर का पतन हो जाने के उपरान्त हैवलाक ने लखनऊ की ओर बढ़ने का अनेक बार प्रयास किया। हैवलाक की बहुत दिनों की साध थी कि लखनऊ में घिरे हुए अंग्रेजों को उनकी दुर्दशा से छुटकारा दिलाये। इसी प्रयास में उसे तीन बार क्रान्तिकारियों से उन्नाव के समीप एक गाँव बशीरतगंज में युद्ध भी करना पड़ा। अनेक प्रयास करने के पश्चात् भी वह २५ सितम्बर से पूर्व बेलीगारद न पहुँच सका। उसके लखनऊ सहायता के लिए शीघ्र न पहुँच सकने के कारण उसके स्थान पर आउट्रम को लखनऊ के तथाकथित 'उद्धार' का भार सौंपा

१. हचिन्सन : 'नैरेटिव आव दि ईवेन्ट्स इन अवध' पृष्ठ २२३
हचिन्सन ने मम्मू खाँ को मुन्नू खाँ कहा है।
२. 'कैसरुत्तवारीख', भाग २, पृष्ठ २६०।
३. 'कैसरुत्तवारीख', भाग २, पृष्ठ २६०-६१।

गया। आउट्रम ने हैवलाक को ही लखनऊ के 'उद्धार' तक सेनापतित्व ग्रहण करने को कहा। अन्ततः २३ तारीख को एक बहुत ही बड़ी सेना लखनऊ पर आक्रमण करने के विचार से लखनऊ से ६ मील की दूरी पर पहुँची।[1] उसके साथ आउट्रम तथा नील भी थे। तीन-तीन प्रसिद्ध अंग्रेज जनरल साथ होने पर भी अंग्रेजी सेना को तत्काल आक्रमण करने का साहस न हुआ। २४ ता० को अंग्रेजी सेना निकम्मों की भाँति पड़ी रही। २५ को आलमबाग होती हुई आगे बढ़ी। क्रान्तिकारियों ने पहले आलमबाग पर उनसे युद्ध किया एवं उन्हें आगे बढ़ने से रोका। किसी प्रकार अंग्रेजी सेना चारबाग पहुँची। चारबाग पर बड़ा भीषण युद्ध हुआ। क्रान्तिकारी बड़ी वीरता से लड़े पर अन्त में हैवलाक एवं आउट्रम की सम्मिलित सेनाओं को मार्ग मिल गया[2] और २५ सितम्बर की शाम को अँधेरा होने के समय वे बेलीगारद पहुँच गयीं। पर अंग्रेजों को यह क्षणिक विजय बहुत ही महँगी पड़ी। ३० अफसर तथा ५०० अन्य सैनिक मार डाले गये। 'ए लेडीज डायरी आव दि सीज आव लखनऊ' की लेखिका का कथन है कि "प्रत्येक इंच भूमि के लिए भीषण युद्ध हुआ।"[3] बर्बर नील, जिसने अपनी क्रूरता का परिचय वाराणसी एवं प्रयाग में दिया था, मारा गया। इतने पर भी वास्तविक सफलता हैवलाक के लिए मृग-मरीचिका ही बनी रही। बेलीगारद में पहुँच अंग्रेजों ने स्वयं अनुभव किया कि यह उद्धार नहीं केवल कुमक थी।[4] इस प्रकार आउट्रम एवं हैवलाक लखनऊ बेलीगारद में बन्द अंग्रेजों का उद्धार करने के स्थान पर स्वयं भी उनके दुःख में साथी बन गए। यह क्रान्तिकारियों की बहुत बड़ी विजय थी। क्रान्तिकारियों ने शहर से बाहर आनेवाले सब पुल तोड़ डाले ताकि शत्रु बाहर न जा सकें।[5]

---

१. होप ग्रान्ट : 'दि सीप्वाय वार' पृष्ठ १४७।

२. होप ग्रान्ट : 'दि सीप्वाय वार' पृष्ठ १४८।

३. 'ए लेडीज डायरी आव दि सीज आव लखनऊ' : २६ सितम्बर, पृष्ठ १२२।

४. वही : पृष्ठ १२१।

आर्चिबाल्ड फोर्बेस भी इस मत से सहमत है। उसका कथन है कि इसे First relief of Lucknow कहना भारी भूल है। ('कॉलिन कैम्पबेल': लेखक आर्चिबाल्ड फोर्बेस पृ० ११५)

५. 'ए लेडीज डायरी आव दि सीज आव लखनऊ'–२८ सितम्बर, ५७ पृ० १२६।

प्रभावशाली घेरा

३१ सितम्बर सन् १८५७ की रात को कुछ अश्वारोही सैनिकों ने कानपुर जाने के विचार से बेलीगारद से आलमबाग की ओर प्रस्थान किया। पर वे चौथाई मील भी न जा पाये होंगे कि उन पर ऐसी भीषण अग्निवर्षा की गयी कि उन्हें वापस लौटने पर विवश होना पड़ा। क्रान्तिकारियों ने शत्रु की बाहरी चौकियों पर अर्द्धरात्रि के लगभग आक्रमण किया और एक घंटे के लगभग बड़ी भीषण अग्निवर्षा की। बेलीगारद के घेरे में कोई कमी नहीं की गयी। स्वयं अंग्रेजों के कथन के अनुसार बेलीगारद में वे ही तीन पत्र बाहरी दुनिया से पहुँच सके जो एक भारतीय देशद्रोही अंगद द्वारा ले जाये गये थे।[1] ऐसे ही अनेक 'अंगद' अंग्रेजों के गुप्तचर के रूप में कार्य करते थे और इस प्रकार क्रान्ति की प्रगति में बाधा पहुँचाते थे।

क्रान्तिकारी सम्पूर्ण अक्तूबर भर इसी प्रकार बेलीगारद तथा अन्य अंग्रेजी चौकियों पर आक्रमण करते रहे और अंग्रेजों द्वारा बेलीगारद से बाहर निकलने के हर प्रयास को विफल करते रहे। उधर बेलीगारद के अन्दर रसद की कमी के कारण जीवन-यापन कठिन हो गया। लखनऊ से नित्य कैम्पबेल के पास तुरन्त सहायता के लिए याचना होने लगी।[2] अन्त में ९ नवम्बर को कैम्पबेल लखनऊ से थोड़ी दूर बन्थरा पर होप ग्रान्ट से जा मिला। कैम्पबेल १४ तारीख को मार्टीनियर की ओर बढ़ा और एक साधारण झड़प के बाद उसने उस पर अधिकार कर लिया।[3] १६ तारीख को कैम्पबेल ने सिकन्दरबाग पर आक्रमण किया। यद्यपि क्रान्तिकारी चारों ओर से घिर गये परन्तु वे बड़ी वीरता से लड़े और उन्होंने अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये। अन्त में मैदान अंग्रेजों के ही हाथ रहा तथा कम से कम दो हजार क्रान्तिकारियों ने अपनी बलि दी।[4] इसके पश्चात् पील को 'शाह नजफ' पर अधिकार करने भेजा गया। तीन घंटे तक लगातार आग उगलने पर भी पील कुछ न बिगाड़ पाया। स्वयं अंग्रेजों ने इस स्थान पर क्रान्ति-

---

१. 'ए लेडीज डायरी आव दि सीज आव लखनऊ'-अक्तूबर १, पृष्ठ १२८-१२९।

२. 'कॉलिन कैम्पबेल' लेखक फोर्बेस पृष्ठ १२१।

३. 'कॉलिन कैम्पबेल' लेखक फोर्बेस पृष्ठ १२३-१२५ ('ए लेडीज डायरी आव दि सीज आव लखनऊ' के पृष्ठ १५६ से भी इसकी पुष्टि होती है)।

४. 'कॉलिन कैम्पबेल' लेखक फोर्बेस पृष्ठ १२८।

कारियों की वीरता एवं सुरक्षा-प्रबन्ध की प्रशंसा की है। गोधूलि तक भीषण युद्ध हुआ पर क्रान्तिकारी अपने स्थान पर अटल रहे। अन्त में पैटन ने उत्तरी-पूर्वी कोने पर एक छिद्र ढूँढ लिया जिसे बढ़ाने के बाद अंग्रेजी सेना शाह नजफ के अन्दर पहुँच गयी। घमासान युद्ध हुआ। पर विजय फिर अंग्रेजों की ही रही।[1] १७ तारीख को मेस हाउस हिरनखाना तथा मोतीमहल पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया।[2] १९ ता० से २३ तारीख के अन्दर अंग्रेजों ने बेलीगारद को खाली कर दिया तथा स्त्रियों एव तोपों आदि को क्रमशः दिलकुशा एवं सिकन्दरबाग में भेज दिया गया। अन्त में २७ नवम्बर को कैम्पबेल कानपुर में तात्या टोपे की उपस्थिति का समाचार पाकर आउट्रम को चार हजार सेना सहित आलमबाग में छोड़ स्वयं कानपुर चला गया।

मौलवी अहमदउल्लाह शाह ने कैम्पबेल के कानपुर चले जाने के पश्चात् आउट्रम पर आक्रमण करने की एक योजना बनायी। इसके अनुसार शत्रु पर दो ओर से आक्रमण कर उसे चक्की के दो पाटों में पीस डालने की योजना थी। और इस प्रकार शत्रु का कानपुर तथा अन्य स्थानों से सम्बन्ध भी टूट जाने की आशा थी। इस योजना की मैलेसन तथा के ने बड़ी प्रशंसा की है। उनका कथन है कि यह योजना बुद्धिमत्ता से पूर्ण थी और यदि इतनी ही बुद्धिमत्ता एवं साहस से उसे कार्यरूप में परिणत किया गया होता तो अंग्रेजों की बड़ी दुर्दशा होती।[3] मौलवी ने अपनी सेना को दो भागों में विभक्त किया। एक भाग २१ दिसम्बर की रात को आउट्रम की सेना पर पीछे से आक्रमण करने के ध्येय से कानपुर रोड पर बढ़ा और गल्ली तथा बद्रुप गाँवों के बीच पड़ाव डाला। स्वयं अंग्रेज लेखक का कथन है कि "कार्यरूप में परिणत किये जाने के दो दिवस पूर्व ही विश्वासघात कर गुप्तचरों ने यह समाचार आउट्रम को दे दिया।"[4] फलस्वरूप २२

---

१. 'कॉलिन कैम्पबेल' लेखक फोर्बेस पृष्ठ १३२।

२. वही १२९-१३१।

संभवतः फोर्बेस ने रसदखाने का अनुवाद 'मेस हाउस' किया है किन्तु रसदखाने का अनुवाद वेधशाला है। इसे तारे वाली कोठी भी कहते थे और आधुनिक स्टेट बैंक इसी कोठी में है। रसदखाना, जिसका अनुवाद मेस हाउस हो सकता है, 'स्वाद' से नहीं अपितु 'सीन' से लिखा जाता है।

३. के एवं मैलेसन: 'इंडियन म्यूटिनी आव १८५७', भाग४, पृष्ठ २४१।

४. वही

अक्तूबर की सुबह को आउट्रम ने स्वयं ब्रिगेडियर स्टिस्टेड, राबर्ट्सन तथा अलफर्ड को साथ ले क्रान्तिकारियों पर आक्रमण कर दिया। क्रान्तिकारी बड़ी वीरता से लड़े पर अन्त में असफलता ही हाथ रही। किसी एक विश्वासघाती के कारण इतनी बुद्धिमत्तापूर्ण बनायी गयी योजना भी विफल हो गयी।

मम्मू खाँ पर विश्वासघात का संदेह

सैनिकों को मम्मू खाँ पर अंग्रेजों से मिलकर षड्यंत्र करने का संदेह था। उनके विचार में उपर्युक्त योजना की विफलता का कारण मम्मू खाँ ही था। अतः सैनिकों ने अपना संदेह बेगम हजरत महल को बतलाया। उन्होंने बेगम से कहा कि कारतूस में बारूद के स्थान पर भूसी भरी है और उनके तैयार करनेवाले अंग्रेजों से मिले हुए हैं। मम्मू खाँ पर भी उन्होंने अपना संदेह प्रकट किया। बेगम ने मम्मू खाँ को बचाया और कहा कि "तुम्हें जिस पर संदेह हो उसे मार डालो।" 'कैसरुत्तवारीख' का लेखक लिखता है कि "तिलंगों ने मीर मुहम्मद अली और एक मुतसद्दी को, जो गरांब बनाता था, ले जाकर सड़क पर मार डाला।" इस बात में तिलंगों का संदेह बिल्कुल निराधार न था। वे लोग इस प्रकार के कार्य इसलिए करते थे कि यदि अंग्रेजों का राज्य हो जायगा तो इस कार्य को अपनी निष्ठा के प्रमाण-स्वरूप प्रस्तुत कर सकेंगे। मौलवी ने भी इस संदेह का समर्थन किया और इस षड्यंत्र के विषय में अपने विचार प्रकट किये।[1]

मौलवी युद्धक्षेत्र में आहत

आउट्रम ने कुछ खाली गाड़ियाँ ५०० सैनिकों सहित कानपुर भेजी थीं जिन्हें वहाँ से रसद से भरकर आना था। इसकी सूचना मिलने पर क्रान्तिकारियों ने ऐसे उपायों पर विचार करना प्रारम्भ किया जिनसे इस सहायता को आलमबाग पहुँचने से रोका जाय। क्रांतिकारी पारस्परिक मतभेद के कारण किसी निश्चय पर न पहुँच सके। अतः मौलवी ने सबके समक्ष शपथ ली कि आनेवाली गाड़ियों पर अपना अधिकार कर वे फिरंगियों के मध्य से लखनऊ में प्रवेश करेंगे।[2] मौलवी १४ जनवरी को लखनऊ से चले। विश्वासघातियों ने फिर आउट्रम को इसकी सूचना दे दी और उसने अलफर्ड को मौलवी

१. 'कैसरुत्तवारीख', भाग २, पृष्ठ २८२।

२. के एवं मैलेसन : 'दि इंडियन म्यूटिनी आव १८५७', भाग ४, पृष्ठ २४३।

से लड़ने भेजा। जब मौलवी खुले मैदान में आ गये तब अलफर्ड ने उन पर आक्रमण कर दिया। बड़ा घमासान युद्ध हुआ। अपने सैनिकों को प्रोत्साहित करने हेतु मौलवी ने स्वयं सामने आकर युद्ध किया। फलस्वरूप वे आहत हो गिर पड़े।[१] उनके अनुयायियों ने बड़ी कठिनता से उन्हें मैदान से बाहर हटा दिया और इस प्रकार वे अंग्रेजों द्वारा बन्दी बनाये जाने से बचे। यदि क्रान्तिकारी अनेक मत रखने के स्थान पर अपने नेता की आज्ञा का पालन करते तो निश्चित था कि अंग्रेजों की हार होती। मौलवी के सम्बन्ध में 'टाइम्स' के विशेष संवाददाता के ये उद्गार अक्षरशः सत्य हैं कि "फैजाबाद के मौलवी भी महानता के अधिकारी हैं। उन्होंने दुर्बल एवं मूर्ख लोगों के मध्य रहकर भी अपने आपको दृढ़प्रतिज्ञ एवं साहसी बनाया।"[२]

महाजनों की रक्षा तथा मम्मू खाँ से झगड़ा

दिल्ली के महाजनों की भाँति लखनऊ के महाजनों को भी क्रान्तिकारियों के शासन से बड़ी शिकायतें थीं। सम्भवतः जिस प्रकार दिल्ली में मिर्जा मुगल इत्यादि महाजनों से सुव्यवस्थित रूप से धन प्राप्त करने में असफल रहे उसी प्रकार मम्मू खाँ को भी धन प्राप्त करने में सफलता न मिली। मम्मू खाँ का विश्वास था कि महाजन दस प्रतिशत नोट मोल लेकर कलकत्ते में ८० रु० पर बेच लेते हैं[३], तथा इस प्रकार बहुत-सा धन कमाते हैं। अतः उन्हें शासन को धन प्रदान करने के लिए विवश किया जाता था। परन्तु अव्यवस्थित रूप से महाजन किसी भी दशा में अधिक समय तक धन न दे सकते थे। 'कैसरुत्तवारीख' का लेखक लिखता है कि "अधिकांश महाजन तथा नगर के प्रजाजन मौलवी अहमदउल्लाह शाह के पास फरियाद लेकर गये और उनसे बताया कि हम पर यह अत्याचार हो रहा है, यदि मार्ग साफ होता तो कहीं और चले जाते; यदि नवाब से नालिश करते हैं तो उत्तर मिलता है कि मम्मू खाँ के कार्य में उनका हस्तक्षेप नहीं, यदि मम्मू खाँ के पास जाते हैं तो कोई सुनवाई नहीं होती। केवल धन माँगा जाता है। पहले तिलंगों ने लूटा अब स्वयं सरकार लूटती है।

---

१. के एवं मैलेसन : 'दि इंडियन म्यूटिनी आव १८५७', भाग ४, पृष्ठ २४४।

२. रसेल : 'माई डायरी', भाग १, पृष्ठ ३४१।

३. 'कैसरुत्तवारीख', भाग २, पृष्ठ २१८।

अब कहाँ से रुपया लायें ?" फकीर ने उत्तर दिया 'यदि कोई नौकर मम्मूखाँ तथा यूसुफ खाँ का दौड़ लाये तो जिसके घर वे पहुँचे हमें तुरन्त सूचना दे, वहाँ से तिलंगे जाकर बन्दी बना लायेंगे। शाह जी (अहमदउल्लाह) ने ५० हरकारे सूचना लाने के लिए नौकर रक्खे थे कि जब किसी प्रजा के घर दौड़ जाय तो तुरन्त सूचित करें। २० दिन अथवा एक मास तक यही दशा रही। जब कहीं दौड़ जाती थी, तिलंगे पकड़ लाते थे। यूसुफखाँ स्वयं तिलंगों को देखकर भाग जाता था। अन्त में मम्मूखाँ ने सेना से परामर्श किया 'यह दोहरा शासन अच्छा नहीं। शाह जी राज्य के कार्य में हस्तक्षेप करते हैं। तहसीलदार इत्यादि स्वयं नियुक्त करते हैं। उनके निष्कासन एवं हत्या का उपाय करना चाहिए, इस कारण कि उन्होंने अपने मुंशी को बहरामघाट के पार लट्टों का कर वसूल करने भेजा है। अतः तुमसे कहा जाता है कि तुम अपनी सेना ले जाकर शाह जी को जीवित अथवा उनका सिर लाओ।'

"अतः अहमदअली, हुसैनाबाद का दारोगा अपनी सेना सहित कई तोपें लेकर वहीं गया जहाँ शाह जी उतरे हुए थे। शाह जी ने भी तोपें लगवा दीं और आदेश दिया कि 'कोई आये तो तुम भी मारो, प्रविष्ट मत होने दो।' जब अफसरों ने प्रविष्ट होना चाहा तो शाह जी ने रोका। ५ घंटे तक युद्ध हुआ। दोनों ओर से तोप बन्दूक चली। किसी अफसर को धावे का साहस न हुआ। संक्षेप में ११ दिन तक घेरकर शाह जी का अन्न-जल बन्द कर दिया। रसद अन्दर न जाने पाती थी। तत्पश्चात् तिलंगे, जो घेरे हुए थे अपने अफसरों के विरोधी हो गये। रात को शाह जी शीशमहल पहुँचे। दो दिन तक वहाँ ठहरे। फिर गढ़ी कँवरा तथा कवसी पर मोर्चा जमाया। मम्मू खाँ ने सेना से कहा, 'हम तुम्हारा वेतन न देंगे, यह तुमने बहुत बुरा किया।' इस पर थोड़े से तिलंगों और सवारों ने नौकरी छोड़ दी और शाह जी को वहाँ से चक्करवाली कोठी में ले गये।'[1]

लेखक ने इस महत्वपूर्ण घटना की तिथि का कोई उल्लेख नहीं किया है। सम्भवतः मौलवी की सेना एवं मम्मू खाँ द्वारा अहमदअली के नेतृत्व में भेजी गयी सेना में २२ जनवरी सन् १८५८ को युद्ध हुआ होगा। मैलेसन एवं के अपनी पुस्तक में एक स्थान पर लिखते हैं कि २२ जनवरी को मौलवी की सेना तथा बेगम की आज्ञाकारिणी सेना में भीषण युद्ध हुआ।[2] के तथा

१. 'कैसरुत्तवारीख', भाग २, पृष्ठ ३००-३० ।

२. के एवं मैलेसन : 'दि इंडियन म्यूटिनी आव १८५७', भाग ४, पृष्ठ २४६

मैलेसन यह भी कहते हैं कि मौलवी अहमदउल्लाह शाह बेगम के दल द्वारा बन्दी बना लिये गये। संभवतः अंग्रेज लेखकों ने बिना अन्न-जल मिले ११ दिन तक बेगम के दल द्वारा मौलवी को घेरे रहने की घटना ही को उनका बन्दी होना समझ लिया।

आउट्रम पर आक्रमण : १५ फरवरी सन् ५८

इस दुर्घटना के पश्चात् मौलवी अहमदउल्लाह शाह ने फिर अंग्रेजों के विरुद्ध तैयारी प्रारम्भ कर दी। वास्तव में बात यह थी कि मौलवी किसी भी प्रकार आउट्रम को कैम्पबेल से सम्बन्ध न रखने देना चाहते थे तथा इस चेष्टा में थे कि किसी भी प्रकार कैम्पबेल की सेना के आलमबाग पहुँचने से पूर्व ही आउट्रम की सेना को नष्ट कर दें। मौलवी अहमदउल्लाह शाह ने अपने इस ध्येय की पूर्ति के हेतु १५ फरवरी सन् १८५८ को फिर आउट्रम पर आक्रमण किया।[1] वही विश्वासघात एवं सैनिकों की कायरता फिर मौलवी की हार का कारण बनी। राइस होम्स मौलवी की वीरता एवं साहस को देखकर कह उठा कि "यद्यपि अधिकांश विद्रोही कायर हैं, उनका नेता मौलवी अहमदउल्लाह शाह वास्तव में साहस एवं शक्ति में एक बड़ी सेना का नेतृत्व करने योग्य है।"[2] अगले दिन अर्थात् १६ तारीख को मौलवी ने फिर आउट्रम पर आक्रमण किया पर साधारण लड़ाई के पश्चात् किसी कारण से पीछे हट गये।[3]

आउट्रम पर पुनः आक्रमण : २१ फरवरी सन् ५८

मौलवी इतनी सरलता से अपनी हार माननेवाले न थे। अतः उन्होंने एक बार फिर आउट्रम पर आक्रमण करने की ठानी। के तथा मैलेसन का विचार है कि पहले के सब आक्रमणों से अधिक अच्छी तरह इस आक्रमण की रूपरेखा पर विचार किया गया था तथा यह पहले के अन्य सभी आक्रमणों से भीषण था और अधिक देर तक टिका।[4] इस आक्रमण के लिए मौलवी ने रविवार २१ फरवरी का दिन चुना था। उन्होंने अपने गुप्तचरों

---

१. के एवं मैलेसन—दि इंडियन म्यूटिनी आव १८५७—भाग ४, पृष्ठ २४६।

२. राइस होम्स, 'सीप्वाय वार', पृष्ठ ४३७।

३. के एवं मैलेसन : 'दि इंडियन म्यूटिनी आव १८५७' भाग ४, पृष्ठ २४७।

४. वही।

द्वारा यह ज्ञात कर लिया था कि प्रत्येक रविवार को प्रातःकाल सभी अंग्रेज अफसर गिरजा जाते हैं। अतः पूर्वनियोजित योजनानुसार आक्रमण के लिए क्रान्तिकारियों ने प्रस्थान किया। वे अंग्रेजी कैम्प से ५०० गज की ही दूरी पर थे कि कैप्टन गौरडन ने उन्हें देख लिया और आउट्रम को सूचित किया। अंग्रेज अपनी रक्षा को प्रस्तुत हो गये और उन्होंने भीषण गोलाबारी शुरू कर दी। इस गोलाबारी के कारण क्रान्तिकारी आगे बढ़ने से थोड़ा हिचके। के एवं मैलेसन का कथन है कि "जो हिचका वह हारा वाली कहावत चरितार्थ हुई।"[1] बहुत संभव है कि गोलों की चिन्ता किए बिना ही यदि क्रान्तिकारी आगे बढ़कर धावा बोल देते तो विजय उन्हीं की होती।

आउट्रम पर पुनः आक्रमण : २५ फरवरी १८५८

क्रान्तिकारी इतने पर भी निराश न हुए और फिर २५ फरवरी १८५८ को आउट्रम पर आकमण करने की योजना बनाने लगे। इस बीच आउट्रम को कानपुर से कुछ सहायता भी प्राप्त हो चुकी थी। अपनी योजना को कार्यान्वित करते हुए क्रान्तिकारियों ने २५ फरवरी को सुबह ७ बजे आलम-बाग पर भीषण गोलाबारी कर अपना आक्रमण प्रारम्भ किया। यह आक्रमण लगभग एक घंटे तक चला। १० बजे के लगभग शत्रु के बायें भाग पर क्रान्तिकारियों ने बड़ा भीषण आक्रमण किया। अंग्रेज प्राणपण से अपनी रक्षा में जुट गये। अंग्रेजों ने क्रान्तिकारियों पर भीषण गोलाबारी की। क्रान्तिकारी बड़ी वीरतापूर्वक मोर्चे पर डटे रहे। २॥ बजे व पाँच बजे दो बार फिर आक्रमण किया। आशा हो चली थी कि किला क्रान्तिकारियों के हाथ में आ जायगा। पर अन्त में क्रान्तिकारियों को अत्यधिक भीषण गोलाबारी के कारण पीछे हटना पड़ा। के एवं मैलेसन का कथन है कि "इससे पहले वे कभी भी इतने दृढ़ निश्चयपूर्वक न लड़े थे।"[2] क्रान्तिकारियों के पीछे हटने का कारण शत्रु के पास नई कुमुक का आ जाना था। यदि क्रान्तिकारी आउट्रम को आलमबाग से हटाने में सफल हो जाते तो यह कह सकना कठिन है कि भारत का इतिहास क्या होता। वे कैम्पबेल को सबसे पृथक् कर सकते थे, कानपुर पर अधिकार कर सकते थे और जहाँ

---

१. के एवं मैलेसन, 'दि इंडियन म्यूटिनी आव १८५७' भाग ४, पृष्ठ २४८।

२. के एवं मैलेसन, 'दि इंडियन म्यूटिनी आव १८५७' भाग ४, पृष्ठ २५०।

भी चाहते अपनी पताका फहरा सकते थे।[1] 'मुरक्कए खुसरवी' का लेखक इन शब्दों में इस घटना का वर्णन करता है, "शाह जी अपनी सेना लेकर हजारों सवार और प्यादों सहित आलमबाग की ओर जुटे, शाह जी ने लड़-लड़ाकर जान दे-देकर आलमबाग के मोर्चे छुड़वाये। बड़ा घमासान युद्ध हुआ किन्तु अपेक्षित उद्देश्य प्राप्त न हुआ।"[2]

लखनऊ में युद्ध की तैयारी

सम्भवतः मौलवी अहमद उल्लाह शाह को यह ज्ञात होगा कि अब उन पर आक्रमण होगा अतः २५ फरवरी के उपरान्त उन्होंने अंग्रेजी सेना पर कोई आक्रमण न किया और लखनऊ की सुरक्षा की तैयारी में जुट गये। अन्ततः कैम्पबेल २७ फरवरी को बन्थरा पहुँचा, जहाँ उसने डेरा डाला।[3] उभय पक्षों ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लखनऊ पर केन्द्रित कर दी। फोर्बस के अनुसार अंग्रेजी सेना जंगबहादुर की सेना को मिलाकर ३१ हजार थी।[4] चार्ल्स बाल के कथनानुसार सारे देश के क्रान्तिकारी लखनऊ में उमड़ पड़े। मैलेसन इनकी संख्या १२१ हजार बताता है।[5] फोर्बस के मतानुसार लखनऊ की २ लाख अस्सी हजार जनता के अतिरिक्त उस समय लखनऊ में एक सौ हजार सैनिक थे।[6] क्रान्तिकारियों की तीन रक्षा-पंक्तियाँ थीं। पहली हजरतगंज पर, और दूसरी छोटे इमामबाड़े से होती हुई रसद महल को छूती हुई मोती महल तक थी तथा तीसरी कैसरबाग पर थी। शहर की सब मुख्य सड़कों पर रक्षा हेतु किलेबन्दी की गई थी।[7] केवल शहर के उत्तरी भाग को छोड़ अन्य किसी स्थान की उपेक्षा नहीं की गई थी। इस भाग की उपेक्षा इस कारण हुई कि इधर से कभी कोई नहीं आया था। हैवलाक एवं आउट्रम की सेना सितम्बर सन् १८५७ में चारबाग से होकर

१. राइस होम्स, 'सीप्वाय वार' पृष्ठ ४३७।

२. 'मुरक्कए खुसरवी', हस्तलिखित, पृष्ठ ३१६ ब।

३. 'कॉलिन कैम्पबेल' लेखक फोर्बस पृष्ठ १५७।

४. वही

५. मैलेसन : 'दि इंडियन म्यूटिनी आव १८५७' पृष्ठ ३५८।

६. 'कॉलिन कैम्पबेल' लेखक फोर्बस, पृष्ठ १५८ (संभवतः अंग्रेज लेखकों ने अतिशयोक्ति से काम लिया है)।

७. मैलेसन : 'दि इंडियन म्यूटिनी आव १८५७' पृष्ठ ३५६।

आयी थी तथा कैम्पबेल ने नवम्बर के माह में सिकन्दरबाग की ओर से आक्रमण किया था।

लखनऊ का पतन

यह उपेक्षित भाग लखनऊ के क्रान्तिकारियों के लिए अभिशाप बन गया। किसी गुप्तचर ने कैम्पबेल को इसकी सूचना दे दी तथा उसने इस ओर से लखनऊ पर आक्रमण करने का निश्चय किया। कैम्पबेल ने लखनऊ को तीन ओर से घेरा था।[१] ६ मार्च सन् १८५८ से युद्ध प्रारम्भ हुआ। हर गली व हर कूचा युद्धस्थल बन गया। एक ही नगर में एक वर्ष के समय में तीसरी बार खून बहा। क्रान्तिकारियों की योजना में अंग्रेजों द्वारा उत्तर की ओर से आक्रमण करने के कारण विघ्न पड़ गया। परन्तु वे बड़ी वीरता से लड़े। फिर भी एक के बाद दूसरा स्थान अंग्रेजों के अधिकार में आता चला गया। धीरे-धीरे सिकन्दर बाग, चक्कर कोठी, कदम रसूल आदि अंग्रेजों के अधिकार में आ गये। ११ मार्च को बड़ी खून-खराबी के पश्चात् बेगम कोठी भी क्रान्तिकारियों के हाथ से निकल गयी। बेगम कोठी पर अंग्रेजों ने १० ता० ही को घेरा डाल दिया था पर क्रान्तिकारी जी तोड़कर लड़े। स्वयं अंग्रेज सेनापति कैम्पबेल को भी यह कहने पर विवश होना पड़ा कि "सम्पूर्ण घेरे में यह सबसे भीषण युद्ध था।"[२] १४ मार्च तक इमामबाड़ा, कैसरबाग, मोतीमहल, छतरमंजिल तथा तारा कोठी (वर्त्तमान स्टेट बैंक) अंग्रेजों के अधिकार में आ गये। क्रान्तिकारी १५ तथा १६ मार्च को फैजाबाद जानेवाली सड़क से निकल भागे। १८ ता० को अंग्रेजों को समाचार मिला कि मूसाबाग में कुछ क्रान्तिकारी अभी तक हैं। संभवतः ये मौलवी एवं उनके साथी ही थे। १६ ता० को कैम्पबेल के आदेश से आउट्रम एवं होप ग्रांट ने दो ओर से उन पर आक्रमण किया। घमासान युद्ध के पश्चात् वे लोग उन्हें हटा पाये। ब्रिगेडियर कैम्पबेल के नेतृत्व में एक दल और मूसाबाग से क्रान्तिकारियों को भागने से रोकने के लिए भेजा गया। पर क्रान्तिकारी लड़ते-भिड़ते बच निकले।[३]

---

१. 'कैसरुत्तवारीख', भाग २; पृष्ठ ३४५।
'मुरक्क़ै खुसरवी', पृष्ठ ३२१ ब से भी इसकी पुष्टि होती है।
२. फोर्बेस : 'कालिन कैम्पबेल', पृष्ठ १६३।
३. फोर्बेस : 'कालिन कैम्पबेल', पृष्ठ ११०।

इस युद्ध में मौलवी की वीरता की प्रशंसा करते हुए 'कैसरुत्तवारीख' का लेखक इस प्रकार घटनाओं का वर्णन करता है—"बुधवार ३० रजब १२७४ हिजरी तदनुसार १६ मार्च १८५८ ई० को अंग्रेजी सेना ने आलमबाग से गढ़ी कँवरा होते हुए हैदरगंज के नाके से नगर में प्रविष्ट होने का निश्चय किया। जंगबहादुर की सेनाएँ ऐशबाग से चलीं और अहमदउल्लाह शाह सराय मोहम्मदुद्दौला से सेना लेकर ऐशबाग में पहुँच गये। कई सौ भूटिए (गोरखे) मारे गये अन्त में बाग से उन्हें हटा दिया। वे सब सिमटकर शहर के किनारे आये। उधर से अंग्रेजी सेना आती थी। वहाँ भी शाह जी दिल खोलकर लड़े। अंग्रेजी सेना को नहर से उस पार उतरने न दिया। शाह जी की ओर से ३-४ तोपें भी चलीं। जब अंग्रेजी सेना ने धावा किया तो पहले धावे में सवार भागे। इसका कारण यह था कि तीन रात और दिन से सवार वास्तव में प्रत्येक दिशा में दौड़ते रहे और खुद शाह जी भी फौज को घेरकर लज्जा दिलाते थे। इस युद्ध से १५०० सवार शहर की ओर से भागे थे। हैदरगंज नौबस्ता होकर सआदतगंज पहुँचे। तत्पश्चात् शाह, दरगाह हजरत अब्बास में आये। एक मोर्चा कायम किया और दूसरा सआदतगंज की लाल कोठी पर और तोप बढ़कर तिराहे पर लगायी। ऐशबाग से हैदरगंज, नौबस्ता, सआदतगंज तक गोलियों की वर्षा होती रही। हर घर पर चाँद-मारी की गयी।

"१७ मार्च सन् १८५८ को गोरे चौक, नक्खास, काजमैन, फिरंगी महल, तथा मंसूरनगर तक फैल गये और मोर्चा काजमैन दयानुतुद्दौला की कर्बला में स्थापित किया। एक मोर्चा सड़क से घंटाबेग की गढ़इया पर हजरत अब्बास की दरगाह के सामने स्थापित किया। जब कुनिया साहब मोर्चे पर आये तो शाहजी ने हटकर सआदतगंज लालकोठी पर मोर्चा कायम किया। दोनों ओर से गोलियों की वर्षा हो रही थी। गोरे प्रजा के घरों में घुस-घुसकर लूटने लगे। १८ मार्च १८५८ तक इसी प्रकार घोर युद्ध होता रहा। गोरे कोठों से हजरत अब्बास की दरगाह में प्रविष्ट हो गये। मध्याह्नोत्तर में शाहजी को उनके दो चेले जबरदस्ती हटाकर महबूबगंज तक पैदल ले गये। वहाँ से घोड़े पर चढ़े, कुछ सवार, तिलंगे जो मौलवी के खास चेले थे हाथियों पर सवार मूसाबाग के नाके से युद्ध करते हुए निकले। अंग्रेजी सेना से बराबर युद्ध हो रहा था। सायंकाल के निकट

शाह जी कसमंडे के नाले के उस पार हुए। वहाँ से अंग्रेजी सेना लौट आई।"[१]

सआदतगंज का युद्ध

अंग्रेजी विवरण के अनुसार लखनऊ पर पूर्णरूप से अंग्रेजों का फिर से अधिकार हो जाने के पश्चात् अंग्रेजों को सआदतगंज में मौलवी अहमद-उल्लाह की, अपने मुट्ठी भर साथियों सहित, उपस्थिति की सूचना मिली। अतः उन्हें वहाँ से हटाने के लिए २१ मार्च को ल्यूगार्ड के नेतृत्व में, जिसने ११ मार्च को बेगम कोठी जीती थी, भेजा गया। बड़ा घमासान युद्ध हुआ और मौलवी एवं साथियों को वहाँ से बड़ी कठिनाई से हटाया जा सका। मैलेसन का कथन है कि इतनी दृढ़ता क्रान्तिकारियों ने बहुत कम दिखायी जितनी इस समय मौलवी एवं उनके साथियों ने। और वे इस भवन से तभी हटे जब उन्होंने अनेक अंग्रेजों की हत्या कर डाली तथा अन्य अनेकों को आहत कर दिया।[२]

बाड़ी का युद्ध

लखनऊ के पतन के पश्चात् मौलवी अहमदउल्लाह शाह ने लखनऊ-स्थित अंग्रेजी शिविर से २९ मील दूर बाड़ी में ७ अप्रैल सन् १८५८ ई० को अपना डेरा डाला।[3] इस समय बेगम हजरत महल ६ हजार सैनिकों सहित बेतौली में थीं। होप ग्रांट इन दोनों को नष्ट करने के ध्येय से एक बहुत बड़ी सेना लेकर लखनऊ से चला।[४] मौलवी ने शत्रु की वास्तविक शक्ति जानने के लिए अनेक गुप्तचरों को भेजा। वे बड़ी वीरता से जाकर सब अपेक्षित समाचार ले आये। मौलवी ने एक योजना बनायी जिसके अनुसार अपनी सेना को दो भागों में विभक्त किया, जिससे

१. 'कैसरुत्तवारीख', भाग २, पृष्ठ ३४४-३४५।

यह कह सकना कठिन है कि यह कुनिया साहब कौन थे, साथ ही उपरोक्त घटना का किसी अंग्रेजी विवरण द्वारा ज्ञान नहीं होता। सआदत-गंज के एक युद्ध की चर्चा तो है पर वह २१ मार्च को हुआ था और उसमें अंग्रेजी विवरण के अनुसार मौलवी के विरुद्ध लड़ने के लिए ल्यूगार्ड गया था।

२. के एवं मैलेसन: 'दि इंडियन म्यूटिनी आव १८५७' भाग ४, पृष्ठ २८१।

३. चार्ल्स बाल: 'हिस्ट्री आव इंडियन म्यूटिनी', भाग २, पृष्ठ ३०७।

४. के एवं मैलेसन: 'दि इंडियन म्यूटिनी आव १८५७' पृष्ठ ३७२।

शत्रु पर दो ओर से आक्रमण किया जा सके। बाड़ी से थोड़ा हटकर स्वयं उन्होंने एक गाँव में डेरा डाला व शत्रु की प्रतीक्षा करने लगे। उन्होंने अपनी सेना के जिस दूसरे भाग को शत्रु पर पार्श्व अथवा पीछे से आक्रमण करने भेजा था उसकी असावधानी के कारण शत्रु को अपने सामने व पार्श्व में उपस्थित खतरे को जान लेने का अवसर मिल गया। फलतः उनकी योजना विफल हुई तथा क्रान्तिकारियों की पराजय। मैलेसन तक ने उनकी योजना की प्रशंसा की है।[1]

मौलवी शाहजहाँपुर में

बाड़ी की घटना के पश्चात् मौलवी शाहजहाँपुर पहुँचे। वहाँ नाना धूँधूपंत भी आये। दोनों महान् क्रान्तिकारी नेताओं ने आपस में मिलकर विचार-विमर्श किया। जब कैम्पबेल को यह समाचार मिला तो वह वालपोल के साथ ३० अप्रैल को शाहजहाँपुर पर झपटा[2]। कैम्पबेल ने शाहजहाँपुर को हर ओर से घेर लिया था। इस प्रकार वह दोनों नेताओं को बन्दी बनाना चाहता था। परन्तु नाना तथा मौलवी, दोनों ही कैम्पबेल की आँख में धूल झोंककर निकल भागे।[3] कहा जाता है कि जाते समय मौलवी ने शहर के सभी मुख्य भवन जला डाले थे। बताया जाता है कि ऐसा मौलवी ने इस कारण किया था कि जिससे अंग्रेजी सेना को जेठ की गर्मी में खुले में ठहरना पड़े। प्रमाण-स्वरूप शाहजहाँपुर में आज भी 'जली कोठी' के नाम से प्रसिद्ध भवन बताया जाता है। चार्ल्स बाल का कथन है कि शाहजहाँपुर में धूप लगने के कारण केवल दो दिन में ८० मृत्युएँ हुईं।[4]

शाहजहाँपुर पर आक्रमण

कैम्पबेल ने शाहजहाँपुर से २ मई को बरेली की ओर प्रस्थान किया। शाहजहाँपुर में अंग्रेजी सेना का नेतृत्व हेल पर छोड़ा गया। कैम्पबेल के शाहजहाँपुर छोड़ने के २४ घंटे पश्चात् ही मौलवी ने मोहम्मदी के राजा के

---

१. के एवं मैलेसन: 'दि इन्डियन म्यूटिनी आव १८५७' पृ० ३७२ इस घटना की पुष्टि 'मुरक्क़ये खुसरवी', पृष्ठ ३२६ ब से भी होती है।

२. के एवं मैलेसन : 'दि इंडियन म्यूटिनी आव १८५७' पृष्ठ ३७३।

३. वही पृष्ठ ३७४।

४. चार्ल्स बाल : 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' भाग २, पृ० ३३८।

साथ कई हजार सेना लेकर शाहजहाँपुर पर आक्रमण किया।[1] कहना न होगा कि यह आक्रमण पूर्वनिश्चित था। जब कैम्पबेल ने ३० अप्रैल सन् १८५८ ई० को शाहजहाँपुर पर आक्रमण किया तभी मौलवी ने यह समझ लिया होगा कि कैम्पबेल थोड़ी सी सेना छोड़ स्वयं बरेली जायगा। इसी से कैम्पबेल के जाने के २४ घंटे पश्चात् ही उन्होंने शाहजहाँपुर पर आक्रमण किया। जब मौलवी शाहजहाँपुर से ४ मील दूर रह गये, वे अपनी सेना को थोड़ा-सा विश्राम देने के विचार से रुक गये। फिर भारतीय गुप्तचरों ने देश के साथ विश्वासघात किया और जाकर हेल को इसका समाचार दे दिया। हेल समाचार पाकर नवनिर्मित पर सुरक्षित जेल के भवन में चला गया।[2] मौलवी ने ३ मई से ११ मई की सुबह तक जेल के भवन पर बड़ी भीषण गोलाबारी की। ७ जून को बरेली का पतन हो गया और उसी दिन कैम्पबेल को शाहजहाँपुर पर मौलवी द्वारा आक्रमण का समाचार मिला। कैम्पबेल ने जान जोन को हेल की सहायता के लिए ८ मई को बरेली से भेजा जो वहाँ ११ मई को पहुँच गया।[3] जोन को मौलवी पर आक्रमण करने का साहस न हुआ और वह बरेली से और कुमुक आने की राह देखने लगा। १५ मई को मौलवी ने जोन पर आक्रमण किया। क्रान्तिकारी बहुत वीरता से लड़े।[4] जोन केवल अपने रक्षार्थ लड़ा, जिसमें वह आंशिक रूप से ही सफल रहा। 'मुरक्कए खुसरवी' के अनुसार मौलवी के साथ "मिर्जा फिरोज शाह बहादुर भी थे। अब यह १ और १ मिलकर ११ हुए।"[5] १८ मई को कैम्पबेल शाहजहाँपुर पहुँचा। दोपहर को युद्ध हुआ और क्रान्तिकारी यद्यपि पहले से अधिक वीरता से लड़े पर अन्त में हारे।[6] मौलवी अहमदउल्लाह शाह २३ मई की शाम को अवध की ओर चले गये। मैलेसन का मत है कि यदि मौलवी ने शाहजहाँपुर पर बिना रुके आक्रमण कर दिया होता तो यह लगभग निश्चित था कि विजय उन्हीं की होती।[7] राइस होम्स का

१. फोर्बेस : 'कालिन कैम्पबेल' पृष्ठ १८०।
२. मैलेसन : 'दि इंडियन म्यूटिनी आव १८५७' पृष्ठ ३०५।
३. फोर्बेस : 'कालिन कैम्पबेल' पृष्ठ १८१।
४. वही।
५. 'मुरक्कए खुसरवी', हस्तलिखित, पृष्ठ ३२७ ब।
६. फोर्बेस : 'कालिन कैम्पबेल' पृष्ठ १८२।
७. मैलेसन : 'दि इंडियन म्यूटिनी आव १८५७' पृष्ठ ३०५।

कथन है कि मौलवी ने शाहजहाँपुर में अपने आपको भारत का सम्राट् घोषित किया था। होम्स यह भी कहता है कि "यह मानने से किसी को इन्कार न होना चाहिए कि यदि योग्यता ही मापदंड हो तो सब क्रान्तिकारियों में मौलवी का ही भारत के सिंहासन पर सबसे अधिक अधिकार है।"[१] किंवदन्ती है कि शाहजहाँपुर में मौलवी ने अपने नाम से सिक्के भी चलवाये थे।

निर्मम हत्या

५ जून सन् १८५८ को मौलवी अहमदउल्लाह शाह अपने कतिपय अनुयायियों सहित पोवायाँ के राजा की गढ़ी गये। उनके वहाँ जाने के भिन्न-भिन्न उद्देश्य बताये जाते हैं। सरकारी रेकार्ड के अनुसार वे शाहजहाँपुर के थानेदार एवं तहसीलदार को, जिन्हें राजा पोवायाँ ने अपनी गढ़ी में शरण दे रक्खी थी, राजा पोवायाँ से लेने गये थे[२]। दूसरे मत के अनुसार बताया जाता है कि राजा पोवायाँ ने अपनी गढ़ी पर मौलवी को स्वयं बुलाया था कि उनसे अंग्रेजों के विरुद्ध सहायता देने के सम्बन्ध में बातचीत करें।

सरकारी रेकार्ड के अनुसार मौलवी अपने कतिपय अनुयायियों सहित गढ़ी पहुँचे और वहाँ के राजा जगन्नाथसिंह से बात करने की अपनी इच्छा प्रकट की। राजा ने अपने भाई बलदेवसिंह को उनकी बात सुनने भेजा। मौलवी ने उनसे कहा कि गढ़ी में बन्द तहसीलदार तथा थानेदार उन्हें सौंप दिये जायँ। इसका उन्हें नकारात्मक उत्तर मिलने पर उन्होंने अपने अनुयायियों से एक हाथी की सहायता से फाटक तोड़ डालने को कहा। राजा के आदमियों ने यह सुनते ही एक गोला फेंका जिससे मौलवी तथा अन्य दो व्यक्ति खेत रहे। बलदेवसिंह ने अपने एक अनुचर को उनका सिर काट लाने को कहा जिसने उसकी आज्ञानुसार आचरण किया।[३] जगन्नाथ सिंह मौलवी का सिर एव धड़ लेकर शाहजहाँपुर गया जहाँ उनके मृत शरीर को जलाकर अवशेष नदी में प्रवाहित कर दिये गये। सर कोतवाली पर जनता को दिखाने के लिए बाहर टाँग दिया गया।

१. राइस होम्स : 'दि सीप्वाय वार' पृष्ठ ५३०।

२. 'प्रोसीडिंग्स्, एन० डब्लू० पी० पोलिटिकल डिपार्टमेंट' सितम्बर १८६१, पृ० ३८-३६।

३. वही।

समकालीन लेखक खानबहादुर जकाउल्ला देहलवी अपनी पुस्तक 'तारीखे उरूजे अहदे सल्तनते इंग्लिशिया हिन्द' में उपरोक्त घटना के सम्बन्ध में लिखते हैं कि, "५ जून को मौलवी हाथी पर सवार हो पोवायाँ इस उद्देश्य से पहुँचा कि राजा पोवायाँ के पास जो सरकार अंग्रेजी के कर्मचारी छिपे हुए बैठे हैं उनको प्राप्त करें। जब वह आया तो उसने द्वार को बन्द पाया। राजा, उसका भाई और उसके नौकर दीवार के समीप खड़े थे। उनमें इशारों से कुछ बातें हुईं। मौलवी ने समझा कि वे जबरदस्ती घुस सकते थे, उन्होंने महावत को आदेश दिया कि हाथी से फाटक टकरा दे। हाथी ने अपने मस्तक से फाटक पर २-३ टक्करें मारकर तोड़ डाला। राजा के कर्मचारियों ने मौलवी पर गोलियाँ चलाकर मार डाला। राजा के भाइयों ने उसका सिर काट लिया। राजा सिर को रूमाल में लपेट कर हाथी पर सवार हुआ और शाहजहाँपुर के मजिस्ट्रेट के पास सिर ले गया जो इस समय अन्य मित्रों के साथ बैठा हुआ भोजन कर रहा था। राजा ने खोलकर मौलवी का सिर दिखाया जिसे देख मजिस्ट्रेट बड़ा प्रसन्न हुआ। दूसरे दिन सिर कोतवाली में लटकाया गया।"[1]

राजा जगन्नाथ सिंह को उनकी इस देशद्रोहिता के लिए ५० हजार चाँदी के टुकड़े पुरस्कार-स्वरूप मिले। टाइम्स के संवाददाता रसेल का कथन है कि राजा पोवायाँ ने धोखा देकर मौलवी को मार डाला; क्योंकि वे तब मारे गए जब कि वे बातों में लगे थे।[2] मौलवी की मृत्यु से क्रान्तिकारियों को ऐसी भारी क्षति पहुँची जिसकी पूर्ति सर्वथा असम्भव थी। तत्कालीन कमिश्नर रुहेलखण्ड का यह कथन सर्वथा सत्य है कि मौलवी की मृत्यु एक बहुत बड़ी क्रान्तिकारी सेना की मृत्यु के समान थी।[3] दूसरी ओर

१. जकाउल्ला देहलवी: 'तारीखे उरूजे अहदे सल्तनते इंग्लिशिया हिन्द' पृष्ठ ६२।

२. रसेल: 'माई डायरी' (चार्ल्स बाल, हिस्ट्री आव इन्डियन म्यूटिनी', भाग २, पृष्ठ ३४७ से उद्धृत) 'तारीखे आफताबे अवध' लेखक मिर्जा मोहम्मद तकी पृष्ठ ३२२ से भी इसकी पुष्टि होती है कि मौलवी की नृशंस हत्या पोवायाँ में हुई।

३. प्रोसीडिंग्स् एन० डब्लू० पी० पोलिटिकल डिपार्टमेंट सितम्बर १८६१, पृष्ठ ३७। (कमिश्नर रुहेलखण्ड द्वारा सचिव एन० डब्लू० पी० को लिखा गया पत्र)

मौलवी की मृत्यु अंग्रेजों के लिए वरदान सिद्ध हुई। स्वयं जी० कूपर, सचिव, एन० डब्लू० पी० सरकार ने कमिश्नर, रुहेलखण्ड को लिखा कि "अहमद-उल्लाह शाह का वध अंग्रेजों की बहुत बड़ी सेवा है।"[१]

प्रताप नारायण मेहरोत्रा
एम. ए. एल-एल. बी.

१. 'प्रोसीडिंग्स् एन० डब्लू० पी०, पोलिटिकल डिपार्टमेंट सितम्बर १८६१, पृष्ठ ४४। (सचिव द्वारा कमिश्नर को १३ सितम्बर को लिखा गया पत्र)

तात्या टोपे

प्रारंभिक जीवन

१८५७ की क्रान्ति के अद्भुत सेनानी, तात्या टोपे, ने एक मराठा देशस्थ ब्राह्मणकुल में सन् १८१४ ई० में जन्म लिया था।[1] आपके पिता श्री पांडुरंग भट्ट नगर जनपद के ग्राम जोला के निवासी थे[2] और अन्तिम पेशवा बाजीराव द्वितीय के सेवक थे। पांडुरंग भट्ट के आठ पुत्र थे। प्रथम पुत्र का नाम रामचन्द्र था जो कि कालान्तर में तात्या टोपे के नाम से विख्यात हुए। आपके जन्म के तीन वर्ष के उपरान्त सन् १८१७ ई० में पेशवा बाजीराव को पेंशन देकर कानपुर के निकट ब्रह्मावर्त में भेज दिया गया। श्री पांडुरंग भट्ट भी अपने स्वामी के साथ ही सपरिवार बिठूर आ गये।

---

१. आपने १८५६ में मेजर मीड के समक्ष के कथन में कहा था कि आपकी अवस्था उस समय पैंतालिस वर्ष थी। तदनुसार आपकी जन्म-तिथि सन् १८१४ ई० हुई। 'दि रिवोल्ट इन सेन्ट्रल इंडिया'—१८५७-५९; 'कम्पाइल्ड इन दि इंटेलीजेंस ब्रांच डिवीजन आव दि चीफ आव स्टाफ. आर्मी हेडक्वार्टर्स, इंडिया' पृ० २७३ (यह पुस्तक केवल सरकारी प्रयोग में लाने के लिए लिखी गयी थी)

अंग्रेजी सरकार ने एक सूची नाना साहब के परिवार और अनुयायियों की बनायी थी। उसके अनुसार सन् १८५८ ई० में तात्या टोपे की आयु बयालीस वर्ष होती है। तदनुसार आपकी जन्मतिथि १८१६ होती है। देखिये — 'एन० डब्ल्यू० पी० प्रोसीडिंग्स्, पोलिटिकल डिपार्टमेंट, जनवरी से जून १८६४, जनवरी १८६४ भाग १, पोलिटिकल डिपार्टमेंट, ए—पृ० १६, इंडेक्स नं० १७, प्रोसीडिंग नं० ७२, दिनांक जुलाई ४, १८६३। उपर्युक्त दोनों प्रमाणों में प्रथम को मान्यता देना अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि वह तात्या टोपे का स्वयम् का कथन है।

२. मेजर मीड के समक्ष तात्या टोपे का कथन। 'दि रिवोल्ट इन सेन्ट्रल इंडिया', पृ० २७३।



तात्या टोपे

वहीं पर बालक तात्या टोपे का पालन-पोषण हुआ। आपके बाल्यावस्था के साथियों में पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र नाना साहब भी थे। आप पेशवा बाजीराव से इतना अधिक स्नेह करते थे कि जब उनकी मृत्यु १८५१ ई० में हुई तो आप शोक-विह्वल हो गये। पेशवा की मृत्यु के पश्चात् आप नाना साहब के प्रमुख सहयोगी और १८५७ की क्रान्ति में उनके दाहिने हाथ हो गये।

आपका शरीर मँझोले कद का तथा गठा हुआ था। आपका रंग साँवला था और चेहरे पर चेचक के दाग थे।[1] आपकी बड़ी-बड़ी आँखें आपके दृढ़-प्रतिज्ञ होने की परिचायक थीं। आपकी उपस्थिति मात्र ही सैनिकों में क्रान्ति फूँक देती थी।

नाना साहब के निरन्तर सहयोग के कारण आपने भी क्रान्तिपूर्ण विचार अपना लिये थे। नाना साहब स्वयं एक अत्यन्त विस्तीर्ण दृष्टिकोण वाले क्रान्तिकारी थे और समस्त भारतीयों के मतैक्य और सम्मिलित रूप से क्रान्ति करने के महत्व को भली भाँति समझते थे। इसी उद्देश्य को लेकर आपने क्रान्ति के ठीक पूर्व दूर-दूर तक देशाटन भी किया था। नाना साहब की इस सुलझी हुई विचार-धारा को उनके अन्यतम सहयोगी तात्या टोपे ने पूर्ण रूप से ग्रहण कर लिया था। आप भी परस्पर सहयोग और विस्तीर्ण दृष्टिकोण के महत्व को समझ गये। इसके अनेकानेक उदाहरण हमको उनके बाद के कार्यों में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।

कानपुर में क्रान्ति का श्रीगणेश

नाना साहब, मौलवी अहमदउल्लाह शाह आदि के अथक प्रयत्नों के फलस्वरूप १८५७ के मई मास तक चारों ओर क्रान्ति की तैयारियाँ पूर्ण हो चुकी थीं। कानपुर नगर में भी, जो ऊपर देखने से संपूर्णतया शान्त था,[2] क्रान्ति की अग्नि सुलग रही थी। सहसा मेरठ और दिल्ली की क्रान्ति के

---

१. 'एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स् पोलिटिकल डिपार्टमेंट' जनवरी से जून १८६४; जनवरी १८६४ भाग १ पोलिटिकल डिपार्टमेंट—ए—पृ० १६; इंडेक्स नं० १७, प्रोसीडिंग नं० ७२, दिनांक जुलाई ४, १८६३। नाना के परिवार और सेवकों की हुलिया का विवरण।

२. 'सेलेक्शंस फ्राम दि लेटर्स डिस्पैचेज एंड अदर स्टेट पेपर्स प्रिजर्व्ड इन दि मिलिटरी डिपार्टमेंट आव दि गवर्नमेंट आव इंडिया १८५७-५८' भाग २।

समाचार १६ मई, १८५७ को कानपुर में आये[1]। क्रान्तिकारियों के चातुर्य का ज्वलन्त प्रमाण यह था कि नाना साहब के ऊपर अंग्रेजों का अखण्ड विश्वास था और उन्होंने नाना साहब को कानपुर बुलाकर २२ मई, '५७ को वहाँ के कोष की रक्षा का भार उनको सौंप दिया[2] और नाना साहब के साथ उनके अद्‌भुत सहयोगी तात्या टोपे भी कानपुर आ गये।[3]

कानपुर में क्रान्ति के बादल छाते गये। अंततः ४ जून, १८५७. ई० की रात्रि में क्रान्ति प्रारम्भ हो गई।[4] और दूसरे दिन ५ जून, १८५७ ई० को नाना साहब ने क्रान्ति का नेतृत्व ग्रहण कर लिया[5] और व्हीलर को समाचार भेज दिया कि वह उन पर आक्रमण करने आ रहे हैं। ६ जून, १८५७ ई० को कानपुर नगर क्रान्तिकारियों के हाथ में आ गया[6] और अंग्रेजों ने खाइयाँ और मोर्चेबन्दी बनाकर उनमें शरण ली[7]। क्रान्तिकारियों ने उन बारिकों और खाइयों को चारों ओर से घेर लिया और उन पर गोला-बारी करने लगे[8]। तात्या क्रान्ति के प्रारम्भ से ही नाना साहब के साथ उनके प्रमुख सहयोगी के रूप में रहे और क्रान्ति के प्रत्येक चरण में उत्साह-पूर्वक भाग लेते रहे।[9]

क्रान्तिकारियों ने जोरदार गोलाबारी प्रारम्भ की। उन्होंने लाल गर्म गोले फेंककर अंग्रेजों की खाइयों में आग लगा दी[10]। चारों ओर के स्थानों से कानपुर में क्रान्तिकारी एकत्रित होने लगे।[11] २१ जून को क्रान्तिकारियों ने आक्रमण की एक बड़ी उत्तम विधि निकाली। उन्होंने रुई के गट्ठर अपने रक्षार्थ सामने रखकर गोलियाँ चलाई[12]। २३ जून को प्लासी के युद्ध की

१. चार्ल्स बाल : 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' भाग १ पृ० २९९।

२. वही पृ० ३०१—ह्यू-व्हीलर का २२ मई का तार।

३. तात्या टोपे का कथन—'दि रिवोल्ट इन सेन्ट्रल इन्डिया' पृ० २७३।

४. चार्ल्स बाल : की 'दि हिस्ट्रीआव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग १ पृ० ३१६।

५. वही—पृ० ३२४; अफीम के गुमाश्ते नरपत की डायरी में ५ जून का विवरण।

६. वही—पृ० ३१९।

७-८--१० कमिसरियट विभाग के डब्ल्यू० जे० शेपर्ड, जो कि खाइयों के अन्दर रहा था, का विवरण, देखिए वही पृ० ३२०।

११-१२—तात्या का कथन, 'रिवोल्ट इन सेन्ट्रल इन्डिया' पृ० २७३।

शताब्दी थी। उस दिन क्रान्तिकारियों ने अंग्रेजों को उखाड़ने का बड़ा ही प्रयत्न किया। पर वे उनको उखाड़ न सके।

जून १८५७ के तृतीय सप्ताह में खाइयों के पीछे घिरी अंग्रेजी सेना की दशा शोचनीय हो चली। पानी की एक-एक बूँद का कष्ट उन्हें था। भुखमरी, महामारी, ग्रीष्म का ताप और मानसिक चिन्ता अपने अत्यन्त विकराल स्वरूप में उनके सम्मुख नृत्य कर रही थी।[1] स्त्रियों और बच्चों की स्थिति और भी द्रावक थी। २६ जून तक किसी प्रकार उन्होंने यह सब सहन किया, परन्तु सहनशक्ति की भी सीमा होती है और जब कष्ट असह्य हो गया तो उन्होंने सन्धि का ध्वज अपने बारकों पर लगा दिया। तात्या ने मेजर मीड के समक्ष अपने कथन में कहा है—"युद्ध चौबीस दिनों तक चलता रहा और चौबीसवें दिन जेनरल (व्हीलर) ने शान्ति का ध्वज उन्नत किया और युद्ध रुक गया।"[2] नाना साहब ने श्रीमती जैकोबी[3] के द्वारा निम्नांकित संदेश भेजा—"समस्त सैनिक और अन्य (मनुष्य), जो कि लार्ड डलहौजी के कार्यों से असम्बन्धित हैं, अस्त्र-शस्त्र छोड़कर आत्मसमर्पण कर देंगे, छोड़ दिये जायँगे और इलाहाबाद भेज दिये जायेंगे।"[4]

अंग्रेजों ने ये शर्तें स्वीकार कर लीं और २७ जून, १८५७ को आत्म-समर्पण कर दिया।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि अंग्रेज इतिहासकारों ने कहा है

१. 'नैरेटिव आव ईवेन्ट्स अटेंडिंग दि आउटब्रेक आव डिस्टर्बेंसेज ऐण्ड दि रिस्टोरेशन आव एथारिटी इन दि डिस्ट्रिक्ट आव कानपुर' पृ० ६।

२. 'दि रिवोल्ट इन सेन्ट्रल इन्डिया,' पृ० २७३।

"The fighting continued for twenty-four days and on the twentyfourth day the General raised the flag of peace and the fighting ceased."

३. श्रीमती टी० ग्रीनवे की आया का कथन—चार्ल्स बाल—'दि हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग १, पृ० ३४२।

४. वाल्टर शेरर का 'नैरेटिव आव ईवेन्ट्स अटेंडिंग दि आउटब्रेक आव डिस्टर्बेंसेज ऐण्ड दि रिस्टोरेशन आव एथारिटी इन दि डिस्ट्रिक्ट आव कानपुर इन १८५७-५८' पृ० ७।

कि नाना साहब ने सन्धि के लिये सर्वप्रथम आग्रह किया। पर यह स्पष्ट है कि विजय-श्री क्रान्तिकारियों की ओर अग्रसर हो रही थी और अंग्रेजों की बारकों में मृत्यु, महामारी, भुखमरी आदि का ताण्डव नृत्य हो रहा था। सन्धि का आग्रह पराजित पक्ष करता है, न कि विजेता। अंग्रेजों की दशा इतनी भयावह थी कि वह चार या छः दिन भी टिक न सकते थे। नाना साहब ने जहाँ इतने दिन प्रतीक्षा की थी वहाँ थोड़ी और कर सकते थे। फिर तात्या टोपे का उपर्युक्त कथन भी इस प्रश्न पर स्पष्ट है।

अंग्रेजों की बलि तथा तात्या

अंग्रेजों को इलाहाबाद नौकाओं द्वारा भेजने का प्रबन्ध सतीचौरा घाट पर किया गया। अंग्रेजों ने अस्त्र-शस्त्र क्रान्तिकारियों को सौंपने के स्थान पर अपने साथ ही ले जाने का प्रयत्न किया।[1] इस पर क्रुद्ध क्रान्तिकारियों से उनमें युद्ध छिड़ गया और फलतः बहुत-से अंग्रेज हत हुए और शेष बन्दी बना लिये गये। केवल एक नौका बचकर निकल गयी जो कि बाद में क्रान्तिकारियों द्वारा पकड़ ली गई।

यहाँ यह कहना कठिन है कि तात्या टोपे भी उक्त काण्ड के अवसर पर घाट पर उपस्थित थे या नहीं। लगभग सभी इतिहासकारों ने यही कहा है कि उक्त बलि उन्हीं के संकेत से दी गई। पर यह कुछ संदिग्ध है। कानपुर के अंग्रेजों के अधिकार में आने के पश्चात् कर्नल विलियम्स ने बयालिस व्यक्तियों के जो बयान लिये थे[2] उनके विश्लेषण से यह विषय संदिग्ध ही रह जाता है। क्रान्ति के पश्चात् अंग्रेजों द्वारा बनायी गई उस

१. यह बात इस प्रकार सिद्ध होती है कि ४०वीं नाव के, जो भाग निकली थी, आरोही अंग्रेजों ने, जहाँ-जहाँ भी नाव रुकी या क्रान्तिकारियों ने उन्हें रोकने का प्रयास किया, शिवराजपुर में लगातार क्रान्तिकारियों से युद्ध किया और सफलता भी पायी। यदि उन्होंने शस्त्र सौंप दिये होते तो इन युद्धों को नहीं कर सकते थे। देखिये 'नैरेटिव आव ईवेन्ट्स अटेंडिंग दि आउटब्रेक आव डिस्टर्बेंसेज ऐंड दि रिस्टोरेशन आव अथारिटी इन दि डिस्ट्रिक्ट आव कानपुर', पृ० ७-८।

२. यह बयालिसी बयान कानपुर के वाल्टर शेरर द्वारा प्रेषित कानपुर के 'नैरेटिव आव ईवेन्ट्स' के साथ संलग्न हैं।

समय उपस्थित क्रान्तिकारी नेताओं की सूची में भी उनका नाम नहीं है।[1] अतः तात्या टोपे की उपस्थिति उक्त अवसर पर संदिग्ध ही है।

अब नाना साहब कानपुर के असंदिग्ध स्वामी थे। पहली जुलाई, १८५७ को बिठूर में विधिपूर्वक नाना साहब का पेशवा की गद्दी पर आरोहण हुआ। ब्रिगेडियर ज्वालाप्रसाद को सेना का संचालन सौंपा गया।

हैवलाक का विरोध

कानपुर में पेशवाई ध्वज अधिक दिनों तक न फहरा रह सका। हैवलाक ७ जुलाई को इलाहाबाद से कूच करके वेग से कानपुर की ओर बढ़ा। ब्रिगेडियर ज्वालाप्रसाद उसको १२ जुलाई, १८५७ को फतेहपुर के युद्ध में रोकने में असफल रहे। १५ जुलाई को औंग में घोर युद्ध के उपरान्त भी हैवलाक का बढ़ना न रोका जा सका। उसी दिन पांडु नदी के युद्ध में भी हैवलाक ने सफलता प्राप्त की।

१६ जुलाई को हैवलाक कानपुर नगर के बाहर आ पहुँचा। यहाँ पर नाना साहब ने सैन्य-संचालन स्वयं अपने हाथों में लिया। क्रान्तिकारियों ने बहुत ही जमकर युद्ध किया। परन्तु अन्ततः वे पराजित हुए। यहाँ पराजित होने के उपरान्त क्रान्तिकारियों ने कानपुर का बारूदखाना उड़ा दिया[2] और बिठूर चले गये। इस युद्ध में तात्या टोपे अपने स्वामी के साथ-साथ लड़े और उन्हीं के साथ बिठूर चले गये।[3]

बिठूर में नाना साहब ने पहुँचकर दिल्ली के सम्राट्, स्वर्गीय पेशवा बाजीराव और अपने आदर में तोपों की सलामी दी[4] और तत्पश्चात्

१. 'एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स, पोलिटिकल डिपार्टमेंट, जनवरी से जून १८६४; जनवरी १८६४' भाग १, पोलिटिकल डिपार्टमेंट ए—संलग्न मेमो पृ० १८।

२. ग्रूम : 'विद हैवलाक फ्राम इलाहाबाद टु लखनऊ', पृ० ३२। तथा एक अफसर का पत्र १७ जुलाई, १८५७ को कानपुर से। देखिये चार्ल्स बाल द्वारा रचित 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग १, पृ० ३७५। वही पृ० ३८५।

३. तात्या टोपे का कथन : 'दि रिवोल्ट इन सेंट्रल इन्डिया' पृ० २७३।

४. चार्ल्स बाल : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग १, पृ० ३८४।

सपरिवार तात्या टोपे के साथ गंगा पार करके अवध-स्थित फतेहपुर चौरासी ग्राम में चले गये।

यह काल क्रान्तिकारियों के लिए अत्यन्त निराशाजनक था। अब आगे क्या हो, यह समस्या सबके सम्मुख थी। अंततः यह निश्चित हुआ कि छिन्न-भिन्न सेनाओं को सुसंगठित किया जाय। पराजित सेना का उत्साहवर्धन करके उनको संगठित कर लेने में तात्या टोपे दक्ष थे। इस कला का प्रदर्शन उन्होंने आगे भी अनेकों बार किया। फलतः उन्हें ही यह कार्य सौंपा गया। शीघ्र ही यह कार्य प्रारम्भ करके तात्या टोपे छिन्न-भिन्न सेना को सुसंगठित करने लगे। अपनी पुनर्संगठित सेना का केन्द्र उन्होंने बिठूर बनाया।[1]

हैवलाक कानपुर से २५ जुलाई, १८५७ को निकलकर लखनऊ रेजीडेंसी के सहायतार्थ चला। नाना साहब ने उसकी सेना के अधोभाग पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया। तब तक अवध के क्रान्तिकारियों ने उसके दाँत बशीरतगंज के दो युद्धों में खट्टे कर दिये थे। इधर कानपुर पर भी बिठूर से तात्या टोपे के आक्रमण का भय था। अतः वह १३ अगस्त को कानपुर पुनः लौट आया।[2]

अब तक तात्या टोपे के साथ बिठूर में कानपुर की पुरानी सेनाओं के अतिरिक्त निम्नांकित सेनाएँ और भी आ गई थीं—सागर की ३१वीं और ४२वीं रेजीमेंटें—१७वीं रेजीमेंट फैजाबाद की, बारकपुर की पदच्युत ३४वीं रेजीमेंट का कुछ भाग, तीन रेजीमेंटें अश्वारोहियों की और बड़ी संख्या में मराठे।[3]

नाना साहब और तात्या टोपे की सेनाएँ कानपुर के अत्यन्त निकट तक आ गई थीं। १५ अगस्त, १८५७ को हैवलाक ने नील को भेजा और एक युद्ध कानपुर के पास ही क्रान्तिकारी सेनाओं से हुआ जिसमें क्रान्तिकारी सेना बिठूर वापस चली गई।[4]

१६ अगस्त, १८५७ को हैवलाक ने बिठूर पर आक्रमण किया। बिठूर

१. चार्ल्स बाल की 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग २, पृ० २५।

२. राइस होम्स की 'इन्डियन म्यूटिनी' पृ० २१७।

३. चार्ल्स बाल की 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग २, पृ० २५।

४. वही—पृ० २५।

में क्रान्तिकारियों ने बड़ा जमकर युद्ध किया। तात्या की तोपों ने बड़ा काम किया। पर विजय-श्री अंग्रेजों के ही हाथ रही।

इस युद्ध में क्रान्तिकारियों का सैन्य-संचालन बड़ा ही उत्तम रहा, अंग्रेज भी उनकी वीरता से चकित रह गये। हैवलाक ने बिठूर से ही डिपुटी ऐडजुटेंट जनरल को प्रपत्र भेजा और उसमें उसने लिखा—"मैं विद्रोहियों के लिए न्यायपूर्वक कह सकता हूँ कि उन्होंने बड़ी दृढ़तापूर्वक युद्ध किया, नहीं तो वह पूरे एक घंटे तक, यद्यपि उनको भूमि का बड़ा भारी लाभ था, मेरी भीषण गोलाबारी के सम्मुख टिके नहीं रह सकते थे।"[1]

तात्या ग्वालियर और कालपी में

बिठूर की पराजय के उपरान्त तात्या टोपे ने गंगा पार करके अवध-स्थित फतेहपुर चौरासी नामक स्थान पर नाना साहब से भेंट की। क्रान्तिकारियों के सम्मुख इस समय सेना और अतिरिक्त सहायता की समस्या थी। उनकी सेना हैवलाक के साथ युद्ध में छिन्न-भिन्न हो चुकी थी। युद्ध-सामग्री की भी न्यूनता का सामना करना था। बहुधा यह होता है कि महान् पुरुषों की प्रतिभा जब तक कि कोई कार्य तुलनात्मक रूप से सरल रहता है नहीं उभड़ पाती। पर आपत्तिकाल में उनकी प्रतिभा का समुचित विकास हो जाता है। क्रान्तिकारियों के कानपुर के अधिकार-काल में क्रान्ति में चारों ओर से सहायता उपलब्ध होने और नाना साहब जैसे उत्कृष्ट क्रान्तिकारी के सुसंगठन के कारण तात्या की प्रतिभा का प्रयोग कुछ कम ही हुआ। पर यह आपत्तिकाल तात्या टोपे की प्रतिभा के प्रयोग का उचित अवसर था। उन्होंने उक्त समस्या का जो समाधान निकाला वह उनकी दूर दृष्टि का परिचायक है। निश्चित यह हुआ कि वह ग्वालियर जायें और वहाँ शिन्दे महाराज की क्रान्ति के लिए उद्यत सेना को अपनी ओर मिला लें।

तात्या तुरन्त अपनी इस योजना को मूर्त रूप देने चल पड़े। ग्वालियर में शिंदे महाराज की सेना विद्रोह के लिए तत्पर बैठी थी। शिंदे उनको

---

१. हैवलाक का १७ अगस्त, १८५७ का डिस्पैच, देखिये चार्ल्स बाल की 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' भाग २ पृ० २७।

"I must do the mutineers the justice to pronounce that they fought obstinately. Otherwise they could not for a whole hour have held their own, even with such advantages of ground, against my powerful artillery fire,

समझा-बुझाकर, अग्रिम वेतन देकर[1] कूट-नीति के चारों सिद्धान्त साम, दाम, दंड, भेद का प्रयोग करके क्रान्ति से विमुख किये हुए था। उसकी दशा इतनी अधिक चिन्ताजनक हो गयी थी कि ७ सितम्बर, १८५७ को उसकी सेनाओं ने उससे कहा कि उसने उनके साथ विश्वासघात किया है और बाँदा के नवाब को उनको कुचलने के लिए ग्वालियर आमंत्रित किया[2] और ८ सितम्बर को अपना तोपखाना उसकी ओर मोड़ दिया।[3] इसी काल, लगभग सितम्बर के मध्य में, तात्या टोपे नाना के वकील बनकर ग्वालियर आये और सेनाओं को क्रान्ति के लिये प्रेरित करने लगे।[4]

अब सिंधिया की दशा और भी चिन्ताजनक हो गयी। यदि क्रान्तिकारी आगरा एवं दिल्ली की ओर कूच करते तो अंग्रेजों के हित के लिये अत्यन्त घातक होता। कानपुर की ओर उनका जाना अधिक हानिप्रद न था क्योंकि वहाँ हैवलाक अंग्रेजी सेना सहित उपस्थित था और वे क्रान्तिकारी सरलतापूर्वक कुचले जा सकते थे। उसने इस स्थिति का लाभ उठाया और कहा कि यदि क्रान्तिकारी आगरा के स्थान पर कानपुर जायँ और मार्ग में झाँसी एवं जालौन उसके लिये विजय करते जायँ तो वह उनको उच्च वेतन देगा, और उसने ब्रिगेडियर और अन्य ऊँचे पद दर्जनों की संख्या में क्रान्तिकारी सेना के अधिकारियों को दिये।[5] उनको २३ सितम्बर १८५७ को कानपुर जाने की आज्ञा देने का वचन दिया। पर २० सितम्बर के लगभग दिल्ली के पतन का समाचार ग्वालियर आया; उससे क्रान्तिकारी उत्साहहीन हो गये।[6] फिर १० अक्तूबर को इन्दौर के क्रान्तिकारी आगरे में बुरी तरह परास्त हुए।[7] पर अब क्रान्तिकारियों को अधिक रोकना सम्भव न था। तात्या टोपे निरन्तर उनको शिंदे का साथ छोड़कर क्रान्ति करने को प्रोत्साहित करते रहे और १५ अक्तूबर, १८५७ को वे लोग कानपुर को तात्या टोपे के साथ शिंदे को अपना शत्रु घोषित करके कूच कर गये।[8] ५वीं पदाति पलटन और मालवा की दो तोपें पीछे रह गई थीं, वह भी ४ नवम्बर को तात्या का साथ देने चल पड़ीं।

१. पार्लियामेन्टरी पेपर्स : 'नेटिव प्रिन्सेज, पोलिटिकल एजेण्ट मैक्फरसन की १० फरवरी, १८५८ की आख्या'—पृ० सं० १०४।

२, ३—पार्लियामेंटरी पेपर्स : 'नेटिव प्रिंसेज आव इंडिया सिंधिया : मेजर जनरल मैक्फरसन की आख्या' : पृ० १०६।

४, ५, ६, ७, ८—पार्लियामेंटरी पेपर्स : 'नेटिव प्रिन्सेज आव इंडिया सिंधिया : मेजर जनरल मैक्फरसन की आख्या'—पृ० १०७

तात्या की इस ग्वालियर-यात्रा के समय मराठी पुस्तक 'माझा प्रवास' का लेखक विष्णु भट्ट गोडसे ग्वालियर में उपस्थित था। उसने तात्या को स्वयं ग्वालियर में देखा था। उनके कार्यों का सुन्दर वर्णन गोडसे ने 'माझा प्रवास' में दिया है। गोडसे लिखता है—

"भादों के महीने में एक दिन मैंने देखा कि ग्वालियर शहर के अन्दर बड़ी गड़बड़ी मची हुई है। नाके रास्तों पर लोगों की भीड़ जमा होकर बड़े रहस्यपूर्ण ढंग से बात कर रही है। घुड़सवार सिपाही इधर-उधर दौड़ रहे हैं। बहुत-सी दूकानें बन्द हैं। यह सब देखकर मैंने समझ लिया कि जरूर कुछ गदर की ही गड़बड़ है। फिर लोगों से पता चला कि श्रीमन्त नाना साहब की ओर से तात्या टोपे शिंदे सरकार से फौज की कुमुक माँगने आये हैं। मैंने बाजार में तात्या टोपे को देखा और मुरार की छावनी से उन्होंने चार पलटनों को अपने मत में मिला लिया था। फिर उन्होंने शिंदे सरकार से कहा कि 'मैं इतने दिन तुम्हारे यहाँ रहा पर तुम्हारे शहर या देश को जरा भी नुकसान नहीं पहुँचाया। इसलिए तुमको यह उचित है कि मुझे गाड़ियाँ छोड़ ऊँट इत्यादि सब तय करके दो।' तात्या टोपे का अभिप्राय समझकर जियाजीराव शिंदे और दिनकर राव मुरार की छावनी में उनसे मिलने गये। छावनी नगर से तीन कोस पर नदी के किनारे थी। वहाँ भेंट होने पर शिंदे महाराज ने कहा कि 'जो कुछ तुम चाहते हो वह मैं दूँगा। परन्तु मेरे देश को जरा भी नुकसान न पहुँचाते हुए तुम यहाँ से चले जाओ।' यह निश्चय हो जाने के बाद पान-सुपारी, इत्र-गुलाब आदि से सत्कार हुआ। दूसरे दिन शिंदे ने गाड़ियाँ, घोड़े, हाथी, ऊँट, बैल, खच्चर इत्यादि देकर तात्या टोपे को बिदा किया और इस प्रकार ग्वालियर का विघ्न टला।"[1]

तात्या टोपे ने ग्वालियर से कूच करके जालौन और कछवागढ़ पर अधिकार कर लिया।[2] कछवागढ़ शिंदे महाराज के अधिकार में था। रामपुरा और गुलसराई के राजाओं को भी उन्होंने पकड़ लिया और उनसे कुछ रुपया प्राप्त किया।[3] जालौन के उपरान्त वह काल्पी आ गये और उसे

१. अमृतलाल नागर द्वारा अनुवादित "माझा प्रवास" पृ० ३४-३६

२, ३. पार्लियामेंटरी पेपर्स : 'नेटिव प्रिंसेज आव इंडिया' : सिंधिया : मैक्फरसन की आख्या पृ० १०७।

अपना केन्द्र बनाया। काल्पी वह नवम्बर के प्रथम सप्ताह में आये थे। काल्पी की स्थिति अत्यन्त उत्तम थी। यह बुन्देलखण्ड के मध्य में था और यहाँ एक सुदृढ़ गढ़ भी था।

इस अपूर्व सफलता के उपरान्त उन्होंने अपने स्वामी नाना साहब को अपने प्रतिनिधि को भेजने के लिये लिखा। नाना साहब ने अपने भ्रातृज राव साहब को भेजा। राव साहब ने काल्पी का शासन नाना साहब के नाम पर अपने हाथ में ले लिया।[1] अब तात्या टोपे किसी उपयुक्त अवसर की खोज में लग गये।

कानपुर पर आक्रमण

अंग्रेजी सेना के प्रधान नायक कैम्पबेल के सम्मुख विचित्र समस्या थी। तात्या काल्पी में अवसर की खोज में एक शक्तिशाली सेना के साथ उपस्थित थे। उधर लखनऊ रेजीडेंसी में अंग्रेजी सेना पतन के दिन गिन रही थी। इधर कानपुर अंग्रेजों के लिये बड़ा महत्वपूर्ण था। एक तो कलकत्ते से वाराणसी, प्रयाग होते हुए, अग्निबोटों से सेना कानपुर होकर ही आती थी और फिर कानपुर, आगरा एवं दिल्ली से अवध में सेना आने के मार्ग में था। अब कैम्पबेल के सम्मुख यह समस्या थी कि वह प्रथम काल्पी पर आक्रमण करके तात्या को पराजित करे और इस प्रकार कानपुर को सुरक्षित करे अथवा लखनऊ रेजीडेंसी को मुक्त कराने जाय। अंततः वह ९ नवम्बर १८५७ को लखनऊ की ओर चल पड़ा।

तात्या की तीक्ष्ण बुद्धि ने अवसर की उपयुक्तता भाँप ली। कानपुर में इस समय केवल ५०० यूरोपियन और कुछ सिक्ख मात्र ही थे।[2] अतः जालौन के रक्षार्थ एक टुकड़ी, और ४०० सैनिक, आठ तोपें और ग्यारहवाँ भाग अपने बारूदखाने का काल्पी में छोड़कर १० नवम्बर, १८५७ को उन्होंने यमुना पार की।[3] यहाँ से वह तीव्रता से कानपुर की ओर बढ़े। उन्हें बाँदा और बाद में अवध के सैनिक दस्तों का भी योग प्राप्त हो गया। उन्होंने नवम्बर के तृतीय सप्ताह में शिवराजपुर और शिवली जीत लिया।[4]

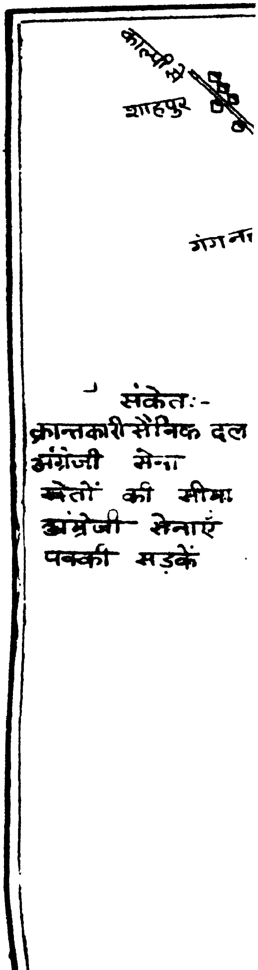
---

१. अमृतलाल नागर द्वारा अनुवादित 'माझा प्रवास' पृ० ५६-५७।

२. राइस होम्स : 'ए हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' पृष्ठ ४०५।

३. राइस होम्स : 'ए हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' पृ० ४१८।

४. वही—पृ० ४१९।



कानपुर के
युद्ध का
२८ नवम्बर से
१८५७

पांडु नदी का युद्ध

कानपुर के अंग्रेजी सेनाध्यक्ष विंढम ने जब तात्या के कार्यकलाप देखे तो सेना लेकर कानपुर से २४ नवम्बर को निकला। उधर तात्या भी विंढम की चुनौती स्वीकार करके पांडु नदी के तट पर २५ नवम्बर, १८५७ ई० को आ गये। २६ नवम्बर को पांडु नदी का युद्ध हुआ।[1] विंढम ने अंग्रेजों की पुरानी विधि युद्ध में अपनायी जिसके अनुसार अंग्रेज भारतीय सेना के मध्य में तीर की तरह आक्रमण करके उसको छिन्न-भिन्न कर देते थे। एक समय ऐसा लगा कि तात्या परास्त भी हो गये।[2] परन्तु विद्रोही सेना का नेता कोई मूर्ख न था। विंढम के प्रहार ने उन्हें भयभीत करने के स्थान पर अंग्रेजों की कमजोरी समझा दी। तात्या ने अन्ततोगत्वा उसे पराजित कर दिया और कानपुर तक अंग्रेजी फौजों का पीछा किया।

कानपुर का तृतीय युद्ध

२७ नवम्बर, १८५७ ई० को कानपुर में युद्ध हुआ।[3] तात्या ने अर्धवृत्ताकार व्यूह बनाया और सन्ध्या तक अंग्रेजी सेनाओं को हतोत्साहित कर दिया। अंग्रेजों के पूरे कैम्प व साजो-सामान पर अधिकार कर लिया। २८ नवम्बर को पुनः अंग्रेजों ने भाग्य-निर्णय का निश्चय किया। इस दिन तात्या की विजय और भी पूर्ण रही। पूरा कानपुर नगर अब उनके चंगुल में था।[4]

ये तीनों दिनों के युद्ध तात्या के रणकौशल के अद्भुत प्रमाण हैं। विंढम एक प्रसिद्ध जनरल था और उसको इस प्रकार परास्त करना सरल कार्य न था।

कैम्पबेल का कानपुर-आगमन और तात्या की पराजय

ठीक उस समय जब अंग्रेजी सेनाएँ उखड़ ही रही थीं कैम्पबेल अवध से अंग्रेजी कैम्प में आ गया। तात्या ने अंग्रेजी सेनाओं को गंगा पार करने से रोकने का प्रयत्न किया पर इसमें वह असफल रहे।[5]

क्रान्तिकारियों ने कैम्पबेल का डटकर सामना करने का निश्चय किया। ५ दिसम्बर, १८५७ ई० तक छुट-पुट युद्ध होता रहा। पर ६ दिसम्बर को

---

१. २. ३. ४. 'सेलेक्शंस फ्राम दि लेटर्स, डिस्पैचेज ऐन्ड अदर पेपर्स प्रिजर्व्ड इन दि मिलिट्री डिपार्टमेंट आव दि गवर्नमेंट आव इंडिया १८५७-५८, भाग २, पृ० ३७७ से ३८०। मेजर जनरल का पत्र कैम्पबेल को।

५. राइस होम्स की 'इन्डियन म्यूटिनी' पृ० ४२४।

कैम्पबेल ने डटकर युद्ध किया। इस युद्ध में विजयश्री अंग्रेजों के हाथ रही।[1] अंग्रेजों ने काल्पी और बिठूर के मार्ग को बन्द कर दिया जिससे कि तात्या भाग न सकें। पर तात्या अपनी सेना के अधिकांश भाग और तोपों सहित बिठूर के रास्ते से भाग ही निकले।

तात्या का पीछा होप ग्राण्ट ने आरम्भ किया। ग्राण्ट ने ६ दिसम्बर, १८५७ ई० को, जब तात्या गंगापार करके अवध में जाने का प्रयत्न कर रहे थे, शिवराजपुर के निकट आक्रमण करके उनको परास्त किया और उनकी १५ तोपें छीन लीं। पर तात्या वहाँ से भी भाग गये और अंग्रेज उन्हें पकड़ न सके।[2]

इस प्रकार कानपुर को जीतने का तात्या का यह प्रयास भी असफल हो गया। परन्तु असफलता के बावजूद भी यह प्रयास तात्या टोपे के रण-कौशल, साहस और कार्य-क्षमता का अद्भुत उदाहरण है। विंढम जैसे कुशल जनरल को परास्त करना, कैम्पबेल जैसे सेनाध्यक्ष को एक सप्ताह तक उलझाये रखना और फिर भी परास्त होने पर अपनी सेना और युद्ध-सामग्री को इस प्रकार बचा ले जाना तात्या की कुशलता और चतुरता के परिचायक हैं। इस पराजय के साथ-साथ कानपुर सन् १८५७ ई० में क्रान्तिकारियों के हाथ से निकल गया।

चरखारी पर तात्या की विजय

शिवराजपुर में पराजित होने के पश्चात् क्रान्तिकारी काल्पी गये।[3] काल्पी बुन्देलखण्ड के मध्य में स्थित होने के कारण क्रान्तिकारियों के उस क्षेत्र के प्रमुख केन्द्रों में था। यहाँ पर उनकी दृष्टि चरखारी की ओर गयी। चरखारी का राजा अंग्रेजों का विशेष रूप से भक्त था। जनवरी १८५८ के

१. सेलेक्शंस फ्राम दि लेटर्स, डिस्पैचेज एण्ड अदर स्टेट पेपर्स प्रिजर्व्ड इन दि मिलिट्री डिपार्टमेंट आव दि गवर्नमेंट आव इंडिया १८५७-५८, पृ० ३७३। कमाण्डर-इन-चीफ कैम्पबेल का तार भारत के गवर्नर-जनरल को।

२. वही—पृ० ३६६। कमाण्डर-इन- चीफ का तार गवर्नर-जनरल को।

३. 'नैरेटिव आव ईवेन्ट्स अटेंडिंग दि आउटब्रेक आव डिस्टर्बेंसेज ऐण्ड दि रिस्टोरेशन आव एथारिटी इन दि डिस्ट्रिक्ट आव जालौन इन १८५७-५८, १८५८ का नं० १२, जी० परुआ से कैप्टेन टेरनन को प्रपत्र, पृ० ६।

अन्त में तात्या ने चरखारी पर आक्रमण करके घेरा डाल दिया।[1] चरखारी नगर के कुछ सैनिक अपने नायक जुझारसिंह के नेतृत्व में उनसे मिल गये और जिस स्थान का वह रक्षक था उससे क्रान्तिकारी नगर में घुस गये।[2] इस प्रकार १ मार्च १८५८ ई० को चरखारी नगर तात्या टोपे के अधिकार में आ गया;[3] और गढ़ के चारों ओर घेरा डाल दिया गया। राजा के बहुत से पुराने सरदार और सैनिक तात्या से आ मिले और जो चरखारी के राजा के साथ रह गये वे भी बराबर साथ छोड़ने को कहते रहे।[4]

यहाँ पर तात्या का रण-कौशल बड़ी उच्च कोटि का था। जे० एच० कार्ने ने, जो वहाँ असिस्टेंट मैजिस्ट्रेट था, भारत के गवर्नर-जनरल को लिखा था कि, "शत्रुओं ने समस्त कार्य बड़े सुव्यवस्थित ढङ्ग से किये—उनके पास थके लोगों के स्थान-ग्रहण करने के लिये दल भी थे; जब कुछ युद्ध करते तो दूसरे विश्राम करते, जब एक दल जाते हुए दिखलाई पड़ता तो दूसरा उनका स्थान लेने आता दिखलाई पड़ता, (यह सब) युद्ध के चलते रहते समय भी। उन सबने अपने-अपने बिगुल पिछले बड़े आक्रमण में बजाये थे, और प्रत्येक बन्दूकची के दल आगे बढ़े और सौंपा हुआ कार्य किसी ऐसे चतुर सिपाहियों के आदेशानुसार किया जो हमारे द्वारा युद्ध-कौशल की शिक्षा पाये हुए हैं। उनके पास अस्पताल की डोलियाँ थीं और बड़े सुव्यवस्थित बाजार थे। जो सामग्रियों से ओतप्रोत थे। संक्षेप में, उन्होंने युद्धभूमि की समस्त कार्यशील शक्ति प्रदर्शित की"।[5]

---

१. नैरेटिव आव ईवेन्ट्स कनेक्टेड विद म्यूटिनी ऐट हमीरपुर, पृ० ४।

२. ३. ४. ईस्ट इंडीज : रिटर्न टु ऐन ऐड्रेस आव दि हाउस आव लार्ड्स डेटेड २ मार्च, १८६०, फार कापीज आव एक्स्ट्रैक्ट्स आव करेसपांडेंस रिलेटिंग टु आनर्स आर रिवार्ड्स बेस्टोड अपान दि नेटिव प्रिंसेज आव इंडिया, पृ० ७३। चरखारी—नं० १८ जे० एच० कार्ने का पत्र गवर्नर-जनरल को, दिनांक इलाहाबाद, ४ मार्च, १८५८।

५. वही—पृ० ७४

"The enemy conducted all their operations very systematically. They could afford their relief parties; while some fought others rested; as one set was observed going away, another was seen coming to take their Places even during the continuance of the conflict. They had their bugle calls during the last grand assault, and each separate band of matchlock men was led on and performed its assigned task

अन्ततोगत्वा चरखारी का गढ़ भी शीघ्र ही तात्या टोपे के हाथ में आ गया। यहाँ तात्या टोपे को २४ तोपें और तीन लाख रुपये मिले।[1] चरखारी के घेरे ने अंग्रेजों को इतना हैरान कर दिया था कि अंग्रेज सेनापति ने ह्यू रोज को झाँसी छोड़कर चरखारी की सहायतार्थ पहुँचने का आदेश दिया था [illegible] का पालन रोज ने [illegible] । चरखारी से [illegible][2]

तात्या झाँसी की सहायता को

इसी बीच २१ मार्च को ह्यू रोज झाँसी के गढ़ के सम्मुख पहुँच गया और २३ मार्च, १८५७ को उस पर घेरा डाल दिया।[3] झाँसी की वीरांगना रानी ने झाँसी का पतन अवश्यम्भावी देखकर तात्या टोपे के पास सहायतार्थ संदेश भेजा।[4] तात्या ने अपनी स्वाभाविक दूर दृष्टि से झाँसी के बचाने की और प्रमुख क्रान्तिकारिणी को सहायता देने की आवश्यकता भाँप ली। वह राव साहब की आज्ञा लेकर २२,००० सैनिक और २८ तोपों सहित रानी की सहायता हेतु चल पड़े। उनकी सेना में पाँच या छः टुकड़ियाँ ग्वालियर की सेना की भी थीं।[5]

३० मार्च, '५८ को वह बरवासागर, जोकि बेतवा नदी से तीन मील की दूरी पर है, आ गये। तात्या ने राजपुर घाट से ३१ मार्च को बेतवा पार किया और सूर्यास्त के पश्चात् एक बड़ी-सी होली जलाकर अपने आने की सूचना रानी को दे दी। स्वाभाविक है कि झाँसी के गढ़ के अन्दर

under the tution evidently of some ot the smartest sepoys who had been instructed by us in the art of war. They had their hospital dolies and they appeard to have large well-regulated bazar, with abundance of supplies. They in short displayed all the active energies of the battle-field."

१. दि रिवोल्ट इन सेन्ट्रल इन्डिया पृ० ११० एवम् पोलिटिकल कंसल्टेशंस : पोलिटिकल प्रोसीडिंग्स सप्लीमेंट ३० दिसम्बर १८५७, नम्बर ६४६ : देखिये 'केशरी' का मंगलवार, ९ मई, १९३९ का अंक, पृ० ४ कालम १, तात्या टोपे का पत्र राव साहब को।

२. म्यूटिनी रिकार्ड्स (लखनऊ सचिवालय) आथेंटिकेटेड कापीज आव टेलीग्राम्स टु मि० ई० ए० रीड, २४ मार्च १८५८ से अप्रैल १८५९ तक। जालौन और बुन्देलखण्ड से तार दिनांक २९ मार्च।

३. रिवोल्ट इन सेन्ट्रल इन्डिया, पृ० १०६-१०७।

४. अमृतलाल नागर द्वारा अनुवादित 'माझा प्रवास' पृ० ८५।

५. रिवोल्ट इन सेंट्रल इन्डिया पृ० ११०।

हतोत्साहित क्रान्तिकारियों में उत्साह की लहर दौड़ गयी और उन्होंने गढ़ से तोपें दागकर और जयकारों से उनका स्वागत किया।[1]

बेतवा का युद्ध

तात्या यह समझते थे, और ठीक ही समझते थे, कि अंग्रेज बड़ी ही विषम परिस्थिति में हैं। गढ के अन्दर ११,००० क्रान्तिकारी एक अद्भुत क्रान्तिकारिणी की अध्यक्षता में थे और इधर वह स्वयं २२,००० सैनिकों सहित उपस्थित थे।[2] इस समय अंग्रेज चक्की के दो पाटों में पीसे जा सकते थे।

अतः उन्होंने युद्ध का निश्चय किया और १ अप्रैल[3] १८५८ को बेतवा-तट पर युद्ध हुआ। तात्या ने अपनी सेनाएँ दो भागों में विभक्त कीं। दोनों के मध्य में एक जंगल पड़ता था। अंग्रेजों ने ऐसी विषम परिस्थिति के कारण बड़ी ही तीव्रता से युद्ध प्रारम्भ किया और तात्या की प्रथम पंक्ति शीघ्र उखड़ गयी।[4] दुर्भाग्यवश गढ़ के भीतर के क्रान्तिकारियों ने अंग्रेजों पर कोई भी आक्रमण नहीं किया। पहली पंक्ति ने भागते समय जंगल में आग लगा दी।[5] यह बड़ी ही चतुरता का कार्य था। परन्तु अंग्रेजों ने आग के बीच से झपटकर उन पर आक्रमण किया।[6] क्रान्तिकारियों ने बेतवा के पार शरण ली पर पीछा करनेवालों ने भी बेतवा पार करके उनकी सारी तोपें छीन लीं।[7] यहाँ परास्त होकर क्रान्तिकारी काल्पी भाग गये।[8]

१. राइस होम्स—'ए हिस्ट्री आव दि इण्डियन म्यूटिनी', पृ० ५११।

२. 'सलेक्शंस फ्राम दि लेटर्स, डिस्पैचेज ऐंड अदर स्टेट पेपर्स प्रिजर्व्ड इन दि मिलिट्री डिपार्टमेंट आव दि गवर्नमेंट आव इंडिया, १८५७-५८, भाग ४, पृ० ११६।

३. वही—पृ० ११६—'रिवोल्ट इन सेंट्रल इंडिया' में पृ० ११० पर बेतवा के युद्ध का ३१ मार्च १८५८ को होना बताया गया है। पर उसी पुस्तक में दिये घटनाक्रम के अनुसार इस युद्ध को १ अप्रैल को होना चाहिए। उस पुस्तक में दिया है कि ३० मार्च को तात्या बरवा सागर आये, दूसरे दिन (३१ मार्च को) उन्होंने बेतवा पार करके रानी के सूचनार्थ होली जलाई और फिर उसके दूसरे दिन (१ अप्रैल) को युद्ध हुआ।

४. ५. ६. ७. सेलेक्शंस फ्राम दि लेटर्स डिस्पेचेज ऐंड अदर स्टेट पेपर्स प्रिजर्व्ड इन दि मिलिट्री डिपार्टमेंट आव दि गवर्नमेंट आव इंडिया १८५७-५८' भाग ४ पृ० २१६ से २१८ और रोज का पत्र चीफ आव स्टाफ को।

८. म्यूटिनी रिकार्ड्स (लखनऊ सचिवालय) म्यूटिनी बस्ता-ओरिजिनल टेलीग्राम्स सेंट बाई मि० ई० ए० रीड १८५८ : जी० एफ० एडमांस्टन का ई० ए० रीड को तार।

अब झाँसी का पतन सन्निकट था। ३ अप्रैल, १८५८ को झाँसी के पतन होते ही रानी भी वहाँ से घोड़े पर भाग निकली। काल्पी में झाँसी की रानी, तात्या टोपे और राव साहब एकत्र हुए। यहाँ इन लोगों ने ह्यू रोज का डटकर सामना करने का निश्चय किया। इधर रोज ने काल्पी की ओर बढ़ना आरम्भ कर दिया था। अतः यह निश्चय किया गया कि उसे काल्पी से ४२ मील पर झाँसी के मार्ग पर कोंच में सामना करके रोका जाय। यह भार तात्या टोपे को सौंपा गया और वह झाँसी की रानी के साथ ७,००० सैनिक लेकर कोंच आ गये[1] और कोंच के गढ़ की मरम्मत कराकर उसे सुदृढ़ बनाया।[2]

कोंच का युद्ध

७ मई १८५८ ई० को अंग्रेजों ने कोंच पर आक्रमण कर दिया। क्रान्तिकारियों ने पहले कोंच नगर के बाहर जंगलों, मंदिरों और उद्यानों में अंग्रेजी सेनाओं का सामना किया किन्तु अंग्रेजों के सम्मुख वह टिक न सके[3] और अंग्रेजों ने शीघ्र ही कूँच के नगर और मिट्टी के गढ़ पर भी अधिकार कर लिया।[4]

क्रान्तिकारियों ने पीछे हटना प्रारम्भ किया। यह पीछे हटना भी बड़ा ही सुव्यवस्थित रहा। जरा भी जल्दबाजी या भगदड़ नहीं हुई। सेनाएँ फौजी कवायद के नियमों का पालन करते हुए पीछे हट रही थीं। सिपाहियों की एक टुकड़ी पीछा करने वालों से छुट-पुट युद्ध भी करती जाती थी जिससे कि मुख्य सेना ठीक प्रकार से पीछे हट सके। इस सुव्यवस्था का मुख्य श्रेय तात्या टोपे को है। तात्या टोपे की यह विशेषता थी कि वह सदैव पराजय के समय अपनी समस्त सेना को सारी कठिनाइयों के मध्य से बचा ले जाते थे। इसके प्रमाण हमें कानपुर के तृतीय युद्ध, बेतवा के युद्ध, कोंच के

१. म्यूटिनी रिकार्ड्स (लखनऊ सचिवालय) ओरिजिनल टेलीग्राम्स सेंट टु मि० ई० ए० रीड १८५८, ३० अप्रैल १८५८ का एडमांस्टन का तार।

२. सेलेक्शंस फ्राम दि लेटर्स, डिस्पैचेज ऐण्ड अदर स्टेट पेपर्स प्रिजर्व्ड इन दि मिलिट्री डिपार्टमेंट आव दि गवर्नमेंट आव इंडिया, भाग ४, पृ० १२१ और ह्यू रोज का पत्र मैंसफील्ड के पास, पृ० १५।

३. ४. वही—पृ० १७ से १८ रोज का पत्र मैंसफील्ड को।

युद्ध से और आगे भी मिलते हैं। एक अंग्रेजी अधिकारी जो वहाँ पर उपस्थित था लिखता है, "फायर करने के उपरान्त (जब कारतूसें समाप्त हो जाती थीं और गोली चलाने का अवसर नहीं रहता था) बंदूकें फेंक दी जाती थीं और पैनी देशी तलवारें बाहर आ जाती थीं। वे हमारे घोड़ों और आदमियों को तब तक काटते जब तक उनके गुट में एक भी जीवित रहता—तात्या की आज्ञा-पुस्तक बाद में काल्पी में पायी गयी और उसमें अन्तिम आज्ञा (क्रान्तिकारियों के) कूँच में प्रदर्शित शौर्य के प्रति धन्यवाद प्रदर्शित करते हुए थी।[1]

तात्या ग्वालियर में

कोंच की पराजय के उपरान्त तात्या जालौन से चार मील दूर चरखी ग्राम में अपने पिता से मिलने चले गये।[2] चरखी से तात्या कहाँ गये यह निश्चयपूर्वक कहीं नहीं मिलता। काल्पी में वह निश्चयपूर्वक नहीं थे। किन्तु यहाँ यह संदेह होता है कि जब काल्पी में बुंदेलखंड का भाग्य-निर्णय हो रहा था तो क्या सचमुच ही वह अपने पिता के पास चुपचाप बैठे रहे? यह उनके स्वभाव के विरुद्ध था। वह इस काल में वेश बदलकर ग्वालियर में सेनानायकों, सैनिकों और सरदारों आदि से मिलकर उन्हें क्रान्ति करने के लिए भड़का रहे थे। यही मत 'सेलेक्शंस फ्राम दि लेटर्स, डिस्पैचेज़ एंड अदर स्टेट पेपर्स प्रिजर्व्ड इन दि मिलिट्री डिपार्टमेंट आव दि गवर्नमेंट आव इंडिया, १८५७-५८, के सम्पादक फॉरेस्ट का भी है। वह लिखता है—"कोंच की पराजय के उपरान्त तात्या सीधे ग्वालियर गये और अपने को बाजार में छिपा लिया। घटनाओं के पता लगाने की कठिनाई किसी पूर्वीय राज्य का शासन करने में सबसे बड़ी अड़चन है। न ही सिंधिया, न दिनकर राव और न दो मुख्य सेनाध्यक्ष ही तात्या टोपे के इस आगमन को जान सके"।[3] वह किसी ऐसे केंद्र की, जहाँ कि काल्पी का यदि पतन हो जाय तो

---

१. रिवोल्ट इन सेन्ट्रल इंडिया, पृ० १२७। "After firing down went the musket and outcame the sharp cutting native sword. They cut and slashed our horses and men so long as one of their band remained alive..... Tantia Topi's order book was found subsequently at Kalpi and the last order in it expressed his thanks to the spirit of bravery which animated his men at Kunch."

२. 'रिवोल्ट इन सेन्ट्रल इंडिया' पृ० १४७।

३. सेलेक्शंस फ्राम दि लेटर्स डिस्पैचेज एंड अदर स्टेट पेपर्स प्रिजर्व्ड इन दि मिलिट्री डिपार्टमेंट आव दि गवर्नमेंट आव इंडिया, १८५७-५८, भा० ४, भूमिका, पृ० १४७।

क्रांतिकारी एकत्र हो सकें, आवश्यकता के प्रति जागरूक थे। जब उन्होंने काल्पी के पतन का, जो कि २३ मई को हुआ था[1] समाचार सुना था तो ग्वालियर की सेनाओं को समझाया कि अवसर आने पर वे क्रांतिकारियों से मिल जायँ और स्वयं राव साहब और झाँसी की रानी से मिलने चल पड़े। वह ग्वालियर से ४६ मील दूर गोपालपुर में उनसे मिल गये।[2]

ग्वालियर पर अधिकार

गोपालपुर से तात्या टोपे, राव साहब और झाँसी की रानी अपनी क्षत-विक्षत सेना सहित ग्वालियर की ओर चल पड़े। ३० मई, १८५८ ई० को वह लोग ७००० पदातियों, ४०·० अश्वारोहियों और १२ तोपों सहित मुरार पहुँच गये।[3] ३१ मई को शिंदे महाराज ने अपने ८००० सैनिक लेकर मुरार से २ मील पूर्व बहादुरपुर में उनका सामना किया। परन्तु युद्ध प्रारम्भ होते ही पूर्वनिश्चित योजनानुसार पूरी ग्वालियर की सेना, शिंदे महाराज के अंग-रक्षकों को छोड़कर, क्रांतिकारियों से मिल गयी और शिंदे आगरा भाग गया।[4] लश्कर और ग्वालियर का गढ़ भी उनके अधिकार में आ गया।[5] ग्वालियर गढ़ के रक्षकों ने युद्ध का दिखावा मात्र करके गढ़ क्रांतिकारियों को सौंप दिया। ग्वालियर के गढ़ की समस्त युद्ध-सामग्री, ५० या ६० तोपें, असंख्य धन, उत्तम बारूदखाना, शिंदे के हीरे-जवाहरात, जो कि अत्यन्त मूल्यवान थे, आदि सब क्रांतिकारियों के हाथ में आ गये।[6]

१. म्यूटिनी रिकार्ड्स (लखनऊ सचिवालय) आथेंटिकेटेड कापीज आव टेलीग्राम्स, सेंट टु मि० ई० ए० रीड २४ मार्च १८५८ से अप्रैल १८५९ तक; एडमांस्टन का २५ मई १८५८ का तार।

२. 'रिवोल्ट इन सेन्ट्रल इंडिया', पृ० १४७।

३. 'रिवोल्ट इन सेंट्रल इण्डिया', पृ० १४८।

४. रोज का पत्र मैन्सफील्ड को : सेलेक्शंस फ्रॉम दि लेटर्स, डिस्पैचेज एंड अदर स्टेट पेपर्स प्रिजर्व्ड इन दि मिलिट्री डिपार्टमेंट आव दि गवर्नमेंट आव इंडिया १८५७-५८, भाग ४, पृ० १३०।

५. म्यूटिनी रिकार्ड्स (लखनऊ सचिवालय) ओरिजिनल्स आव डेली बुलेटिन्स इशूड बाई मि० ई० ए० रीड-मार्च-जुलाई १८५८। जून ३, १८५८ की बुलेटिन।

६. रिवोल्ट इन सेंट्रल इण्डिया' पृ० १४८।

ग्वालियर की विजय का महत्त्व

ग्वालियर अब पेशवा राज्य का केन्द्र बन गया। तात्या की यह सबसे बड़ी सफलता थी। इस समय समस्त उत्तर भारत में क्रांतिकारी पराजित हो रहे थे। वे हतोत्साहित हो रहे थे। उनके केंद्र छिन गये थे। अब ग्वालियर का गढ़ उन समस्त उत्साहहीन क्रांतिकारियों का आशाकेंद्र बन गया।

इसके अतिरिक्त ग्वालियर का अखिल भारतीय दृष्टिकोण से भी बड़ा महत्त्व है। उसकी भौगोलिक स्थिति अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। ग्वालियर का गढ़ भारत के दृढ़तम गढ़ों में से एक था। वह बम्बई एवं दक्षिण प्रदेशों से उत्तर भारत आनेवाले मार्गों पर स्थित है। उसको केन्द्र बनाकर भारत के किसी भी ओर आक्रमण सुगमतापूर्वक किया जा सकता है। बम्बई आदि को उत्तर भारत की ओर से जानेवाली तार की लाइन भी ग्वालियर होकर जाती है। ह्यू रोज ने मुख्य सेनापति मैंसफील्ड को अपनी शंका प्रदर्शित करते हुए लिखा था[1]—"जो सेनाएँ विद्रोहियों से जा मिली हैं वे देशी

---

1. 'सिलेक्शन्स फ्राम दि लेटर्स, डिस्पैचेज़ ऐन्ड अदर स्टेट पेपर्स प्रिजर्व्ड इन दि मिलिटरी डिपार्टमेंट आव दि गवर्नमेंट आव इन्डिया, १८५७-५८', भाग ४, पृ० १३१-३२।

"The troops which went over to the rebels were the best drilled and organized of all the native levies. To render the state of affairs more embarassing, Gwalior fell into rebell hands at the most unfavourable time of the year for the military operations, on the eve of rainy season and when the heat of summer was at its maximum. No one therefore could foresee the extent of evil if Gwalior was not promptly wrested from the rebels; if Tantia Topi with immense acquisition of political influence and military strength which the possession of that place gave the rebel cause, had time to reorganize the Kalpi army, which he coud easily do with resources of Gwalior at his disposal. The worst forebodings would have come to pass if Tantia Topi leaving either the Kalpi or Gwalior army at Gwalior for its defence, marched with the other southwards, and unfurled the standard of Peshwa in the Deccan and southern Mahrattas. These dis-

सेनाओं में सर्वोत्तम रूप से शिक्षित और सुसंगठित हैं । इस परिस्थिति को और भी चिंताजनक यह बनाता है कि ग्वालियर विद्रोहियों के हाथों में सैन्य-संचालन के लिए वर्ष के सबसे खराब समय में, वर्षाऋतु के ठीक पूर्व जब कि ग्रीष्मऋतु का ताप सर्वाधिक होता है, पड़ा। किसी को भी यह पूर्णरूप से पूर्वाभास न था कि यदि ग्वालियर शीघ्र ही विद्रोहियों से छीना न गया तो कितनी हानि होगी। यदि तात्या टोपे को असीम राजनैतिक प्रभाव एवं सैनिक शक्ति सहित, जिसे कि उस स्थान के अधिकार ने उन्हें दे दिया था, काल्पी की सेना को पुनर्संगठित करने का समय मिल जाता जो वह ग्वालियर के साधनों से, जो उन्हें उपलब्ध थे, सुगमतापूर्वक कर सकते थे (तो बड़ी हानि पहुँचा सकते थे)। सबसे खराब संभावनाएँ पूर्ण हो जातीं यदि तात्या टोपे ग्वालियर या काल्पी की सेनाओं में से एक को ग्वालियर के रक्षार्थ छोड़कर दूसरी सेना के सहित दक्षिण को कूच कर जाते और पेशवा का ध्वज दक्षिण और दक्षिणी महाराष्ट्र में फहरा देते। इन जनपदों और पश्चिमी भारत की बहुत-सी सेनाएँ (अंग्रेजी) हटा ली गयी थीं। प्राचीन पेशवाई राज्य के निवासियों का अपने प्राचीन राजा के प्रति लगाव इतना प्रसिद्ध है कि वह कौन-सा मार्ग अपनाते, यदि तात्या टोपे उनके मध्य में विशाल सेना लेकर आते, इसमें शंका की गुंजाइश ही नहीं है। इंदौर के निवासियों ने विरोधी विचारों के इतने प्रमाण दिये हैं कि यदि अवसर मिलता तो ग्वालियर के उदाहरण का अनुसरण करते। इसमें सन्देह का कोई कारण ही नहीं।"[१]

---

tricts, and the west of India generally, were very much denuded of troops, and the attachment of the inhabitants of the ancient Peishwarate to their former government is too well-known to admit of a doubt as to what course they would have pursued, if Tantia Topi had appeared amongst them with a large army.

"The inhabitants of Indore had given so many proofs of unfavourable feelings that there was no reason to fear that they would, if opportunity offered, follow the example of Gwalior."

१. 'सेलेक्शन्स फ्राम दि लेटर्स, डिस्पेचेज ऐण्ड अदर स्टेट पेपर्स प्रिजर्व्ड इन दि मिलिट्री डिपार्टमेंट आफ दि गवर्नमेंट आफ इंडिया, १८५७-५८', भाग ४, पृ० १३१-३२।

ग्वालियर पर अंग्रेजों का अधिकार

ग्वालियर की विजय ने तात्या टोपे को अकर्मण्य नहीं बना दिया। वह तुरन्त सुव्यवस्था और सैनिक तैयारियों में जुट गये। प्रमुख क्रांतिकारियों जैसे बाणपुर और शाहगढ़ के राजा, कोटा के क्रांतिकारियों आदि को ग्वालियर आने का आमंत्रण भेजा।[1] स्थान-स्थान पर थाने और मोर्चेबंदी स्थापित करना प्रारम्भ कर दिया गया।[2] पर व्यवस्था अभी पूर्ण भी नहीं हो पायी थी कि रोज १६ जून, १८५८ को काल्पी से आ गया और उसने उस पर अधिकार कर लिया। १७ जून, १८५८ ई० को कोटा की सरांय, जो ग्वालियर से तीन या चार मील दक्षिण-पूर्व में है, में युद्ध हुआ। विजयश्री पुनः अंग्रेजों को प्राप्त हुई।[3] इसी युद्ध में झाँसी की वीरांगना रानी भी वीरगति को प्राप्त हुई।[4]

झाँसी की रानी की मृत्यु का क्रान्तिकारियों पर अत्यन्त खराब प्रभाव हुआ। अंततः १९ जून को अंग्रेजों ने ग्वालियर पर अत्यन्त घोर युद्ध के उपरान्त अधिकार कर लिया।[5] २० जून को ग्वालियर का गढ़ भी अंग्रेजों के अधिकार में आ गया।[6]

तात्या टोपे ग्वालियर के पतन के उपरान्त १९ जून १८५८ ई० को वहाँ से भाग निकले। अपनी सेना सहित वह समौली होते हुए जौरा अलीपुर पहुँचे। ब्रिगेडियर जनरल नैपियर उनका पीछा करने के लिए भेजा गया। उसने तात्या टोपे पर २१ जून १८५८ ई० को जौरा अलीपुर पर

१. म्यूटिनी रिकार्ड्स—लखनऊ सचिवालय, ओरिजिनल्स आव डेली बुलेटिन्स इशूड बाई मि० ई० ए० रीड, मार्च से जुलाई १८५८। ३ से १५ जून, १८५८ की बुलेटिनें।

२. 'रिवोल्ट इन सेन्ट्रल इन्डिया', पृ० १५३-१५४।

३. वही—पृ० १५४।

४. म्यूटिनी रिकार्ड्स—लखनऊ सचिवालय, ओरिजिनल्स आव डेली बुलेटिन्स इशूड बाई मि० ई० ए० रीड, मार्च से जुलाई १८५८। २० जून की बुलेटिन।

५. 'रिवोल्ट इन सेंट्रल इंडिया', पृ० १६० से १६४।

६. वही—पृ० १६५ से १६७।

आक्रमण किया और उन्हें परास्त कर दिया।[1] उनकी २५ तोपें, युद्ध-सामग्री, हाथी और गाड़ियाँ अंग्रेजों के हाथ आ गयीं।[2]

छापामार युद्ध का प्रारम्भ

जौरा अलीपुर की पराजय के उपरान्त तात्या टोपे अपनी सेना के काफी बड़े भाग के सहित भाग निकले। उनके साथ बाँदा के नवाब और राव साहब भी थे। इस समय से दस मास तक तात्या टोपे ने छापामार (गुरिल्ला) युद्ध का आश्रय लिया। ग्वालियर में सेना को अपनी ओर मिला लेने की अद्भुत सफलता प्रत्येक समय उनके मस्तिष्क में रहती थी। उन्होंने कई बड़े-बड़े राज्यों—जैसे जयपुर, उदयपुर, इन्दौर, बड़ौदा आदि—पर आक्रमण करके उनकी सेनाओं को अपने पक्ष में मिलाने का प्रयत्न किया। पर भाग्य उनके साथ न था और अंग्रेज उनके मंतव्यों के प्रति जागरूक रहते थे और असफलता ही उनके हाथ लगती। फिर भी इन जैसे द्रुतगामी विद्रोही, जो न खेमे और न साज-सामान ही साथ रखते थे,[3] ने सुसज्जित और असीम साधनों से युक्त अंग्रेजी सेनाओं को नाकों चने चबवा दिये।

जयपुर की ओर

जौरा अलीपुर से २१ जून '५७ ई० को भागकर सर्वप्रथम तात्या टोपे जयपुर पर अधिकार करने के लिए उधर की ओर चले।[4] परन्तु राजपूताना फील्डफोर्स के अधिकारी मेजर जनरल राबर्ट्स ने उनका विचार भाँप लिया और झपटकर उनके पूर्व ही, वहाँ पहुँच गया।

टोंक पर आक्रमण—जयपुर का प्रयास असफल होते देखकर वह टोंक की ओर गये। वहाँ के नवाब ने अपने आपको गढ़ के अन्दर बन्द कर लिया और उनका सामना करने को कुछ सेना और चार तोपें छोड़ दीं।

१. २. सेलेक्शन्स फ्राम लेटर्स, डिस्पैचेज एंड अदर स्टेट पेपर्स, प्रिजर्व्ड इन दि मिलिट्री डिपार्टमेंट आव दि गवर्नमेंट आव इंडिया, १८५७-५८, भाग ४। नैपियर का पत्र असिस्टेंट ऐडजुटेंट जनरल के पास, पृ० १६३-१६४।

३. 'रिवोल्ट इन सेण्ट्रल इन्डिया' पृ० २०५।

४. म्यूटिनी रिकार्ड्स (सचिवालय लखनऊ) ओरिजिनल्स आव डेली बुलेटिन्स इशूड बाई मि० ई० ए० रीड, मार्च से जूलाई १८५८ तक। बुलेटिन इशूड आन २४ जून, ५८।

६ जुलाई, १८५८ ई० को यह सेना तोपों सहित क्रांतिकारियों से मिल गयी और टोंक नगर तात्या के अधिकार में आ गया परन्तु पीछा करनेवालों के कारण वह बिना टोंक के गढ़ पर अधिकार किये ही भाग निकले।[1] टोंक से १३ जुलाई को वह माधोपुर पहुँचे जहाँ पर माधोपुर में स्थित नगर [illegible] उनसे मिल गयी। इस समय तात्या के साथ बांदा के नवाब, राव साहब के अतिरिक्त रहीम अली और दस या बारह हजार सैनिक थे।[2]

उदयपुर की ओर—इसके पश्चात् तात्या टोपे ने जुलाई के उत्तरार्ध में बूँदी की पहाड़ियाँ कीना दर्रे से पार कीं और भीलवाड़ा पहुँच गये। वहाँ पर ८ अगस्त, ५८ ई० को मेजर जनरल राबर्ट्स द्वारा पराजित होकर वह उदयपुर की ओर बढ़े और उदयपुर से ३८ मील दूर कंकरीली नामक स्थान पर अगस्त के द्वितीय सप्ताह में पहुँच गये।[3] पर राबर्ट्स ने उनकी योजना यहाँ भी भंग कर दी और उनको बानस नदी के तट पर कुई के पास १४ अगस्त, १८५८ ई०, को पराजित कर दिया।[4] तात्या को उदयपुर का ध्यान छोड़कर पूर्व की ओर भागना पड़ा।

झलड़ापट्टण और इन्दौर की ओर—तात्या ने १८ अगस्त को चम्बल पार कर झलड़ापट्टण पर आक्रमण किया। चम्बल नदी उन दिनों बहुत चढ़ी हुई थी। अत: अंग्रेज उसे पार न कर सके। यद्यपि झालावाड़ का राणा अंग्रेजों का समर्थक था, परन्तु उसकी सेनाओं ने तात्या से मिलकर उन्हें ३० तोपें सौंप दीं। तात्या ने राणा से १५,००,००० रुपया वसूल किया और राणा मऊ भाग गया।[5]

बढ़ी हुई चम्बल की संरक्षता में तात्या को यहाँ साँस लेने का अवसर

---

१. म्यूटिनी रिकार्ड्स (लखनऊ सचिवालय) कापीज आव टेलीग्राम्स सेंट बाई मि० ई० ए० रीड, ११ मई १८५८ से १२ जनवरी १८५९ तक : मेमो : आगरा दिनांक १३ जुलाई १८५८।

२. वही; और 'रिवोल्ट इन सेंट्रल इन्डिया', पृ० २०६-२०७।

३-४. 'रिवोल्ट इन सेण्ट्रल इन्डिया', पृ० २०९।

५. म्यूटिनी रिकार्ड्स (लखनऊ सचिवालय) कापीज आव टेलीग्राम्स सेंट बाई मि० ई० ए० रीड, ११ मई १८५८ से १२ जनवरी १८५९ तक। दो तार दिनांक आगरा, २ सितम्बर १८५८ एवं ५ सितम्बर १८५८ और रिवोल्ट इन सेंट्रल इंडिया, पृ० २१३-१४।

यह एक अंग्रेज अधिकारी का कथन था। एक शत्रु के द्वारा तात्या टोपे को इससे उत्तम और क्या प्रमाणपत्र मिल सकता था ?

इस प्रकार दो वर्ष के अथक परिश्रम, क्रान्ति के संचालन और नेतृत्व के पश्चात्, १८५७ की क्रांति के उस महान् प्रवर्तक का जीवन फाँसी के तख्ते पर समाप्त हो गया।[1] कानपुर में क्रान्ति के सूत्रपात के समय से कदाचित् कोई ही मास ऐसा गया होगा जब कि तात्या टोपे ने किसी नये स्थान पर जाकर क्रान्ति का सन्देश न सुनाया हो या उत्साहहीन पराजित क्रान्तिकारी सेना का सुसंगठन न किया हो या युद्धक्षेत्र में किसी सेना का संचालन न किया हो। तात्या टोपे सरीखे यदि आधे दर्जन क्रान्तिकारी और होते तो कदाचित् क्रान्ति का फल कुछ और ही होता। यह सच है कि वह गैरीबाल्डी के समान अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्रता दिलाने में सफल नहीं हुए और भारत ६० वर्ष दासता की बेड़ियों में जकड़ा रहा परन्तु फिर भी जब तक भारत में स्वतन्त्रता की भावना बलवती और पूज्य रहेगी और १८५७ की क्रान्ति स्मरण रहेगी, इस देश के निवासी उस महान् क्रान्तिकारी वीर तात्या टोपे का नाम श्रद्धापूर्वक लेते रहेंगे।

दिनेश बिहारी त्रिवेदी
बी० ए० (आनर्स), एम० ए०

On they went until dead beaten. Occasionally some one more fortunate than the rest had the luck to catch up the fugitive and cut up the stragglers; but it was always in heavy jungle; they had the very best information and never trusted themselves to the open country when any force was near. We had the very worst of information even in the territories of professedly friendly Rajas, The sympathy of the people was on their side."

1. अजमेर में जून १८६३ में पकड़े गये तथाकथित नाना साहब के छानबीन में गोपालजी नामक एक दक्खनी ब्राह्मण ने, जो कि तथाकथित नाना साहब के साथ थे, अपने कथन में कहा है कि तात्या टोपे को फाँसी नहीं हुई थी वरन् किसी अन्य मनुष्य को हुई थी। (देखिये परिशिष्ट ६ ब)

नवाब खान बहादुर खाँ

प्रारंभिक जीवन—रुहेलों के वयोवृद्ध नेता नवाब खान बहादुर खाँ सन् १८५७ ई० की क्रान्ति के कर्णधार ही नहीं वरन् रुहेलखंड क्षेत्र में 'क्रान्तिकारी स्वतन्त्र शासन' के संस्थापक भी थे। यह रुहेलों के सरदार हाफिज रहमत खाँ[1] के, जो अंग्रेजों के विरुद्ध अप्रैल सन् १७७४ ई० में लड़े थे, पौत्र थे। इनके पिता का नाम हाफिज नेमत उल्लाह खाँ था।[2] बरेली में मुहल्ला भोज खान बहादुर का निवासस्थान था जो अब भी 'खेड़ा खान बहादुर खाँ' कहलाता है। कहा जाता है कि नवाब साहब का कद ऊँचा था, आँखें बड़ी-बड़ी थीं, चेहरा लाल तथा गोरा था। कदाचित् उनके सफेद दाढ़ी भी थी। सन् १८५७ में स्वतन्त्रता-संग्राम के पूर्व खान बहादुर खाँ बरेली में

---

१. हाफिज रहमत खाँ शाह आलम कुतहाखेल के पुत्र थे। इनका जन्म लगभग ११२० हिजरी तदनुसार सन् १७०८-९ ई० में अफगानिस्तान में हुआ था। यह रुहेला सरदार अली मुहम्मद खाँ के, जो कटिहार में निवास करने लगे थे तथा जिनसे वह सन् १७३९ में मिल गये थे, चाचा थे। ११६१ हिजरी तदनुसार सन् १७४८ ई० में यह देश के वास्तविक शासक बन गये। सन् १७७२ ई० में इन्होंने अवध के नवाब वजीर शुजाउद्दौला से सन्धि की कि यदि नवाब मरहठों को भगा देगा तो वह उसे ४० लाख रुपये देंगे। १७७३ ई० में मरहठे, अवध तथा ईस्ट इंडिया कम्पनी की सेना के सम्मुख भाग गये परन्तु रहमत खाँ ने ४० लाख रुपये देने से इन्कार कर दिया। इस कारण ११८८ हिजरी तदनुसार सन् १७७४ ई० में शुजाउद्दौला ने ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा भेजी हुई एक ब्रिगेड के साथ रुहेलों पर आक्रमण किया तथा उन्हें हरा दिया और १७ अप्रैल को मीरानपुर कटरा जिला शाहजहाँपुर में हाफिज रहमत खाँ की हत्या कर दी।—II हिस्ट्री, बायोग्राफी आदि पृ० ३१६-३१७।

२. जीवनलाल तथा मुइनुद्दीन हसन खाँ डायरियों का चार्ल्स थ्योफिलस मेटकाफ द्वारा अंग्रेजी अनुवाद—'टू नेटिव नैरेटिव्ज आव दि म्यूटिनी इन डेलही' पृ० १२१

अंग्रेजी सरकार के अधीन 'सदरे आला' अथवा डिप्टी थे और उन्हें शासन-प्रबन्ध का बड़ा अच्छा ज्ञान था।[1] चार्ल्स बाल ने लिखा है कि खान बहादुर खाँ हाफिज रहमत खाँ के वंशज थे तथा कम्पनी के अधीन 'नेटिव जज' के पद पर नियुक्त थे।[2] यद्यपि इनका जीवन आराम से व्यतीत हो रहा था परन्तु अंग्रेजों की क्रूरता तथा अन्याय के कारण यह उनके विरुद्ध थे तथा अंग्रेजी शासन से असन्तुष्ट थे।

31 मई 1857 ई० को बरेली में क्रान्ति का श्रीगणेश—अप्रैल तथा मई 1857 ई० में ही बरेली में जनता को अंग्रेजी शासन के विरुद्ध उकसाने के लिए विभिन्न प्रकार के समाचार फैलने लगे। एक यह समाचार फैला कि बरेली में सैनिक क्रान्ति करने के लिए तैयार बैठे हैं। नगर के प्रमुख मुसलमान पलटन के इस ध्येय से पूर्णतः विज्ञ थे। उन लोगों ने नगर की जनता को अंग्रजों के विरुद्ध क्रान्ति में भाग लेने के लिए तैयार कर रक्खा था।[3] यह कहा जाता है कि बरेली में क्रान्ति के कुछ दिन पूर्व रुहेलखण्ड के कमिश्नर मिस्टर एलेक्जेंडर ने खान बहादुर से कहा कि चन्द दिनों में क्रान्ति होनेवाली है इस कारण वह (खान बहादुर) उसका बन्दोबस्त करें क्योंकि रुहेलखण्ड उनके वंशजों का ही है। खान बहादुर ने कमिश्नर के इस अनुरोध को अस्वीकार किया।

शुक्रवार 29 मई 1857 ई० को यह समाचार फैला कि भारतीय सैनिक क्रान्ति करने की तैयारियाँ कर रहे हैं। जब उनके अफसरों ने उनसे इस विषय के बारे में पूछा तो उन लोगों ने उत्तर दिया कि 'क्रान्ति करने का हमारा कोई उद्देश्य नहीं है[4]।'

1. सैयिद कमालउद्दीन—'कैसरुत्तवारीख' भाग दो, पृ० 322।

2. चार्ल्स बाल—'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी'—प्रथम भाग—पृ० 175।

3. 'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी', रुहेलखण्ड डिविजन, बरेली नैरेटिव, पृ० 1।

4. चार्ल्स बाल, 'हिस्ट्री आव दि इण्डियन म्यूटिनी', भाग, पृ० 173।

रविवार ३१ मई[1] सन् १८५७ ई० को भारतीय रेजीमेंटों ने छावनी में क्रान्ति कर दी।[2] प्रातःकाल लगभग ११ बजे छावनी में तोप चलायी गयी और उसी के साथ ही क्रान्ति आरम्भ हो गयी।[3] एक तालिका के अनुसार उस समय बरेली में ८ रेजीमेंटें इर्रेगुलर अश्वारोही, पदातियों की रेजीमेंटें ०८वीं, २८वीं, २९वीं, और ६८वीं तथा ६ तोपें थीं जिन्होंने क्रान्ति की।[4] जनरल बख्त खाँ उन क्रान्तिकारी सैनिकों के नेता बन गये।

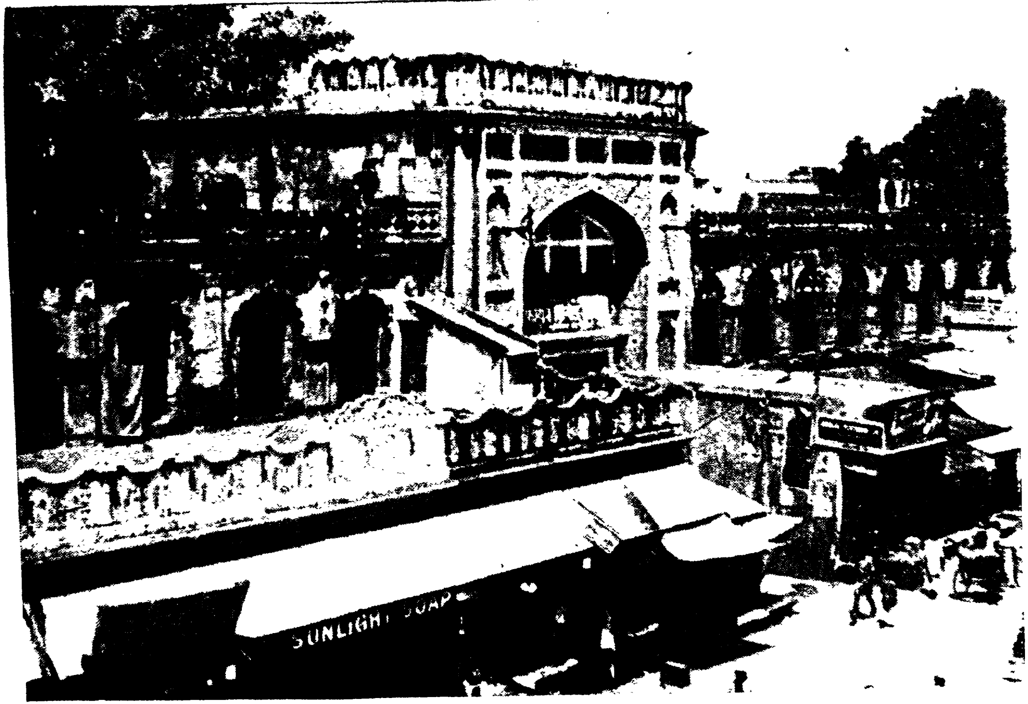
खान बहादुर खाँ का गद्दी पर बैठना—उस समय बरेली में दो ही मनुष्यों को रुहेलखंड के पठान अपना नेता मानते थे। उनमें से एक मुबारक शाह खाँ थे तथा दूसरे खान बहादुर खाँ थे। हाफिज रहमत खाँ के वंशज होने के कारण खान बहादुर का मान तथा प्रभाव मुबारक शाह खाँ की अपेक्षा अधिक था। ३१ मई को छावनी की ओर से गोली चलने की ध्वनि सुनकर मुबारक शाह खाँ ने अपने लगभग ५०० मित्रों तथा संबंधियों सहित कोतवाली की ओर प्रस्थान किया। उनका उद्देश्य यह था कि वे अपने को देहली के बादशाह के अधीन बरेली का 'नवाब नाजिम' घोषित

१. जे० सी० विल्सन, कमिश्नर स्पेशल ड्यूटी, ने जी० एफ० एडमान्स्टन, को २४ दिसम्बर १८५८ को लिखा था कि उसका पूर्ण विश्वास है कि रविवार ३१ मई १८५७, सम्पूर्ण बंगाली सेना में क्रान्ति करने की तिथि पहले ही से निश्चित हो चुकी थी तथा क्रान्ति करने के लिए प्रत्येक रेजीमेंट में लगभग ३ सदस्यों की समिति बनी थी। इस समिति ने पत्र-व्यवहार करके क्रान्ति करने की योजना निश्चित की। योजना यह थी कि ३१ मई १८५७ को अंग्रेजों की हत्या कर दी जाये, कोष लूट लिया जाये, बन्दी मुक्त कर दिये जायँ आदि।—'म्यूटिनी नैरेटिव्ज' एन० डब्लू० पी० -मुरादाबाद नैरेटिव—पृ० १ और २। टी० आर० होम्स 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी'—पृ० ५००।

२. 'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी', रुहेलखंड क्षेत्र, बरेली नैरेटिव, पृ० १।

३. चार्ल्स बाल, 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी', प्रथम भाग, पृ० १७४ तथा १७८।

४. संलग्न पत्र ० संख्या ५ में—'फरदर पेपर्स (नं० ४) रिलेटिव टु दि म्यूटिनीज इन दि ईस्ट इंडीज, १८५७', पृ० २२५।



बरेली

पुरानी कोतवाली का द्वार जहाँ नवाब खान बहादुर खाँ सिंहासनारूढ़ थे।

मिल गया। उन्होंने पाँच दिन तक आराम किया और अपना कार्यक्रम निश्चित किया। अब तक उनके जयपुर और उदयपुर पहुँचने के प्रयास असफल हो चुके थे। स्वभावतः उनकी दृष्टि इंदौर की ओर गयी। इंदौर-निवासी अपनी क्रांति के प्रति सहानुभूति के लिए प्रसिद्ध थे।[1] वह इंदौर की सेनाओं को भड़काने के लिए उधर ही बढ़े। परन्तु राजपूताना फील्डफोर्स के अधिकारी मेजर जनरल मिचेल ने, जो कि राबर्ट्स का उत्तराधिकारी था, उनका अभिप्राय भाँप लिया और आगे बढ़कर १५ सितम्बर, १८५८ ई०, को राजगढ़ के निकट बिओरा के मार्ग पर तात्या को पराजित किया और उनकी २७ तोपें भी छीन लीं।[2]

अनिश्चय का काल

इस प्रकार उनका इन्दौर पर अधिकार करने का भी प्रयास असफल हो गया। इसके पश्चात् कुछ समय तक तात्या के सामने कोई मुख्य ध्येय न रह गया और उनके कार्य-कलापों में एक अनिश्चय का काल आ गया। राजगढ़ के निकट पराजित होकर उन्होंने बेतवा की घाटी में सितम्बर के उत्तरार्ध में सिरोज और २ अक्तूबर को ईसागढ़[3] को विजित कर लिया और दोनों स्थानों से उन्हें क्रमशः चार और पाँच तोपें मिलीं। ईसागढ़ में तात्या टोपे के पास लगभग १५००० सैनिक थे।[4] ईसागढ़ की विजय के उपरान्त तात्या एवं राव साहब ने अलग-अलग होकर दो मार्ग अपनाए।[5] परन्तु तात्या १० अक्तूबर, ५८ ई०, को मंगरौली में[6] और बाँदा के नवाब एवं राव साहब १९ अक्तूबर को सिंधवा में अंग्रेजों द्वारा पराजित हुए।

---

१. 'रिवोल्ट इन सेंट्रल इण्डिया', पृ० १४६।

२. 'दि फ्रेंड आव इन्डिया', दिनांक २३ सितम्बर १८५८, पृ० ८९३ (सीरामपुर से प्रकाशित समकालीन समाचारपत्र)।

३. म्यूटिनी रिकार्ड्स (सचिवालय लखनऊ) ओरिजिनल टेलीग्राम्स सेंट बाई मि० ई० ए० रीड, १८५८। ६ अक्तूबर १८५८ का तार।

४. वही—१ अक्तूबर १८५८ का तार।

५. एेब्स्ट्रैक्ट एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स, फारेन डिपार्टमेंट १८५८। नैरेटिव आव ईवेन्ट्स फार दि वीक एंडिंग १६ अक्तूबर १८५८।

६. म्यूटिनी रिकार्ड्स (लखनऊ सचिवालय) ओरिजिनल टेलीग्राम्स सेंट बाई मि० ई० ए० रीड, १८५८। १२ अक्तूबर १८५८ का तार।

कर दें। बख्त खाँ से वह अपने इस उद्देश्य के विषय में पहले ही से तय कर चुका था। जब मुबारक शाह खाँ कोतवाली की ओर जा रहा था तो उसने देखा कि खान बहादुर खाँ भी जुलूस के साथ कोतवाली की ओर कदाचित् उसी उद्देश्य से जा रहे हैं। पुरानी बस्ती के मुसलमान तथा नौमहला के सैयिद लोग खान बहादुर के सहायक थे।[1] मुबारक शाह खाँ ने देखा कि गद्दी पर बैठने के लिए खान बहादुर खाँ का हक उनकी अपेक्षा अधिक दृढ़ है इस कारण उन्होंने स्वयं गद्दी पर बैठने का विचार छोड़ दिया तथा खान बहादुर के घोर सहायक बन गये। खान बहादुर को कोतवाली में गद्दी पर बैठाया गया तथा उनको देहली के बादशाह बहादुर शाह के अधीन रुहेलखंड का शासक घोषित किया गया। कोतवाली के सामने जहाँ वह गद्दी पर बैठे थे मुहम्मदी झंडा फहराया गया। इसी समय खान बहादुर को यह सूचना मिली कि कुछ अंग्रेज हामिद हसन मुंसिफ तथा अमान अली खाँ के घरों में छिपे हैं। उन्होंने उन अंग्रेजों की हत्या करने का आदेश दिया तथा यह घोषणा करवायी कि प्रत्येक अंग्रेज की हत्या कर दी जाय तथा जो कोई उन्हें शरण दे उसकी भी हत्या कर दी जाय। तीन बजे दिन को मिस्टर ऐस्पीनाल का परिवार खान बहादुर के आदेशानुसार कोतवाली लाया गया तथा उन लोगों के जीवन का अन्त कर दिया गया।[2]

खान बहादुर खाँ का जुलूस—उसी दिन अर्थात् ३१ मई १८५७ ई० को चार बजे सायंकाल खान बहादुर खाँ एक बहुत बड़े जुलूस के साथ पूरे नगर में घूमे। इस जुलूस में मुबारकशाह खाँ, अहमदशाह तथा खान बहादुर के अन्य सहायक भी सम्मिलित थे।[3] उन्होंने अंग्रेजी राज्य के अन्त

१. 'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी', रुहेलखंड क्षेत्र—बरेली नैरेटिव—पृ० २।

२. वही।

३. (क) वही पृ० २।

(ख) उर्दू में हस्तलिखित एक डायरी में, जो खान बहादुर खाँ के एक सम्बन्धी श्री साबिर अली खाँ के पास बरेली में अब भी है, पृष्ठ ५२ में लिखा है:—

"३१ मई सन् १८५७ ई० ७ शव्वाल १२७३ हिजरी, ३२ जेठ १२६४, वकायां—बगावत पलटन कैम्प व कुश्ता शुदन अंग्रेजाँ व जुलूस नव्वाब खान बहादुर खाँ," ।

होने तथा देहली के बादशाह बहादुर शाह को भारतवर्ष का शासक होने की घोषणा की। सायंकाल फज्लहक, जो नवाबगंज में तहसीलदार थे, आफर-अली थानेदार तथा अन्य सरकारी कर्मचारी वहाँ आये और खान बहादुर खाँ का आधिपत्य स्वीकार किया।[1]

पहली जून १८५७ ई० प्रातःकाल बरेली जेल का सुपरिन्टेन्डेंट हैन्सबरी नौमहला के सैयिदों द्वारा पकड़ा गया। जब वह खान बहादुर खाँ के सामने लाया गया तो उसने कहा कि वह (खान बहादुर) उसके तथा अन्य अंग्रेजों के प्राण लेकर अंग्रेजी राज्य का अन्त नहीं कर सकता। इस पर खान बहादुर ने उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालने का आदेश दिया। मुनीर खाँ नायब कोतवाल नियुक्त हुआ तथा तहसीलदार को यह आदेश दिया गया कि वह छावनी में सैनिकों को आवश्यक वस्तुएँ पहुँचाने का प्रबन्ध करे।[2]

खान बहादुर की बख्त खाँ से भेंट

१ जून १८५७ ई० को दो बजे दिन नगर में दरबार करने का आयोजन किया गया। नगर के प्रतिष्ठित लोगों को वहाँ उपस्थित होने का आदेश दिया गया। खान बहादुर खाँ ने दरबार करने के उपरान्त, मुबारकशाह खाँ, अहमदशाह खाँ, अकबर अली, शोभाराम तथा अन्य प्रतिष्ठित लोगों सहित हाथियों पर चढ़कर एक बड़ी भीड़ के साथ, जिसमें लोग पैदल तथा घोड़ों पर थे, जनरल बख्त खाँ, मुहम्मद शफी तथा क्रान्तिकारी सैनिकों के अन्य नेताओं को बधाई देने हेतु छावनी की ओर प्रस्थान किया।

बख्त खाँ ने खान बहादुर का आदरपूर्वक स्वागत किया तथा उन्हें ११ तोपों की सलामी दी गयी। खान बहादुर खाँ, बख्त खाँ को १,००० रुपये उपहार रूप में देने लगे परन्तु बख्त खाँ ने वह 'नज़र' लेने से इन्कार कर दिया। बाद में अहमदशाह के अनुरोध पर उन्होंने वह 'नज़र' स्वीकार कर ली। कुछ देर बैठने के उपरान्त खान बहादुर, क्रान्तिकारी सैनिक नेताओं के लिए अन्य उपहार बख्त खाँ के पास छोड़कर वहाँ से वापस चल दिये।[3]

१. नैरेटिव आव दि म्यूटिनी, रुहेलखण्ड केन्स, बरेली नैरेटिव, पृ० ३।
२. वही पृ० ३।
३. वही पृ० ३।

३ जून को खान बहादुर, अपने एक सम्बन्धी तथा कुछ सेवकों सहित, बख्त खाँ से दुबारा मिलने के लिए गये। बख्त खाँ ने उनको हर प्रकार से सहायता देने का वचन दिया। उसी दिन रात में शोभाराम भी बख्त खाँ से मिलने गये थे। उन्होंने बख्त खाँ को दुशाले का एक जोड़ा, जिसका मूल्य २,००० रुपये था, उपहार में दिया।[1]

खान बहादुर खाँ का नया शासन—१ जून १८५७ ई० को प्रातःकाल खान बहादुर ने सारे कर्मचारियों को कोतवाली में उपस्थित होने का आदेश दिया। उन्होंने सब सरकारी कर्मचारियों को यह आज्ञा दी कि वे अपने-अपने पुराने पद पर कायम रहें तथा अपने कर्त्तव्यों का भली प्रकार पालन करें; यदि वे इस आज्ञा का उल्लंघन करेंगे तो उनको कठोर दंड दिया जायेगा।[2] अब बरेली में अंग्रेजी शासन का अन्त हो गया तथा नवाब खान बहादुर खाँ रुहेलखण्ड के एक क्रान्तिकारी शासक बन गये और शासन की बागडोर उन्होंने अपने हाथ में ले ली।

उसी दिन छावनी में बख्त खाँ से मिलने के उपरान्त जब खान बहादुर अपने निवास-स्थान पहुँचे तो उन्होंने बरेली नगर तथा जिले में शान्ति स्थापित करने के लिए एक अन्तरंग सभा स्थापित की। इसके सदस्य मदार अली खाँ, मुबारकशाह खाँ तथा करामत खाँ थे। इसका कार्य यह था कि वह नगर तथा जिले में शान्ति स्थापित करने के उपायों पर विचार करे।[3]

विभिन्न पदों पर लोगों की नियुक्तियाँ—बहुत वाद-विवाद के उपरान्त यह निश्चित हुआ कि खान बहादुर के अधीन एक दीवान की नियुक्ति हो जो जिले में पुलिस तथा माल की देखभाल करे। २ जून १८५७ ई० को प्रातःकाल शोभाराम दरबार में उपस्थित हुए। खान बहादुर ने उनको अपने दीवान के पद पर नियुक्त किया। शोभाराम की नियुक्ति में मदारअली खाँ ने बड़ी सहायता की। दीवान के अतिरिक्त अन्य पदों पर भी लोगों की नियुक्तियाँ हुईं। मदारअली खाँ तथा न्याजमुहम्मद खाँ १,००० रुपये मासिक वेतन पर जनरल के पद पर नियुक्त हुए। मूलचन्द ५०० रुपये मासिक वेतन पर नायब दीवान बनाये गये। शोभाराम का पुत्र

---

१. 'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी', रुहेलखण्ड क्षेत्र, बरेली नैरेटिव, पृ० ५।

२. वही पृ० ३।

३. वही पृ० ४।

हीरालाल १,००० रुपये मासिक वेतन पर बख्शी बनाया गया। मदारअली का पुत्र अलीहुसेन खाँ ५०० रुपये मासिक वेतन पर अश्वारोहियों का नायक नियुक्त हुआ। दीनदयाल, जो सड़कों के सुपरिंटेन्डेन्ट थे, २०० रुपये मासिक वेतन पर तोप ढालने की भट्ठी के दारोगा बना दिये गये। सैफुल्लाह खाँ ५०० रुपये मासिक वेतन पर बन्दीगृह के सुपरिंटेन्डेन्ट बनाये गये। इसके अतिरिक्त अन्य छोटे-छोटे पदों पर लोगों की नियुक्तियाँ हुई। नवाब अवध के दरबार के प्रसिद्ध गायक शुजाउद्दौला उस समय बरेली में ही निवास करते थे। वह खान बहादुर खाँ के ऐ० डी० सी० बनाये गये तथा उत्सवों आदि के प्रबन्ध का भार उन्हीं को सौंपा गया।[1]

देहली के बादशाह बहादुरशाह के पास खान बहादुर खाँ का प्रार्थना-पत्र—शुजाउद्दौला के परामर्श से खान बहादुर खाँ ने २ जून १८५७ ई० को एक प्रार्थना-पत्र देहली के बादशाह बहादुरशाह के पास भेजा। बरेली में क्रान्ति प्रारम्भ होने तथा अंग्रेजी सत्ता के अन्त होने, शासन की बागडोर खान बहादुर खाँ के हाथ में आने, संक्षेप में, जो कुछ घटित हो चुका था उसका पूरा विवरण इस प्रार्थना-पत्र में दिया गया। इसमें मुगल बादशाह से यह भी प्रार्थना की गयी कि वह खान बहादुर खाँ को कटिहर के नाजिम (प्रबन्धक) के पद पर नियुक्त करें।[2] २१ जून १८५७ ई० को खान बहादुर को देहली के अन्तिम मुगल बादशाह द्वारा भेजा हुआ फर्मान प्राप्त हुआ। इस फर्मान के अनुसार खान बहादुर खाँ देहली के बादशाह बहादुर शाह के अधीन कटिहर के शासक नियुक्त हुए तथा उनको माल तथा पुलिस के मामलों में पूर्ण अधिकार मिल गया। इस फर्मान की प्रतिलिपियाँ तहसीलों तथा थानों में भेज दी गयीं। बहुत-से लोगों को इस बात पर, कि वह फर्मान सही था और बहादुरशाह द्वारा भेजा गया था, सन्देह था। वे इस बात पर सन्देह करते थे कि २ जून का भेजा हुआ प्रार्थना-पत्र इतने शीघ्र स्वीकार

१. (अ) 'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी'—रुहेलखण्ड क्षेत्र—बरेली नैरेटिव—पृ० ४।

(ब) अपेंडिक्स 'बी', म्यूटिनी बरेली, पृ० ८, ९, १० तथा ११।

२. 'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी'—रुहेलखण्ड क्षेत्र—बरेली नैरेटिव—पृ० ५।

होकर कैसे आ गया। वह इसे असम्भव समझते थे।[1] परन्तु उन लोगों का यह सन्देह सही न था। इस फर्मान की सत्यता के बारे में सन्देह नहीं किया जा सकता। क्रान्तिकारियों का संगठन इतना अच्छा तथा कार्य-कुशल था कि इतने शीघ्र फर्मान का आ जाना कोई असम्भव बात न थी।

बख्त खाँ का देहली को प्रस्थान

खान बहादुर ने, क्रान्तिकारियों के सहायतार्थ जनरल बख्त खाँ[2] के अधीन एक बड़ी सैनिक टुकड़ी देहली भेजी। इस टुकड़ी में सैनिकों की संख्या १६,००० थी। इस टुकड़ी ने ११ जून १८५७ ई० को बरेली से देहली के लिए प्रस्थान किया।[3] इनके साथ ४ रेजीमेंटें पदातियों की, ७०० अश्वारोही, ६ हार्सगन, ३ फील्ड टुकड़ियाँ आदि थीं।[4] यह सेना मुरादाबाद होती हुई गयी थी। मुरादाबाद में क्रान्तिकारियों को इस सेना ने बहुत प्रभावित किया। देहली में जनरल बख्त खाँ तथा बरेली की इस सेना के पहुँचने के समाचार मंगलवार ७ जीकाद तदनुसार २१ जून १८५७ ई० को प्राप्त हुए। बादशाह बहादुरशाह ने उसी दिन मिर्जा मुगल को पत्र लिखा कि आज नदी बहुत चढ़ आयी है और सूचना मिली है कि बरेली की सेना कल आ जाएगी। पुल के प्रबन्धक को दृढ़ आदेश दे दिये गये थे कि वह जितनी भी नावें एकत्र कर सकता हो एकत्र कर ले और इस सेना को नदी के पार उतार दे।[5] ३० जून को बादशाह ने अपने ससुर समसामुद्दौला नवाब अहमद कुली खाँ बहादुर को बरेली की सेना के सेनापति के स्वागतार्थ जाने का आदेश दिया। १ जुलाई को समसामुद्दौला बहादुर जनरल मुहम्मद बख्त खाँ को अपने साथ लाये। बख्त खाँ ने अभिवादन किया और समस्त स्थानों के प्रबन्ध के विषय में निवेदन किया। बादशाह यह सुनकर बहुत

---

१. 'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी'—रुहेलखंड क्षेत्र—बरेली नैरेटिव—पृ० ७

२. सम्भवतः यह सुल्तानपुर (अवध) के मूल निवासी थे, (जीवनलाल—पृ० १४६)।

३. 'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी'—रुहेलखंड क्षेत्र—बरेली नैरेटिव—पृ० ५।

४. संलग्न पत्र ७ संख्या ५ में—'फरदर पेपर्स (नं० ४) रिलेटिव टु दि म्यूटिनी इन दि ईस्ट इंडीज—१८५७'—पृ० २५५।

५. पार्लियामेन्ट्री पेपर्स—ट्रायल आव बहादुरशाह—पृ० ५३—प्रेस लिस्ट ६१ (नं० ३४)।

प्रसन्न हुए तथा बख्त खाँ को ढाल, तलवार और ४,००० रुपये मिठाई खाने के लिए दिये। उन्होंने 'सिपहसालार बहादुर' की उपाधि प्रदान करके सेना का समस्त प्रबन्ध बख्त खाँ को सौंप दिया। सब अफसरों को आदेश दिया गया कि वे बख्त खाँ की आज्ञाओं का पालन करते रहें।[1] बख्त खाँ को प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया।[2]

१ जुलाई १८५७ ई० को मिर्जा मुगल तथा मिर्जा अब्दुल्लाह ने निवेदन किया कि पुल पूर्ण रूप से तैयार हो गया है अतः बरेली एवं अन्य स्थानों से आयी हुई सेनाओं को, जो नदी के उस पार पड़ी हुई हैं, रात्रि में नदी पार करने की अनुमति प्रदान कर दी जाए क्योंकि दिन में अंग्रेज निरन्तर गोले बरसाया करते हैं। यह भी निवेदन किया गया कि उन सेनाओं को अजमेरी द्वार के बाहर ठहरा दिया जाय। बादशाह ने आदेश दिया कि उन्हें तुर्कमान द्वार के बाहर ठहरा दिया जाय।[3] बादशाह को बख्त खाँ से बड़ी आशाएँ थीं। इसमें सन्देह नहीं कि वह बड़े ही वीर सैनिक तथा योग्य प्रबन्धक थे।

शासन-प्रबन्धः—बख्त खाँ के अधीन देहली को सेना भेजने के उपरान्त खान बहादुर ने नगर तथा जिले में शासन-प्रबन्ध तथा शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न किया। उन्होंने एक अन्तरंग सभा बुलवायी जिसके सदस्य शोभाराम दीवान, मदार अलीखाँ, अहमद शाह खाँ तथा मुबारक शाह खाँ थे।[4]

---

१. देहली उर्दू अखबार—उरूजे अहदे सल्तनते इंग्लिशिया, पृ० ३८१—जकाउल्लाह ने जीवनलाल के आधार पर लिखा है, "बख्त खाँ ने भी अपनी बंशावली तैमूर के वंश तक मिलायी। जब बादशाह बहादुरशाह ने उनसे कहा कि तुम बड़े वीर हो तो बख्त खाँ ने कहा, 'आप मुझे तब वीर कहियेगा जब मैं पहाड़ी पर अंग्रेजों का बिल्कुल विनाश कर दूँ।' बादशाह पर उसने कुछ ऐसा जादू किया कि वह उसके कहने में आ गया। उसको अपने पुत्र की उपाधि दी और समस्त सेना तथा नगर पर उसको आधा बादशाह बना दिया।" जीवनलाल—पृ० १३४, १३८।

२. जीवनलाल—पृ० १३४-१३५।

३. पार्लियामेन्ट्री पेपर्स—ट्रायल आव बहादुरशाह—पृ० ९३।

४. 'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी'—रुहेलखण्ड डेम—बरेली नैरेटिव—पृ० ५।

न्याय-समिति—कुछ वाद-विवाद के उपरान्त इस अन्तरंग सभा में यह निश्चित हुआ कि एक समिति बनायी जाय तथा प्रत्येक मामले का निर्णय पहले इसी समिति द्वारा हुआ करे। इस समिति के निम्नांकित सदस्य थे:—करामत खाँ, अकबरअली खाँ, काजी गुलाम हमजा, पंडित ओंकर तेगनाथ, मुजफ्फरहुसेन खाँ, जाफरअली खाँ, जयमलसिंह तथा क़ुत्बअली शाह। अकबरअली खाँ इस समिति के प्रधान थे तथा उनको १,००० रुपये मासिक वेतन मिलता था। माल के सारे मामलों का निर्णय वह ही करते थे। गुलाम हमजा बरेली के काज़ी थे। पंडित ओंकर तेगनाथ प्रधान पंडित नियुक्त किये गये। मुजफ्फर हुसेन खाँ सदर आला नियुक्त हुए। जयमल सिंह समिति में केवल २ माह ही रहे। यह समिति खान बहादुर के पूरे शासनकाल तक चलती रही।[1]

इस समिति को बनाने के उपरान्त खान बहादुर ने जिले में तहसील-दारों तथा थानेदारों की नियुक्तियाँ कीं। उन्होंने सेना में भी बहुत से अफ़सर नियुक्त किये।[2]

क्रान्तिकारी सेना का संगठन

राज्य में शान्ति स्थापित करने तथा अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए सैनिक शक्ति को दृढ़ करना परमावश्यक था। बख्त खाँ के अधीन खान बहादुर देहली को बड़ी संख्या में एक सेना भेज चुके थे। इस कारण उन्होंने अपनी सैनिक शक्ति को बढ़ाने की ओर ध्यान दिया। उन्होंने अपनी सेना को बढ़ाया। अनेकों नये सैनिक अफसर तथा सैनिक भर्ती किये गये। उनकी सेना में अश्वारोहियों की संख्या ४,६१८ थी[3] तथा पदातियों की संख्या २४,३३० थी।[4] उनकी सेना का विवरण निम्नांकित है:—

पदातियों की रेजीमेंटः—उनकी सेना में पदातियों का विभाजन दस्ता, तुमन, ऊबूस, तथा पलटन अथवा रेजीमेंट में था। १० सैनिकों के समूह को

---

१. 'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी', रुहेलखण्ड पत्र, बरेली नैरेटिव, पृ० ५ तथा ६।

२. (अ) वही पृ० ६।

(ब) अपेंडिक्स 'बी' टु दि म्यूटिनी नैरेटिव, बरेली, पृ०—८, ६, १०, ११, १२, १३, १७ तथा १८।

३. अपेंडिक्स 'बी' टु दि म्यूटिनी नैरेटिव, बरेली, पृ० १७।

४. वही पृ० १८।

दस्ता कहते थे। एक तूमन में १०० सैनिक होते थे। ५०० सैनिकों का एक ऊलूस होता था तथा १,००० सैनिकों के समूह को पलटन या रेजीमेंट कहते थे।

प्रत्येक दस्ते में एक जमादार १० रुपये मासिक वेतन पर होता था। एक तूमन में एक तूमनदार २५ रुपये मासिक वेतन पर तथा एक नायब तूमनदार १५ रुपये मासिक वेतन पर होता था। एक पूरी रेजीमेन्ट में २ ऊलूसदार ५०-५० रुपये मासिक वेतन पर तथा एक कोमदान (कर्नल) अथवा कमांडिंग अफसर १०० या २०० रुपये मासिक वेतन पर नियुक्त होते थे। प्रति तूमन में एक वकील ८ रुपये मासिक वेतन पर तथा प्रत्येक रेजीमेंट में एक बख्शी ३० रुपये मासिक वेतन पर नियुक्त होते थे। सैनिक का मासिक वेतन ५ और ८ रुपये के बीच में होता था। वकील का कार्य सैनिकों तथा उनके अफसरों के आवेदन-पत्र लिखना होता था। बख्शी का कार्य सैनिकों की उपस्थिति लेना तथा रेजीमेंट का वेतन बाँटना होता था।[1]

अश्वारोही:—१०० अश्वारोहियों का समूह एक रिसाला कहलाता था। एक रिसाले में एक रिसालदार होता था, जिसको १०० रुपये मासिक वेतन मिलता था। यदि अश्वारोहियों की संख्या कम होती थी तो १ रुपया प्रत्येक अश्वारोही के हिसाब से उसका वेतन कम हो जाता था परन्तु किसी रिसालदार को ३० रुपये मासिक से कम वेतन नहीं मिलता था। १०० अश्वारोहियों के एक पूर्ण रिसाले में एक नायब रिसालदार भी ५० रुपये प्रतिमास वेतन पर नियुक्त किया जा सकता था। १० सवारों पर एक दफादार २८ रुपये मासिक वेतन पर होता था। प्रत्येक रिसाले में एक वकील होता था जो ३० रुपये प्रतिमास पाता था। परन्तु यदि उस रिसाले में अश्वारोहियों की संख्या कम होती थी तो उसे १५ रुपये प्रतिमास मिलता था। अश्वारोहियों का मासिक वेतन १५, २० तथा २५ रुपये के हेर-फेर में होता था।[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि इतनी बड़ी सेना के लिए खान बहादुर को अधिक मात्रा में रुपया व्यय करना होता था। अश्वारोहियों पर प्रतिमास १,०१,७३० रुपये व्यय होते थे तथा पदातियों पर प्रतिमास १,९३,८०१ रुपये व्यय होते थे। इस प्रकार १० महीने में खान बहादुर को अपनी पूरी सेना पर २९,५५,३३० रुपये व्यय करने पड़े।[3]

---

१. अपेंडिक्स 'बी' टु दि म्यूटिनी नैरेटिव, बरेली, पृ० १८।
२. वही—पृ० १३।
३. वही—पृ० १५।

धन की व्यवस्थाः—जब खान बहादुर ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ली तो उनके राज्य की आर्थिक दशा बड़ी शोचनीय थी। कोष लगभग रिक्त हो चुका था।

कर-समितिः—शासन तथा सेना का प्रबन्ध करने के लिए खान बहादुर को अब धन की अत्यन्त आवश्यकता थी। इस कारण जब समिति की बैठक हुई तो नगर पर कर लगाने पर विचार होने लगा। इस कर को नियमवत् बनाने के लिए उन्होंने पंडित ओंकार तेगनाथ, मुफ्ती इनायत अहमद तथा मौलवी अमानत हुसेन से मत लिया। उन लोगों ने इस प्रश्न का भली प्रकार मनन करने के उपरान्त यह उत्तर दिया कि ऐसी परिस्थितियों में शासक प्रजा के धन का दसवाँ भाग ले सकता है। यह उत्तर सुनकर खान बहादुर ने एक समिति खुशीराम की अध्यक्षता में कर लगाने के लिए नियुक्त की। कम्मूमल साहूकार, रामप्रसाद महाजन, रामलाल महाजन, दुर्गाप्रसाद, जो राजा रतनसिंह का कारिन्दा था तथा दुर्गाप्रसाद, जो मथुरादास का गुमाश्ता था, इसके सदस्य थे। इस समिति की बैठक कन्हैयालाल के घर पर हुई। महाजन तथा अन्य लोगों की सम्पत्ति का ब्योरा तैयार कर इस समिति ने एक विवरण भेजा जिसमें १,०७,००० रुपये कर निश्चित कर दिया जो चार बार में अर्थात् जून, जुलाई, अगस्त तथा सितम्बर में चुकाना था। पहले खुशीराम को कर वसूल करने के लिए नियुक्त किया गया तत्पश्चात् उसको हटाकर इमामअली तथा सैफुल्ला खाँ को नियुक्त किया गया। इस प्रकार एकत्र किये हुए रुपये तोप तथा बारूद पर व्यय किये गये[1]।

धन की पुनः कमीः—जुर्माना तथा कर आदि द्वारा एकत्रित किये हुए रुपये सेना आदि के प्रबन्ध में व्यय हो गये। सेना तथा शासन का प्रबन्ध करने के लिए खान बहादुर को धन की पुनः आवश्यकता हुई। वह धन एकत्र करने के उपाय सोचने लगे।

नया सिक्का चलानाः—आर्थिक कमी को पूरा करने के लिए खान बहादुर खाँ ने एक उपाय सोचा। उनके पास लूट आदि से प्राप्त बहुत से आभूषण एकत्रित थे। इन आभूषणों से उनका उद्देश्य नहीं पूरा

---

१. 'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी', रुहेलखण्ड क्षेत्र—बरेली नैरेटिव पृ० ६।

हो सकता था। इस कारण उन्होंने अपनी अन्तरंग सभा बुलवायी। उस सभा के मतानुसार उन्होंने नये सिक्के बनाने का निश्चय किया। बहुत वाद-विवाद के उपरान्त शाह आलम ही के रुपये को बनाने का निश्चय हुआ परन्तु उसकी तिथि बदल दी गयी। रामप्रसाद के घर पर टकसाल बनायी गयी। थोड़े से ही चाँदी के सिक्के बनाये गये। रुपये का मूल्य १६ आने भर था।[1] यह नया रुपया शाह आलम तथा कम्पनी के पुराने फर्रुखाबाद के रुपये ही की तरह का था।[2]

ठाकुरों से सम्बन्धः—खान बहादुर खाँ तथा उनकी अन्तरंग सभा ने यह विचार किया कि रुहेलखण्ड के ठाकुरों को अपनी ओर मिलाकर तथा उनको प्रसन्न रख के शान्ति स्थापित करने में सुविधा हो जायगी और सुविधापूर्वक लगान वसूल किया जा सकेगा। वह दरबार में ठाकुरों की बड़ी प्रशंसा करते थे।[3] वह उनसे मित्रता बढ़ाना चाहते थे, क्योंकि उस समय अंग्रेजों के गुप्तचरों तथा हितैषियों के लिए हिन्दू-मुसलमान में मतभेद उत्पन्न करा देना तथा ठाकुरों को मुसलमानों का विरोधी बना देना कठिन न था। चीफ कमिश्नर अवध ने कैप्टन गोदान को यह आदेश दिया था कि वह बरेली में हिन्दू जनता को मुसलमान क्रान्तिकारियों के विरुद्ध उकसाये। इस कार्य के लिए ५०,००० रुपये व्यय करने की आज्ञा प्रदान की गयी थी। परन्तु अंग्रेजों का यह प्रयत्न सफल न हो सका।[4] खेड़ा के ठाकुर जयमल सिंह तथा सुरनाम सिंह खान बहादुर के मुख्य सहायक थे। २ जून १८५७ ई० को दरबार में जयमल सिंह ने खान बहादुर को 'नज़र' दी थी तथा उनसे झंगारा राजपूतों की एक रेजीमेन्ट बनाने की आज्ञा प्राप्त की थी। इन दो ठाकुरों के प्रभाव से अन्य ठाकुर भी खान बहादुर के सहायक बन गये तथा

---

१. नैरेटिव आव दि म्यूटिनी—रुहेलखंड क्षेत्र—बरेली नैरेटिव, पृ० ११।

२. फॉरेन डिपार्टमेंट—ऐक्स्ट्रैक्ट, एन० डब्लू० पी० नैरेटिव १८५८, नैरेटिव आव ईवेन्ट्स ७ मार्च १८५८ तक—रुहेलखण्ड क्षेत्र।

३. 'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी', रुहेलखण्ड क्षेत्र—बरेली नैरेटिव पृ० ७।

४. जी० एफ० एडमान्स्टन को जार्ज कूपर द्वारा लखनऊ से १ दिसम्बर १८५७ को प्रेषित पत्र—फारेन सीक्रेट कनसल्टेशन्स, संख्या २५, दिनांक २७ अगस्त १८५८। (देखिए परिशिष्ट १५)

मंगरौली में छः तोपें और सिंधवा में चार तोपें क्रान्तिकारियों से छिन गयीं। राव साहब और तात्या टोपे ललितपुर में आकर मिल गये।[1]

नागपुर की ओर—अब तक तात्या टोपे का अनिश्चय का काल समाप्त हो चुका था। इसके पश्चात् जो उन्होंने अपना कार्य-क्रम बनाया वह उनके युद्ध-कौशल, सामरिक नीति में प्रवीणता एवम् राजनैतिक दूर दृष्टि का उत्कृष्ट प्रमाण है। उन्होंने निश्चय किया कि नर्बदा पार करके दक्षिण की ओर बढ़ें और नागपुर पर अधिकार करें। और उन्हें पूर्ण विश्वास था कि एक बार वह महाराष्ट्र पहुँच जायँ तो वह समस्त महाराष्ट्र में पेशवा नाना साहब के नाम पर क्रान्ति का मंत्र फूँक सकते हैं।

यह नागपुर का अभियान जितना ही सामरिक नीति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है उतना ही तात्या टोपे की गति तीव्रता और संचालन की दृष्टि से भी। २५ अक्तूबर, १८५८ ई० को कुराई में मिचेल ने उसे रोकने का प्रयत्न किया पर मिचेल असफल रहा।[2] अंग्रेजों के प्रयत्नों को विफल करके तात्या टोपे ने ३१ अक्तूबर को अपनी सेना के मुख्य अंग सहित नर्बदा को सुरीला घाट से, जो होशंगाबाद से ४० मील नर्बदा के चढ़ाव की ओर होशंगाबाद और नरसिंहपुर के मध्य में है, पार किया[3] और तेजी से नागपुर की ओर बढ़े। नवम्बर के पूर्वार्ध में उन्होंने ताप्ती नदी को पार किया[4] और दक्षिण की ओर चले। और मुलताई, जो होशंगाबाद और नागपुर के मध्य

१. 'दि रिवोल्ट इन सेंट्रल इन्डिया', पृ० २११।

२. ऐब्स्ट्रैक्ट एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स, फारेन डिपार्टमेंट, १८५८। रिपोर्ट फार दि वीक एंडिंग २३ अक्तूबर १८५८।

३. वही—रिपोर्ट फार दि वीक एंडिंग ६ नवम्बर १८५८ और म्यूटिनी रिकार्ड्स (लखनऊ सचिवालय) ओरिजिनल टेलीग्राम्स सेंट बाई मि० ई० ए० रीड, १८५८, १४ अक्तूबर १८५८ का तार।

४. म्यूटिनी रिकार्ड्स (लखनऊ सचिवालय) आथेंटिकेटेड कापीज आव टेलीग्राम्स सेंट बाई मि० ई० ए० रीड, मार्च १८५८ से अप्रैल १८५९ : जी० एफ० एडमांस्टन द्वारा २० नवम्बर १८५८ का भेजा हुआ तार।

उनका आधिपत्य स्वीकार किया और उपहार दिये। जयमल सिंह को अपनी सेवाओं के उपलक्ष में कलक्टर की उपाधि खान बहादुर द्वारा प्रदान की गयी और उनको १,००० रुपये मासिक वेतन पर एक कर्मचारी नियुक्त कर दिया गया।[1] ठाकुरों को मिलाने में शोभाराम ने भी पूर्ण प्रयत्न किया। इन्होंने हिन्दू ध्वजा के नीचे ठाकुरों को स्वतंत्रता-संग्राम में मुसलमानों का हाथ बटाने के लिए निमंत्रित किया।[2]

कुछ ठाकुरों ने खान बहादुर का आधिपत्य नहीं स्वीकार किया। वे अपने को स्वतन्त्र शासक घोषित करना चाहते थे। बदायूँ में बक्शीना स्थान के ठाकुर हरलाल ने भी अपने को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। खान बहादुर ने देखा कि यदि हरलाल को न दबाया जायगा तो अन्य ठाकुर भी उसका अनुसरण करेंगे। इससे हिंदुओं तथा मुसलमानों में द्वेष भावना उत्पन्न हो जावेगी जो स्वतंत्रता-संग्राम में घातक सिद्ध होगी। इस कारण हिन्दू मुस्लिम ऐक्य को दृढ़ बनाने के लिए खान बहादुर ने हरलाल को दबाना ही उचित समझा। उन्होंने इस हेतु हरलाल के विरुद्ध एक सेना भेजी। अन्त में जयमल सिंह भेजे गये। जयमल के प्रयत्न से हरलाल ने खान बहादुर का आधिपत्य स्वीकार कर लिया।[3] अक्तूबर १८५७ में उन ठाकुरों ने, जो स्वतन्त्र शासक बनना चाहते थे, खान बहादुर के प्रति वफादार रहने की शपथ ली।[4]

१. 'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी'—रुहेलखंड क्षेत्र—बरेली नैरेटिव, पृष्ठ ७ तथा ८।

२. शोभाराम के मुकदमे के निर्णय से—फारेन पोलिटिकल कनसल्टेशन्स—१५ जुलाई १८५९, नं० ४१३ जी० क्यू।

३. वही —पृ० ८।

४. वही —पृ० ११।

टिप्पणी : सर सैयिद अहमद खाँ द्वारा रचित 'सरकशीये जिला बिजनौर' के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अंग्रेजों ने, हिन्दू मुसलमान में विरोध उत्पन्न कराना तथा हर प्रकार से स्वतन्त्रता-संग्राम को हानि पहुँचाना, अपना ध्येय-सा बना लिया था। महमूद खाँ के विरुद्ध चौधरियों को खड़ा किया गया और अंग्रेज शासन के हितैषी अधिकारी उदाहरणार्थ सर सैयिद अहमद इत्यादि, इस मतभेद की ज्वाला भड़काने में विशेष प्रयत्न करते थे।

इसी प्रकार जयमल सिंह को, जो खान बहादुर खाँ का सहायक तथा विश्वास-पात्र था, अंग्रेजों ने यह प्रलोभन दिया था कि यदि वह खान

हिन्दू-मुस्लिम एकता—खान बहादुर खाँ का विचार था कि स्वतंत्रता-संग्राम तो हिन्दुओं तथा मुसलमानों के कंधे से कंधा भिड़ाकर ही अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करने से सफल हो सकता है। अतः यदि हिन्दू तथा मुसलमान आपस ही में लड़ेंगे तो यह स्वतंत्रता के लिए घातक सिद्ध होगा तथा अंग्रेजों का अन्त न हो सकेगा। इस कारण वह हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के लिए सदैव प्रयत्न किया करते थे। जब नौमहला के सैयिद लोगों ने, जो खान बहादुर के शासन में हिन्दुओं का हाथ न देखना चाहते थे, शोभाराम पर अंग्रेजों के छिपाने का झूठा आरोप लगाया तथा उनके घर को लूट लिया,[1] तो खान बहादुर अत्यन्त दुखी हुए। उनके लिए हिन्दू तथा मुसलमान समान थे और वे दोनों में भेद नहीं समझते थे। उन्होंने शोभाराम से क्षमा-याचना की तथा मुसलमानों के इस कार्य पर शोक प्रकट किया।[2] शोभाराम को खान बहादुर बहुत मानते थे। खान बहादुर के समस्त आदेशों पर वह प्रति हस्ताक्षर करता था तथा उनकी मुहर का प्रयोग करता था।[3]

सन् १८५८ ई० के प्रारम्भिक माह में हिन्दू-मुसलमान ऐक्य पुनः स्थापित करने के लिए खान बहादुर खाँ ने अनेक प्रयत्न किये। मौलवी खाँ तथा अन्य अश्वारोहियों द्वारा गोसाईं की हत्या हो जाने के उपरान्त खान बहादुर खाँ ने हिन्दुओं को एकत्रित करके पारस्परिक मनोमालिन्य दूर किया। तत्पश्चात् यह निश्चय हुआ कि हिन्दू अपनी पताका के नीचे तथा मुसलमान अपने मुहम्मदी झण्डे के नीचे एकत्रित हों, तथा स्वतंत्रता-संग्राम

बहादुर खाँ को पकड़वा देगा तो उसे अर्थात् जयमल सिंह को १८५७ की क्रान्ति में किये गये समस्त अपराधों से मुक्त कर दिया जावेगा।

(देखिए—फारेन डिपार्टमेंट—आगरा नैरेटिव १८५३ से १८६० तक, गवर्नर जनरल के नैरेटिव की प्रोसीडिंग्स—१८५८ के प्रथम पक्ष तक, रुहेलखंड क्षेत्र—पैरा २३)

१. शोभाराम के मुकदमे के निर्णय से—फारेन पोलिटिकल कनसल्टेशन्स, १५ जुलाई १८५६, नं० ४१३ डी० क्यू।

२. 'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी'—रुहेलखण्ड क्षेत्र—बरेली नैरेटिव—पृ० ६।

३. शोभाराम के मुकदमे के निर्णय से—फारेन पोलिटिकल कनसल्टेशन्स, १५ जुलाई १८५६, नं० ४१३ डी० क्यू।

में योग दें। फलस्वरूप २० जनवरी १८५८ ई० को शोभाराम अपने साथ गोपालचन्द, नेवलचन्द, ईश्वरनन्द, गणेशराय, हरसुखराय, भीमसेन, टीकाराम कायस्थ तथा ब्राह्मणों को लेकर हाथियों पर चढ़ करके, अपनी पताका लहराते हुए रामगंगा के तट पर पहुँचे। वहाँ सबने मुसलमानों के साथ मिलकर अंग्रेजों का विरोध करने का निश्चय किया। उसी दिन खान बहादुर खाँ की आज्ञा से नगर के एक उद्यान में मुहम्मदी झण्डा फहराया गया।[1] इसी समय के लगभग बरेली कालेज के फारसी के अध्यापक सैयिद कुतुबशाह ने खान बहादुर खाँ के आदेशानुसार "धर्म की विजय" शीर्षक वाला एक प्रपत्र लिथो प्रेस में छापकर रुहेलखंड में बँटवा दिया। इसमें हिन्दुओं तथा मुसलमानों को एक साथ स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लेने के लिए आह्वान किया गया था।[2]

१. 'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी'—रुहेलखण्ड क्षेत्र—बरेली नैरेटिव—पृ० १४।

२. आगरा नैरेटिव—फारेन डिपार्टमेन्ट—१८५३ से १८६० तक—रुहेलखंड क्षेत्र की प्रोसीडिंग्स—२२ फरवरी १८५८ संख्या ३७ तथा ३८ संग्रह संख्या ६—सन् १८५८ ई० के प्रथम पक्ष का गवर्नर जनरल द्वारा प्रेषित नैरेटिव—पैरा १८ में खान बहादुर खाँ द्वारा छपवाये हुए घोषणा-पत्र की चर्चा हुई है। परन्तु यह उपर्युक्त संग्रह में १४ फरवरी १८५८ के गवर्नर जनरल द्वारा प्रेषित नैरेटिव में झाँसी की रानी द्वारा आर० एन० सी० हैमिल्टन को प्रेषित प्रपत्र के रूप में संलग्न है। इसी प्रपत्र की फारसी भाषा में सादिकुल अखबार ७ अगस्त १८५७ में प्रकाशित अनुवाद की पुनः अंग्रेजी अनूदित प्रतिलिपि बहादुरशाह के मुकदमे में २४ फरवरी १८५८ ई० की १७वें दिन की कार्यवाही में, उनके विरुद्ध अभियोग की पुष्टि में सम्बद्ध है। इस अनुवाद में, तथा हैमिल्टन को झाँसी की रानी द्वारा भेजे गये प्रपत्र के अनुवाद में, जो वास्तविक प्रति का अनुवाद प्रतीत होता है, कुछ अंशों में भिन्नता है। बहादुरशाह द्वारा प्रकाशित अगस्त माह दिनांक २५ का महत्त्वपूर्ण तथा ओजस्वी घोषणा-पत्र कलकत्ता समाचारपत्रों से प्राप्त हो गया है। वह ट्रायल में न देकर, अंग्रेजों ने सन् १८५८ ई० के प्रथम माह में बहादुरी प्रेस से प्रकाशित झाँसी की रानी के प्रपत्र के फारसी अनुवाद का अंग्रेजी अनुवाद, बहादुरशाह के विरुद्ध प्रेषित कर दिया था। आगरा नैरेटिव से यह ज्ञात होता है कि खान बहादुर खाँ ने रुहेलखंड में इसका

बहादुर शाह को नजर भेजना

१८ अगस्त १८५७ ई० को खान बहादुर ने रजाउद्दौला के परामर्श से देहली के मुगल बादशाह बहादुरशाह को उपहार भेजना निश्चय किया। उन्हें आशा थी कि बादशाह बहादुरशाह उन्हें खिलअत प्रदान करेंगे। रजाउद्दौला ने उपहार को सुसज्जित कर दिया तथा उसके साथ एक निवेदन-पत्र भी रख दिया। उपहार में एक हाथी स्वर्ण हौदा तथा झूल से सुसज्जित, एक घोड़ा, जिस पर माणिक्य जड़ित साज था, एक कुरान शरीफ, एक ताज तथा १०१ सोने की मुहरें थीं। कुरान शरीफ तथा ताज, रजाउद्दौला ने स्वयं दिया था। ये उसे अवध के नवाब से मिले थे। अहमद शाह खाँ, अखीयार खाँ तथा अकबर खाँ के द्वारा उपहार भेजा गया। उनके साथ ५० अश्वारोही तथा २०० पदाति कर दिये गये। अहमदशाह खाँ रामपुर से ही वापस चले आये तथा शेष लोग देहली चले गये।[1]

देहली के पतन का बरेली पर प्रभाव

जब देहली के पतन का समाचार बरेली पहुँचा तो वहाँ की जनता में खलबली मच गयी तथा बरेली के क्रान्तिकारी अपना धैर्य खोने लगे। क्रान्तिकारी सैनिक हतोत्साहित होने लगे। देहली के क्रान्तिकारी शरणार्थी बरेली में आने लगे। वे लोग देहली के पतन की पुष्टि करते थे। यह देख कर खान बहादुर खाँ ने विचार किया कि यदि जनता को यह विश्वास न दिलाया जायगा कि देहली के पतन का समाचार असत्य है, तो जनता अपना धैर्य खो बैठेगी और उस दशा में अंग्रेजों से मुकाबला करना कठिन हो जायगा। जनता को यह विश्वास दिलाने के लिए खान बहादुर ने हर प्रकार से प्रयत्न किया। उन्होंने देहली तथा लखनऊ में क्रान्तिकारियों की

प्रचार किया तथा झाँसी की रानी ने हैमिल्टन को १४ फरवरी से पहले उसकी एक प्रति भेजी थी। यह वही समय था जब ह्यू रोज़ अपनी सेना के साथ झाँसी की ओर बढ़ रहा था, और झाँसी की रानी ने मध्यभारत के राजाओं से मिलकर उसका विरोध किया था।

(देखिए "धर्म विजय" प्रपत्र इसी पुस्तक में झाँसी की रानी की जीवनी के प्रसंग में)।

१. 'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी'—रुहेलखंड क्षेत्र—बरेली नैरेटिव—पृ० १०

विजय का समाचार, समाचार-पत्रों में प्रकाशित करवा दिया। इन समाचारों को पढ़ कर जनता को कुछ धैर्य प्राप्त हुआ।[1]

खान बहादुर के लिए देहली से खिलअत पहुँचना

इसी बीच खान बहादुर के लिए बहादुर शाह द्वारा भेजी 'खिलअत' बरेली पहुँची। खान बहादुर को जनता में धैर्य बँधाने का यह सुन्दर अवसर प्राप्त हो गया। १ अक्तूबर १८५७ ई० को बरेली में यह सूचना प्रसारित की गयी कि खान बहादुर के लिए देहली से बादशाह बहादुरशाह ने 'खिलअत' भेजी है जो मार्ग में है तथा आँवला तक पहुँच चुकी है। चार साँडनी सवार तथा कुछ अश्वारोही, आँवला भेजे गये। २ अक्तूबर को प्रातःकाल खान बहादुर जुलूस के साथ सुसज्जित होकर दीपचन्द के उद्यान की ओर चले जहाँ 'खिलअत' आयी थी। खान बहादुर ने खिलअत धारण की, उनको २१ तोपों की सलामी दी गयी तथा उपस्थितगण ने उनको उपहार भेंट किये। शोभाराम को भी एक खिलअत दी गयी।[2] इस खिलअत के आने से जनता को पूर्ण विश्वास हो गया कि देहली के पतन का समाचार असत्य था। जनता से कहा गया कि यदि देहली का पतन हो गया होता तो बहादुरशाह यह खिलअत कैसे भेजते।

जनता में उत्साह पैदा करने के लिए खान बहादुर ने और भी प्रयत्न किये। २१ अक्तूबर को मालागढ़ के क्रान्तिकारी नेता वलीदाद खाँ बरेली पहुँचे। खान बहादुर ने उनका स्वागत किया तथा उनको ४०० रुपये उपहार स्वरूप भेजे। दोनों ने जनता में उत्साह पैदा करने के लिए यह विचार किया कि एक मुहम्मदी ध्वजा के नीचे मुसलमानों को आमंत्रित किया जाय कि वे अंग्रेजों से युद्ध करने में खान बहादुर का साथ दें। अतः मुहम्मदी झंडा नगर भर में घुमाकर आदर सत्कार के साथ हुसेनी बाग में गाड़ा गया तथा उपस्थित सज्जनों को भोजन दिया गया।[3]

खान बहादुर का नैनीताल पर आक्रमण

खान बहादुर तथा उनके परामर्शदाताओं ने विचार किया कि जब तक

---

१. 'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी'—रुहेलखण्ड क्षेत्र—बरेली नैरेटिव—पृ० १२.

२. वही —पृ० १२।

३. वही —पृ० १२।

अंग्रेज नैनीताल में रहेंगे, रुहेलखंड में उनका आधिपत्य पूर्णरूप से नहीं स्थापित हो सकता तथा हर समय अंग्रेज उनके विरुद्ध लोगों को उकसाते रहेंगे। इस कारण उन्होंने नैनीताल पर आक्रमण करना निश्चय किया।[1] उन्होंने कई बार वहाँ आक्रमण करने के लिए सेनाएँ भेजीं परन्तु पूर्णरूप से सफल न हो सके।

नैनीताल पर प्रथम आक्रमण

जुलाई १८५७ में उन्होंने एक सेना अपने पौत्र बन्नेमीर की अध्यक्षता में नैनीताल पर आक्रमण करने के लिए भेजी। वह स्वयं बहेड़ी तक गये। बन्नेमीर भी बहेड़ी में चक्कर लगाता रहा। अक्तूबर में अली खाँ मेवाती तथा हाफिज कल्लन खाँ, एक रेजीमेंट और कुछ अश्वारोहियों सहित, बन्नेमीर की सहायता के लिए भेजे गये। अली खाँ ने बन्नेमीर को बरेली वापस कर दिया तथा स्वयं हलद्वानी और काठगोदाम गये। नैनीताल से अंग्रेजों द्वारा भेजी हुई एक सैनिक टुकड़ी से उनका मुकाबला हुआ। अन्त में उनकी पराजय हुई। जब खान बहादुर को ज्ञात हुआ कि बरेली से नैनीताल पर आक्रमण करने की सूचना भेजी जा चुकी है तो उन्होंने यह आदेश दिया कि जो व्यक्ति अंग्रेजी लिख या पढ़ लेता हो उसको बन्द कर दिया जाय। अतः ऐसे व्यक्ति पकड़ बन्द कर दिये गये। वे दो दिन बन्द रहने के उपरान्त मुक्त कर दिये गये। बंगालियों को शीघ्र ही नगर छोड़ देने का आदेश हुआ।[2]

नैनीताल पर द्वितीय आक्रमण

खान बहादुर ने नैनीताल पर पुनः आक्रमण करने के लिए गुलाम हैदर खाँ को, तीन तोपों तथा बहुत बड़ी अश्वारोहियों तथा पदातियों की टुकड़ी के साथ बहेड़ी भेजा। वहाँ इसकी भेंट फ़ज़्लहक से हुई। वह पीलीभीत से बड़ी पलटन लाये थे। बहेड़ी में कुछ दिन रहने के उपरान्त उन्होंने बूँदी को प्रस्थान किया तथा बूँदी पहुँच गये। बूँदी से क्रान्तिकारी सेना ने रात्रि में नैनीताल की ओर आक्रमण हेतु प्रस्थान किया। कुछ दूर जाने के बाद उन पर अंग्रेजी सेना ने नैनीताल की ओर से गोलियों की वर्षा की;

---

१. 'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी'—रुहेलखण्ड क्षेत्र—बरेली नैरेटिव—पृ० १०।

२. वही—पृ० १०।

इस कारण क्रान्तिकारी सेना को लौटना पड़ा। फज्लहक बरेली वापस चले गये तथा अलीखाँ बहेड़ी में रुक गये।[1]

नैनीताल पर तीसरा आक्रमण

मुहम्मद अली की अध्यक्षता में खान बहादुर ने नैनीताल पर आक्रमण करने के लिए तीसरी बार सेना भेजी। यह सेना पहले बूँदी गयी फिर चुरपुड़ा पहुँची। वहीं अंग्रेजी सेना से इसकी टक्कर हुई। ३ फरवरी १८५८ ई० को खान बहादुर की सेना पराजित हुई तथा मुहम्मद अली ने वीरगति पाई। इस पराजय से खान बहादुर बहुत क्रोधित हुए तथा भागे हुए सैनिकों को उन्होंने फटकारा। इसके बाद उन्होंने नैनीताल पर आक्रमण करने का विचार छोड़ दिया। अब वह नैनीताल की ओर से बरेली पर अंग्रेजों के आक्रमण को रोकने का प्रयत्न करने लगे। इसी ध्येय से उन्होंने गौस मुहम्मद को कुछ आदमियों तथा तोपों के साथ महमूद अली खाँ की सहायता के लिए बहेड़ी भेजा। गौस मुहम्मद तथा महमूद अली खाँ अपनी सेना के साथ मई १८५८ ई० तक बहेड़ी में रहे। मई १८५८ ई० में जब रुहेलखण्ड अंग्रेजों के पूर्ण अधिकार में आ गया तो गौस मुहम्मद आदि बहेड़ी से अवध की ओर चले गये। खान बहादुर खाँ ने जब गौस मुहम्मद को बहेड़ी भेजा था, उसी समय उन्होंने सुना कि अल्मोड़ा की ओर से अंग्रेज आक्रमण करने वाले हैं अतः उन्होंने फज्लहक को कुछ तोपें तथा पदातियों और अश्वारोहियों के साथ बरमदेव भेजा।[2]

फीरोजशाह बरेली में

नैनीताल पर खान बहादुर खाँ के दूसरे आक्रमण के उपरान्त मुगल शासक बहादुर शाह के पुत्र फीरोजशाह बरेली में प्रथम बार आये। उनके साथ थोड़े से सैनिक थे। यहाँ तीन दिन रुकने के उपरान्त वे लखनऊ चले गये।[3] लखनऊ के पतन के पश्चात् फीरोजशाह पुनः बरेली लौट आये। इस समय उनके साथ लगभग १००० सैनिक थे। बरेली में कुछ दिन रहने के उपरान्त वह सम्भल होते हुए मुरादाबाद चले गये। यहाँ उन्होंने नवाब

१. 'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी'—रुहेलखण्ड क्षेत्र—बरेली नैरेटिव—पृ० १३।

२. वही—पृ० १५।

३. वही—पृ० १३।

रामपुर की सेना पर आक्रमण किया तथा मुरादाबाद पर अपना अधिकार कर लिया जो केवल एक ही दिन रह पाया। दूसरे दिन रामपुर से भेजी हुई एक टुकड़ी ने उन पर आक्रमण किया अतः वह बरेली फिर चले गये। बरेली से वह खान बहादुर खाँ के साथ अवध पहुँचे।[1]

फीरोजशाह का घोषणा-पत्र

जिस समय फीरोजशाह बरेली में थे उस समय बरेली में नाना साहब तथा अन्य क्रान्तिकारी नेता भी उपस्थित थे। फीरोजशाह के १७ फरवरी १८५८ के महत्त्वपूर्ण घोषणा-पत्र की, जिसको खान बहादुर खाँ ने बहादुरी प्रेस में सैयिद कुतुब शाह द्वारा जो बरेली गवर्नमेंट कालेज में अध्यापक थे, प्रकाशित करवाया था, प्रतिलिपियाँ रुहेलखण्ड भर में बँटवा दी गयीं।[2] इस घोषणा-पत्र में खुले खुले शब्दों में कहा गया था कि अवध के क्रान्तिकारी सैनिक नवाब अवध के अधीन रहें, रुहेलखण्ड के नवाब खान बहादुर खाँ के नेतृत्व में रहें तथा शेष फीरोजशाह के साथ हो जाएँ।[3]

सिक्खों से सहायता की प्रार्थना

खान बहादुर खाँ सिक्खों को भी अपनी ओर मिलाकर अपनी शक्ति को दृढ़ करना चाहते थे। इस कारण ६ फरवरी १८५८ ई० को उन्होंने तथा उनकी अंतरंग सभा ने पटियाला के राजा तथा कश्मीर के महाराजा गुलाबसिंह के पास दूत भेजना निश्चय किया। इन राजाओं से अंग्रेजों के विरुद्ध सहायता लेने का विचार था। ७ फरवरी को एक महंत जी अमूल्य उपहारों के साथ इन राजाओं के पास बरेली से भेजे गये।

लखनऊ से अंग्रेजों की पराजय का समाचार

जनवरी १८५८ ई० के अंत में एक सवार बरेली पहुँचा। वह लखनऊ से एक पत्र लाया था जिसमें अंग्रेजों की सेना, जो प्रधान सेनापति की

१. 'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी'—रुहेलखण्ड क्षेत्र—बरेली नैरेटिव, पृ० १६।

२. 'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज', पार्लियामेंट्री प्रपत्रों का संग्रह, संख्या ११, पृ० १३२—संलग्न पत्र संख्या २, इलाहाबाद दिनांक ७ अप्रैल १८५८।

३. 'ऐब्सट्रैक्ट, एन० डब्लू० पी० नैरेटिव—फारेन, १८५८', साप्ताहिक विवरण २८ मार्च १८५८ ई०, रुहेलखण्ड क्षेत्र।

अध्यक्षता में थी, की पराजय का समाचार था। यह सूचना बरेली नगर में फैला दी गयी।[1]

नाना साहब का पत्र

कुछ दिन उपरान्त खान बहादुर खाँ के पास नाना साहब का एक पत्र आया जिसमें उन्होंने लिखा था कि वे सपरिवार बरेली पहुँच रहे हैं अतः उनके ठहरने का प्रबन्ध कर दिया जावे।[2]

नाना साहब रुहेलखण्ड में

नाना साहब ने फरवरी १८५८ ई० में गंगा पार करके बिल्हौर व शिवराजपुर छोड़कर, शिवली तथा सिकन्दरा की ओर प्रस्थान किया।[3] क्रान्तिकारी सेना ने रुहेलखंड तथा गंगा के ऊपरी भाग की सुरक्षा करने के उद्देश्य से फतेहगढ़ से कानपुर तक गंगा नदी के सभी घाटों पर नाकाबंदी की थी। १६ फरवरी १८५८ ई० को नाना साहब रुहेलखंड की ओर जाते हुए बताये गये।[4] ११ मार्च १८५८ ई० को वह लगभग ४०० सैनिकों—पदाति अथवा अश्वारोही—सहित शाहजहाँपुर पहुँच गये। यहाँ अन्य क्रान्तिकारी दल भी उनके साथ मिल गये। १६ मार्च को नाना साहब ने अपने दलबल सहित राम गंगा को पार किया तथा अलीगंज में डेरा डाला।[5] २५ मार्च को वह सपरिवार बरेली पहुँचे। उनके आने की सूचना खान बहादुर को पहले ही मिल गयी थी अतः बरेली गवर्नमेंट कालेज के भवन में उनके रहने का प्रबन्ध कर दिया गया था। खान बहादुर ने उनका भली भाँति स्वागत किया। बरेली में नाना साहब अप्रैल मास के अन्त तक रहे थे।[6] यह कहा जाता था कि खान बहादुर खाँ ने क्रान्तिकारी सेनाओं

---

१. 'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी'—रुहेलखण्ड क्षेत्र—बरेली नैरेटिव—पृ० १५।

२. वही पृ० १५।

३. 'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज'—संलग्न पत्र ६, संख्या ६ में—कानपुर से एक जज द्वारा भेजा तार, दिनांक ११ फरवरी १८५८ ई०।

४. वही संलग्न पत्र २६, संख्या ६ में।

५. वही संलग्न पत्र ४३, संख्या ६ में।

६. 'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी'—रुहेलखण्ड क्षेत्र—बरेली नैरेटिव, पृ० १५।

का प्रधान नायकत्व भी नाना साहब को देने की इच्छा प्रकट की। नाना साहब ने यह तो स्वीकार न किया परन्तु खान बहादुर को अपना पूर्ण सहयोग दिया। यहाँ नाना साहब ने गौ-वध रोकने का प्रयत्न किया तथा हिन्दुओं से कहा कि अंग्रेजों के विरुद्ध, मुसलमानों का हाथ बटाना तुम्हारा कर्त्तव्य है।[1] नाना साहब के बरेली पहुँचते ही क्रान्ति के अग्रगण्य नेता वहाँ जमा हुए। वलीदाद खाँ के पुत्र इस्माइल खाँ को फतेहगढ़ जीतने का कार्य सौंपा गया और उनके साथ फीरोजशाह शाहजादे ने निचले दोआब में युद्ध का भार सँभाला। फीरोजशाह का १७ फरवरी १८५८ का महत्त्वपूर्ण घोषणा-पत्र भी इसी समय रुहेलखण्ड में वितरित कराया गया था।[2] कहा जाता है कि नाना साहब अपना परिवार छोड़ कर मोहसिन अली की सहायता के लिए अलीगंज गये।[3] जब अंग्रेजों का प्रधान सेनापति जलालाबाद पहुँचा तो नाना साहब एक टुकड़ी का नेतृत्व करके उसका विरोध करने वहाँ गये। वहाँ से वह बीसलपुर गये, फिर अवध चले गये।

नवाब रामपुर से सम्बन्ध

सन् १८५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम में रामपुर के नवाब भी अन्य राजाओं की भाँति दोहरी चाल चलते थे। उस समय नवाब यूसुफअली खाँ रामपुर के नवाब थे। प्रत्यक्ष में तो वह अंग्रेजों के परम मित्र थे। परन्तु परोक्ष रूप से वह क्रान्तिकारियों से मिले रहते थे तथा उनकी हर प्रकार से सहायता करते थे। एलेक्जेंडर ने अपने ८ दिसम्बर १८५७ ई० के एक पत्र में, जो उसने नैनीताल से लिखा था, रामपुर की सेना के बारे में, जो अंग्रेजों की ओर से क्रान्तिकारियों से लड़ रही थी, संदेह प्रकट किया है। रामपुर के नवाब ने भी उसे लिखा था कि वह (नवाब) अपने सैनिकों को क्रान्तिकारियों के विरुद्ध लड़ने की आज्ञा दे देते परन्तु इससे खान बहादुर खाँ का प्रत्यक्ष विरोध

१. 'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी'—रुहेलखण्ड क्षेत्र—बरेली नैरेटिव, पृ० १५।

२. एेब्सट्रैक्ट एन० डब्लु० पी० नैरेटिव, फारेन—१८५८—साप्ताहिक विवरण २८ मार्च १८५८ ई० रुहेलखण्ड क्षेत्र।

३. एेब्सट्रैक्ट एन० डब्लु० पी० नैरेटिव फारेन—१८५८—साप्ताहिक विवरण, २० मार्च १८५८ ई० रुहेलखंड क्षेत्र।

में है, तक पहुँच गये[१]। यहाँ उन्होंने बड़े ठाट-बाट से घोषणा की कि वह पेशवा-सरकार की सेना के अग्रिम दूत हैं जो मध्यभारत की अनेक विजयों के उपरान्त, दक्षिण की विजय के लिये आ रही है।[२]

तात्या के नर्बदा पार करने से अंग्रेजों में बड़ी सनसनी फैल गयी। बंबई और मद्रास दोनों की सरकारें परेशान हो उठीं। पर तात्या साधनों की कमी के कारण इसका लाभ न उठा सके और उन्होंने नागपुर में अंग्रेजों को एकत्र देखकर उधर जाना व्यर्थ समझा और पश्चिम की ओर ताप्ती की घाटी में चले गये कि कदाचित् मेलघाट के जंगलों और ऊबड़-खाबड़ भूमि में दक्षिण का कोई मार्ग निकल आये। पर उनका अभिप्राय उस ओर भी भाँप लिया गया और उधर की ओर भी कोई आशा न शेष रही।[३] तात्या टोपे को एक और दुर्भाग्य ने इसी काल आ घेरा। बाँदा के नवाब ने १९ नवम्बर को जनरल मिचेल के कैंप में संध्या को सम्राज्ञी के क्षमापत्र के अनुसार आत्मसमर्पण कर दिया।[४]

बड़ौदा की ओर—परन्तु निराश होना तो जैसे तात्या टोपे ने सीखा ही न था। बिना हतोत्साहित हुए उनके उपजाऊ मस्तिष्क ने एक और कार्यक्रम को जन्म दे डाला। उन्होंने दक्षिण की आशा छोड़कर उत्तर-पश्चिम की ओर होल्कर के राज्य से होकर बड़ौदा, जहाँ यूरोपियन सेना की एक ही कम्पनी थी, पर आक्रमण करने का निश्चय किया। १९ नवम्बर, १८५८ ई० को वह खारगाँव आ गये जहाँ पर होल्कर की सेना की एक टुकड़ी कुछ अश्वारोहियों, पदातियों और दो तोपों सहित आ मिली।[५] मेजर सदरलैंड ने उनका पीछा जारी रक्खा और २५ नवम्बर, १८५८ ई० को उन्हें राजपुर में परास्त करके उनकी तोपें छीन लीं।[६] जनरल मिचेल तथा ब्रिगेडियर पार्क के प्रबंध और मेजर सदरलैंड के असीम प्रयत्नों के बावजूद भी तात्या २६ नवम्बर १८५८ ई० को नर्बदा पार कर गये।[७]

१. २. ३. 'दि रिवोल्ट इन सेंट्रल इंडिया', पृ० २१८।

४. म्यूटिनी रिकार्ड्स (लखनऊ सचिवालय) आथेंटिकेटेड कापीज आव टेलीग्राम्स सेंट बाई मि० ई० ए० रीड, २४ मार्च १८५८ से अप्रैल १८५९ तक। जी० एफ० एडमांस्टन का २७ नवम्बर १८५८ का तार।

५. तात्या का कथन : 'दि रिवोल्ट इन सेंट्रल इंडिया', पृ० २०५।

६. 'दि रिवोल्ट इन सेन्ट्रल इन्डिया', पृ० २१९।

७. वही—पृ० २२०।

प्रकट होता। खान बहादुर खाँ की सेना उनकी (नवाब) सेना से कहीं शक्तिशाली थी। इसी का बहाना लेकर वह रामपुर पर आक्रमण कर देते। संक्षेप में नवाब रामपुर ने लिखा कि बिना अंग्रेजी सेना की सहायता के वह खान बहादुर के विरुद्ध अपनी सेना नहीं भेज सकते।[1] इससे पता चलता है कि नवाब रामपुर गुप्त रूप से क्रान्तिकारियों के सहायक थे।

खान बहादुर खाँ सम्पूर्ण रुहेलखण्ड के निःशंक शासक—इससे अंग्रेजों को भय

१८५७ के अन्त तक खान बहादुर खाँ ने सम्पूर्ण रुहेलखंड पर अपना अधिकार जमा लिया था तथा उस क्षेत्र में निःशंक शासन कर रहे थे। वह क्षेत्र सुरक्षित था। अंग्रेज आसानी से उस पर आक्रमण नहीं कर सकते थे। ८ दिसम्बर १८५७ ई० को एलेक्जेंडर ने नैनीताल से एक पत्र में लिखा था कि खान बहादुर खाँ की एक बहुत बड़ी सेना बरेली से हलद्वानी जाने वाली सड़क के मध्य में बुन्दिया नामक स्थान पर तथा उसके आसपास के स्थानों पर अधिकार जमाये है।[2] इस सेना की संख्या का ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सका। कुछ लोग उनकी संख्या ४००० तथा उनके साथ दो तोपें बतलाते थे। कुछ उनका अनुमान ८,००० से १०,००० तक लगाते थे। एलेक्जेंडर का स्वयं का अनुमान था कि खान बहादुर खाँ की इस सेना की संख्या ४,००० या ५,००० थी तथा उनके पास दो तोपें थीं।[3] इस प्रकार रुहेलखंड क्षेत्र में खान बहादुर खाँ अपना अधिकार जमाये थे। इससे अंग्रेजों की शक्ति को भारी धक्का पहुँचा। अंग्रेज रुहेलखंड को अपने अधिकार में लाने के विषय पर विचार करने लगे।

रुहेलखंड पर आक्रमण के विषय पर कॉलिन तथा कैनिंग में मतभेद

रुहेलखण्ड पर आक्रमण करने के विषय पर कॉलिन तथा कैनिंग में

---

१. 'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज'—संलग्न पत्र ७६ संख्या २ में पृ० ६५ पैरा ६।

२. 'म्यूटिनी इन ईस्ट इन्डीज'—बरेली क्षेत्र, संलग्न पत्र ७६, संख्या २ में, पृ० ६५, पैरा १। एलेक्जेंडर का आफिशियेटिंग सचिव एन० डब्लू० पी० के नाम नैनीताल से ८ दिसम्बर १८५७ का पत्र।

३. 'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज'—बरेली क्षेत्र—संलग्न पत्र ७६ संख्या २ में पृ० ६५ पैरा २, एलेक्जेंडर का आफिशियेटिंग सचिव एन० डब्लू० पी० के नाम नैनीताल से ८ दिसम्बर १८५७ का पत्र।

बड़ा मतभेद था जैसा कि उनके पत्रों से ज्ञात होता है। २० दिसम्बर १८५७ को कैनिंग ने कॉलिन को लिखा कि पहले अवध पर अधिकार करना चाहिए क्योंकि क्रान्तिकारी जितना अवध में संगठित हैं उतना अन्य किसी स्थान पर नहीं। परन्तु कॉलिन, शीतकाल के तीन माह में रुहेलखंड के क्रान्तिकारियों की शक्ति को घटाना चाहता था। उसका विचार था कि बिना रुहेलखंड के क्रान्तिकारियों को दबाये ग्रैंड ट्रंक रोड तथा नैनीताल में अंग्रेजों की सुरक्षा नहीं हो सकती थी।[1]

२४ मार्च १८५८ ई० को कॉलिन ने कैनिंग को लिखा कि रुहेलखंड पर आक्रमण बसंत तक के लिए स्थगित कर दिया जावे तथा इस बीच अवध पर अधिकार कर लिया जावे। परन्तु अब कैनिंग रुहेलखंड पर आक्रमण करने के पक्ष में था। उसका कहना था कि रुहेलखंड के हिन्दू, जो अंग्रेजों के मित्र हैं, खान बहादुर खाँ के शासन से परेशान हैं। वे अंग्रेजी शासन के पक्ष में हैं। इस कारण यदि अंग्रेजों द्वारा उनकी सहायता करने में देर हुई तो सम्भव है कि वे अंग्रेजों के शत्रु बन जावें। कॉलिन, कैनिंग के मत से सहमत न होते हुए भी उसके कहने के अनुसार रुहेलखंड पर आक्रमण करने की योजना बनाने लगा। उसने यह निश्चय किया कि तीन टुकड़ियाँ वालपोल, पेनी तथा जोन्स की अध्यक्षता में दक्षिण-पूर्व, दक्षिण-पश्चिम, तथा उत्तर-पश्चिम से रुहेलखंड पर आक्रमण करें तथा क्रान्तिकारियों को बरेली तक भगा दें जहाँ उनको पूर्ण रूप से परास्त किया जा सके, और चौथी टुकड़ी सीटन की अध्यक्षता में इन तीनों टुकड़ियों की सहायता करे।[2]

अप्रैल १८५८ ई० में रुहेलखंड से तीन बलवान् क्रान्तिकारी दलों ने अंग्रेजों पर आक्रमण करने की धमकी दी। सीटन सतर्क था। वह क्रान्तिकारियों के मध्य दल के विरुद्ध, जो काँकर के निकट के गाँवों में फैला हुआ था, चला तथा उन पर विजय पायी।[3]

७ अप्रैल १८५८ ई० को वालपोल ने लखनऊ से एक शक्तिशाली सेना

---

१. टी० आर० होम्स : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी'—पृ० ४३१।

२. वही—पृ० ५२४।

३. टी० आर० होम्स : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी'—पृ० ५२५।

के साथ रुहेलखंड की ओर प्रस्थान किया। गंगा तथा रामगंगा को पार करके उसने रुहेलखंड में प्रवेश किया।[1]

उधर रुहेलखंड में क्रान्तिकारी सैनिक अपनी पूरी शक्ति से अंग्रेजों का मुकाबला करने को तैयार बैठे थे। २४ अप्रैल १८५८ के तार से, जो डैनियल ने पटियाली से म्योर के पास भेजा था, ज्ञात होता है कि उस समय खान बहादुर खाँ बदायूँ से लौटकर एटा के निकट बहुत से लोगों को एकत्रित कर रहे थे। इससे ग्रैंड ट्रंक रोड सुरक्षित नहीं थी। इस तार में डैनियल ने क्रान्तिकारियों का मुकाबला करने के लिए सैनिक सहायता माँगी थी।[2] सिरसी तथा अलीगंज में भी क्रान्तिकारी दल उपस्थित थे। सिरसी में क्रान्तिकारियों पर वालपोल ने आक्रमण भी किया था।[3]

१७ अप्रैल १८५८ को कॉलिन ने लखनऊ से रुहेलखंड की ओर प्रस्थान किया। वह इनीग्री में वालपोल से २७ अप्रैल की रात्रि को मिल गया। ३० अप्रैल को उसने पेनी की मृत्यु का समाचार सुना। पेनी युद्ध में क्रान्तिकारियों द्वारा मारा गया था। ३ मई को कॉलिन उस टुकड़ी से मिल गया जो पेनी की अध्यक्षता में थी तथा दूसरे दिन उसने बरेली की ओर प्रस्थान किया।[4]

खान बहादुर ने पहले यह सोचा कि उन मार्गों पर, जो शाहजहाँपुर, मुरादाबाद तथा बदायूँ से आते थे, अंग्रेजों का मुकाबला करने के लिए नाकाबंदी कर ली जाये तथा वहाँ सेना की टुकड़ियाँ भेज दी जावें; परन्तु बाद में यह निश्चित हुआ कि सम्पूर्ण शक्ति से बरेली ही में अंग्रेजों का मुकाबला किया जावे।[5]

---

१. टी० आर० होम्स : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी', पृ० ५२६।

२. 'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज', संलग्न पत्र २२, संख्या १४ में, पृ० १५३।

३. वही संलग्न पत्र ११, संख्या १४ में, पृ० १५०।

४. टी० आर० होम्स : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी', पृ० ५२६।

५. 'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी'—रुहेलखण्ड क्षेत्र—बरेली नैरेटिव, पृ० १६।

बरेली का युद्ध

४ मई १८५८ ई० को खान बहादुर खाँ ने अपने सैनिकों को एकत्रित किया तथा सायंकाल नकटिया नदी को पार करके एक स्थान पर अंग्रेजों का मुकाबला करने के लिए डट गये। उस स्थान पर ठीक प्रकार से तोपें लगा दी गयीं। ५ जून को कॉलिन की सेना पुल के निकट आ गयी। खान बहादुर की सेना ने उस पर तोपों से आक्रमण किया। युद्ध होता रहा। अंग्रेजी सेना आगे बढ़ने का प्रयत्न करने लगी।

गाजियों का अंग्रेजों पर आक्रमण—इसी बीच अधिक संख्या में गाजी लोग, सिरों में हरे साफे बाँधे तथा अपनी-अपनी तलवार हाथों में लिये उस स्थान की ओर आते हुए दिखलाई दिये। वे 'दीन दीन' के नारे लगा रहे थे। उनको देखकर अंग्रेजी सेना आश्चर्य-चकित हो गयी। इन गाजियों ने अंग्रेजी सेना पर आक्रमण किया तथा उनको बुरी तरह परास्त कर दिया। अंग्रेजी सेना के सैनिकों ने भागकर अपनी जान बचाई।[1] इन गाजियों ने वालपोल तथा कैमरन को घायल कर दिया।[2]

बरेली का पतन—६ मई १८५८ ई० को कॉलिन की सेना ने पुनः क्रान्तिकारी सेना पर आक्रमण किया। इसी दिन एक अंग्रेजी टुकड़ी मुरादाबाद से बरेली पहुँची। क्रान्तिकारी सैनिकों ने अंग्रेजी सेना से डटकर युद्ध किया।[3] अन्त में क्रान्तिकारी सेना अपना धैर्य खो बैठी। उनके नेता बरेली छोड़कर अन्य स्थानों को चले गये। क्रान्तिकारियों को हतोत्साहित देखकर अंग्रेजी सेना छावनी की ओर बढ़ने लगी। कॉलिन को पता चला कि खान बहादुर खाँ अपने सहायकों तथा अन्य क्रान्तिकारी नेताओं सहित बरेली से चले गये।[4]

१. टी० आर० होम्स : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी'—पृ० ५२७।

२. रसेल : 'माई डायरी इन इन्डिया'—पृ० २४७।

३. 'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी'—रुहेलखण्ड क्षेत्र—बरेली नैरेटिव, पृ० १६।

४. टी० आर० होम्स : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी', पृ० ५२८।

७ मई सन् १८५८ ई० को बरेली अंग्रेजों के पूर्ण अधिकार में आ गया।[1]

खान बहादुर का बरेली से बचकर चले जाना

५ मई १८५८ को सायंकाल खान बहादुर खाँ एक छोटी सी सेना लेकर पीलीभीत की ओर बरेली से चल दिये। उनके साथ उनके सहायक तथा अन्य क्रान्तिकारी नेता, जो उस समय बरेली में उपस्थित थे, भी गये। इन नेताओं में एक, नजीबाबाद के महमूद खाँ भी थे जो अप्रैल में बरेली आ गये थे। पीलीभीत से खान बहादुर खाँ अपने सहायकों तथा अन्य नेताओं सहित अवध चले गये।[2] चार्ल्स बाल के अनुसार शाहजादे फीरोजशाह ने बरेली को खान बहादुर खाँ से पहले छोड़ दिया था। खान बहादुर खाँ कुछ मुख्य नेताओं के साथ वहाँ अंग्रेजों का मुकाबला करते रहे और अंत में वे लोग भी बरेली से चले गये।[3]

अवध पहुँचने के उपरान्त खान बहादुर खाँ छिपे-छिपे घूमते रहे। वह अवध की बेगम तथा अन्य क्रान्तिकारियों के साथ, जिनकी संख्या ५५ के लगभग थी, नैपाल की तराई में घूमते रहे।[4] अंत में नैपाल के राणा जंगबहादुर द्वारा बन्दी बनाये गये।[5] मम्मू खाँ भी बन्दी बना लिये गये थे। ये

---

१. (अ) 'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी'—रुहेलखण्ड क्षेत्र, बरेली नैरेटिव, पृ० १६।
(ब) टी० आर० होम्स: 'हिस्ट्री आव दि इण्डियन म्यूटिनी', पृ० ५२८।
(स) चार्ल्स बाल: 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी', द्वितीय भाग, पृ० ३३० तथा ३३२।

२. 'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी'-रुहेलखण्ड क्षेत्र-बरेली नैरेटिव, पृ० १६।

३. चार्ल्स बाल: 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी', दूसरा भाग, पृ० ३२८।

४. ९ फरवरी १८५९ की बीरभंजन माँझी द्वारा भेजी गयी लिस्ट का कैप्टेन सी० एच० बार्यस द्वारा अनुवाद, फारेन पोलिटिकल कनसल्टेशन्स, ३० दिसम्बर १८५९—संख्या ५४७।

५. ब्रिगेडियर होल्डिच द्वारा चीफ आव दि स्टाफ हेड क्वार्टर्स को प्रेषित तार, दिनांक ९ दिसम्बर १८५९, फारेन पोलिटिकल कनसल्टेशन्स, ३० दिसम्बर १८५९, संख्या ५२८।

दोनों बन्दी लखनऊ जेल भेजे गये। १४ दिसम्बर सन् १८५६ ई० को ये दोनों बन्दी गोंडा से गुजरे थे।[1] कुछ दिन खान बहादुर लखनऊ जेल में रहे[2] परंतु जब यह निश्चय हुआ कि उनका मुकदमा बरेली में ही किया जाय तो उनको बन्दी के रूप में बरेली ले जाया गया। वह १ जनवरी सन् १८६० ई० को बरेली पहुँचे।[3] १ फरवरी १८६० ई० को इनका मुकदमा बरेली में प्रारम्भ हुआ।[4] २४ मार्च १८६० ई० को खान बहादुर खाँ को बरेली में कोतवाली के द्वार पर फाँसी दी गयी।[5]

कैसरुत्तवारीख के लेखक सैयिद कमालुद्दीन ने खान बहादुर के बंदी बनाये जाने तथा उनकी फाँसी के विषय में लिखा है कि वे किसी पर्वत के जंगल में ११ आदमियों सहित छिपे थे। किसी गुप्तचर ने सूचना दे दी। वे जंग-बहादुर के पास लाये गये। उनसे हत्याकांड के विषय में प्रश्न किया गया और उनको सांत्वना दी गयी। हेबल साहब के सुपुर्द कर दिये गये। खान बहादुर ने आत्महत्या करनी चाही। साहब ने कहा कि 'हमने तुम्हें शरण दी है तुम संतुष्ट रहो।' जब लखनऊ में मुकदमा चला तो कर्नल बयरो साहब ने

---

१. कमिश्नर बहराइच द्वारा बीडन को प्रेषित तार दिनांक २०-१०-१८५६—फारेन पोलिटिकल कनसल्टेशन्स, ३० दिसम्बर १८५६, संख्या ४६१।

२. लखनऊ से १७ दिसम्बर १८५६ को कैप्टेन चैम्बरलेन द्वारा प्रेषित तार फारेन पोलिटिकल कनसल्टेशन्स, ३० दिसम्बर १८५६, संख्या ४६०।

३. एक उर्दू हस्तलिखित डायरी, जो खान बहादुर खाँ के एक सम्बन्धी श्री साबिर अली खाँ के पास बरेली में अब भी है, के पृष्ठ ५७ में लिखा है:—

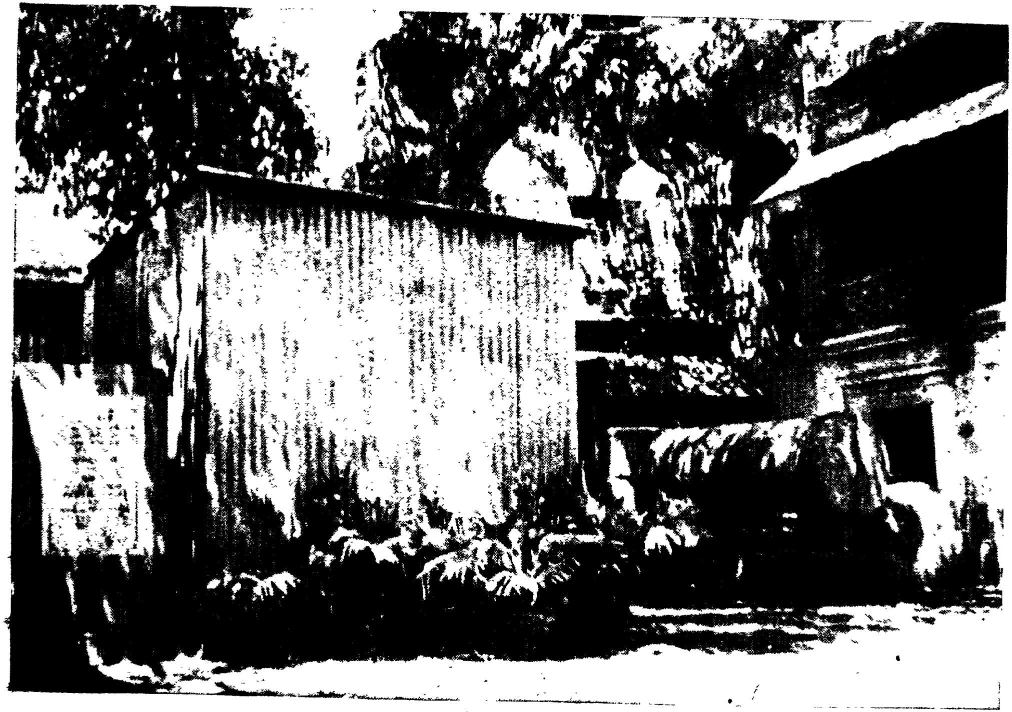
"यकुम जनवरी १८६० ई० ६ जमादी उस्सानी १२७६ हिजरी २३ पूस १२६७ यकशंबा—खान बहादुर खाँ दर सरकार गिरफ्तार शुदा दर बरेली रसीदंद।"

४. वही—पृ० ५७ में लिखा है:—

"यकुम फरवरी १८६० ई० ८ रजब १२७६ हिजरी २४ माघ १२६७ चहारशंबा—कोर्ट खान बहादुर खाँ साहब शुरू गरदीद।"

५. वही—पृ० ५७ में लिखा है:—

"२४ मार्च सन् १८६० ई० यकुम रमजान १२७६ हिजरी—१७ चैत १२६७ शंबा—नवाब खान बहादुर खाँ पेशे दरवाजये कोतवाली फाँसी याफतंद।"



बरेली

पुरानी कोतवाली जहाँ नवाब खान बहादुर खाँ को फाँसी दी गयी थी।

प्रश्न किया कि "तुमने इतने दीर्घकाल तक सरकार का नमक खाया, उत्कृष्ट पदों पर विराजमान हुए। इस वृद्धावस्था में सरकार के विरुद्ध क्यों क्रांति की ?" खान बहादुर ने उत्तर दिया 'तुमने हमारा पैतृक राज्य छीन लिया था। तुम्हारी सेना ने तुमसे युद्ध किया, जब तुम भागे तो क्रान्तिकारियों ने हमें राज्य का अधिकारी समझ कर राज्य प्रदान कर दिया। हम इसे ईश्वर की कृपा समझे कि हमें अपना अधिकार प्राप्त हो गया। जहाँ तक हो सका (अपने राज्य की रक्षा की) अब तुम्हारे वश में आये। तुम्हें अधिकार है (जो जी चाहे करो)।' साहब ने कहा 'जब अंग्रेजी शासन प्रारम्भ हुआ तो फिर तुमने राज्य को प्रसन्नतापूर्वक क्यों न दे दिया ?' खान बहादुर ने उत्तर दिया 'लोगों ने ऐसा न करने दिया। सरकार भी यों किसी को राज्य देती है ?' संक्षेप में, लखनऊ से आदेश हुआ कि उनका मुकदमा बरेली में होगा। अतएव अश्वारोहियों तथा पदातियों के पहरे में बंदी बनाकर वे बरेली भेज दिये गये। अंग्रेज अधिकारियों ने अभियोग के उपरान्त फाँसी का आदेश दिया और यह कहा कि हम अपना निर्णय लेफ्टिनेंट गवर्नर को भेजते हैं। खान बहादुर ने कहा—'मेरा सब बयान भेज दिया जाय।' खान बहादुर का एक साथी भाग गया, दूसरा बन्दीगृह में रहा...........बरेली का एक मित्र कहता था कि जब नवाब को चौक में फाँसी देने को लाये तो नगर के निवासियों की भीड़ लग गयी। कमिश्नर साहब तथा अन्य अंग्रेज अधिकारी भी उपस्थित थे। नवाब से और कमिश्नर साहब से खूब वाद-विवाद हुआ। जब कमिश्नर साहब चुप हो गये तो नवाब ने कहा 'अब विलम्ब की क्या आवश्यकता है, हाकिम का आदेश अटल मृत्यु के समान होता है।' प्रथानुसार जल्लाद ने नवाब के हाथ पीठ के पीछे बाँध दिये और वस्त्र उतारने के विषय में कमिश्नर से पूछा। उन्होंने मना किया और कहा कि 'इनका एक हाथ कलेक्टर साहब तथा दूसरा, दूसरे साहब पकड़ें।' यह कहकर वह चिल्लाकर रोये और सवार होकर शीघ्र चल दिये। जब फाँसी हो चुकी तो नवाब के वंशवालों ने नवाब की लाश माँगी। उन्हें उत्तर मिला कि 'तुम इसे शहीद बनाकर कब्र पर मेला किया करोगे, इससे हमें कष्ट होगा।' तदुपरान्त उन्हें किले में दफन करा दिया गया।[1]

समीक्षा

नवाब खान बहादुर खाँ की गणना सन् १८५७ ई० के स्वतंत्रता-संग्राम

१. 'कैसरुत्तवारीख', भाग २, पृ० ३६६ तथा ३७०।

के मुख्य नेताओं में करना अनुचित न होगा। उनका सबसे अधिक श्रेय इसमें है कि उन्होंने एक क्रान्तिकारी स्वतंत्र शासन की स्थापना की तथा लगभग एक वर्ष तक शासन करते रहे। उन्होंने अपने शासनकाल में जनता का पूर्ण सहयोग प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न किया। उनके अधिकारियों की सूची से पता चलता है कि उसमें हिन्दू तथा मुसलमान दोनों को बिना किसी भेदभाव के सेवाएँ प्रदान की जाती थीं। ठाकुरों को उनके प्रति सन्देह हो जाता था और ऐसी अवस्था में, जब कि अंग्रेज गुप्तचर समस्त देश में फैले थे, यह बात आश्चर्यजनक नहीं थी कि ठाकुरों को खान बहादुर के विरुद्ध भड़काया जाता। किन्तु खान बहादुर ने अंग्रेजों के इस प्रयत्न को भी असफल बनाने के लिए दृढ़तापूर्वक मोर्चा लिया। उन्होंने एक घोषणा-पत्र जारी किया था जिसमें उन्होंने समस्त हिन्दुओं से प्रार्थना की थी कि वे अंग्रेजों का विनाश करने में मुसलमानों का हाथ बटायें। इसके उपहार-स्वरूप अपने समस्त राज्य में गौ-वध बन्द कराने का आश्वासन भी दिया था।[1] खान बहादुर का यह घोषणा-पत्र उनके घर में ८ मई को अंग्रेजों को मिला था।

शासक के अतिरिक्त खान बहादुर खाँ एक दक्ष सेनानायक भी थे। यही क्या कम था कि उन्होंने १६,००० क्रान्तिकारी सैनिकों को, जनरल बख्त खाँ की अध्यक्षता में, क्रान्तिकारियों की सहायता के लिए देहली भेजा। उनका सैनिक संगठन उच्च कोटि का था। वह जानते थे कि खुले मैदान में अंग्रेजों से युद्ध करना सम्भव नहीं। अंग्रेजों की विजय से जनता को हतोत्साहित न हो जाना चाहिए। यद्यपि अंग्रेज सैनिक शक्ति तथा योग्यता में कुशल थे तो भी उनसे युद्ध करने के लिए दूसरी युक्ति से कार्य किया जा सकता था। अतः खान बहादुर ने अपने सैनिकों से कहा कि वे अंग्रेजों से खुल्लमखुल्ला युद्ध न करें। वे उनसे छापामार युद्ध करें, अंग्रेजी सेना की गति-विधि पर दृष्टि रक्खें, नदी के सब घाटों पर नाकाबन्दी करें, अंग्रेजों के यातायात के साधन रोक दें, उनको रसद न पहुँचने दें, उनको समाचार न मिलने दें और इस प्रकार अंग्रेजों को कभी शान्त न बैठने

१. फारेन पोलिटिकल कनसल्टेशन्स—मई १८५८, संख्या ७४१-४३।

दें।[1] हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य के लिए भी उन्होंने भरसक प्रयत्न किया। हिन्दुओं तथा मुसलमानों ने कंधे से कंधा भिड़ाकर नवाब खान बहादुर खाँ के साथ अंग्रेजों से युद्ध किया।

राजेन्द्र बहादुर
एम० ए०, एल-एल० बी०

१. रसेल : 'माई डायरी इन इंडिया', पृ० १६२ पर इस प्रकार है:—

"'Sir Collin showed me a sort of general order emanating from old Khan Bahadoor Khan of Bareilly, in Rohillcund, which bears marks of sagacity, and points out the most formidable war we could encounter a genuine guerilla. He says, "Do not attempt to meet the regular columns of the infidels, because they are superior to you in discipline and bunderbust, and have big guns, but watch their movements, guard all the ghauts on the rivers, intercept their communications, stop their supplies, cut up their daks and posts, and keep constantly hanging about their camps, give them no rest."

नर्बदा पार करने के उपरान्त वह तेजी से बड़ौदा की ओर बढ़े और राजपुर होते हुए बड़ौदा से केवल ५० मील दूर, और नदी के तट पर स्थित छोटा उदयपुर पहुँचे। पर ब्रिगेडियर पार्क ने उन्हें यहाँ पर १ दिसम्बर, १८५८ ई० को परास्त किया।[1] इस प्रकार तात्या का बड़ौदा पर अधिकार करने का भी प्रयास विफल हो गया और उनको बड़ौदा का विचार छोड़कर राजपूताने में बाँसवाड़ा के जंगल में शरण लेनी पड़ी।[2]

राजपूताने में—१० दिसम्बर, १८५८ ई० को तात्या बाँसवाड़ा पहुँच गये। वहाँ उनकी अवस्था बड़ी ही चिंताजनक हो गयी। वह चारों ओर से घिर गये थे। अंत में उन्होंने मानसिंह से मिलने के लिए परताबगढ़ की ओर जाना निश्चित किया। २३ दिसम्बर को तात्या परताबगढ़ पहुँचे और २४ दिसम्बर को मंडेसर। अंततः २६ दिसम्बर को जीरापुर में कर्नल बेंसन ने उन्हें युद्ध करने पर विवश कर दिया।[3] वहाँ परास्त होकर भागने पर ब्रिगेडियर सोमरसेट ने, जो उनका पीछा करते हुए जीरापुर तक आ गया था, आगे बढ़कर छपरा बड़ाद में उन्हें ३१ दिसम्बर, १८५८ ई० को परास्त कर दिया और उनकी सारी सेनाएँ तितर-बितर कर दीं।[4]

तात्या उक्त पराजय के उपरान्त भाग कर १ जनवरी १८५९ को कोटा राज्य में नाहरगढ़ में मानसिंह से मिले और इंदरगढ़ में जनवरी के प्रारम्भ के दिनों में फ़ीरोजशाह से मिले।[5]

पुनः जयपुर की ओर—इंदरगढ़ में आकर तात्या टोपे पुनः चारों ओर से घिर गये। हतोत्साहित होना तो वह जानते ही न थे। उन्होंने एक योजना जयपुर के ऊपर आक्रमण करने की बनायी और उधर ही झपटे[6]

१. दि रिवोल्ट इन सेंट्रल इंडिया—पृ० २२१।

२. वही—पृ० २२२।

३. वही—पृ० २२२ और म्यूटिनी रिकार्ड्स (सचिवालय लखनऊ) ओरिजिनल टेलीग्राम्स सेंट बाई मि० ई० ए० रीड १८५८। ३० दिसम्बर १८५८ का तार।

४. वही—पृ० २२४-२२५।

५. वही—पृ० २२४।

६. म्यूटिनी रिकार्ड्स (सचिवालय लखनऊ) ओरिजिनल टेलीग्राम्स सेंट बाई मि० ई० ए० रीड, नैपियर द्वारा भेजा गया १४ जनवरी १८५९ का तार।

बाबू कुँवरसिंह

१८५७ ई० की क्रान्ति की एक बड़ी विशेषता यह रही कि इसका नेतृत्व भारतवर्ष के नर-नारी, युवक एवं वृद्ध सभी ने किया। जगदीशपुर के राजपूत जागीरदार, कुँवरसिंह भी इस युद्ध के समय ८० वर्ष की अवस्था को प्राप्त हो चुके थे। होम्स ने लिखा है कि वे बड़े ही सज्जन पुरुष थे। उनके व्यवहार में सम्मान तथा शिष्टता पायी जाती थी और एक उच्च कुल के जीवन की वास्तविक छाप वर्तमान थी, वे बड़े अच्छे खिलाड़ी थे और यूरोपियन लोग सामान्यतः उन्हें बहुत पसंद करते थे। जार्ज ट्रिविलियन ने लिखा है कि "यदि कुँवरसिंह की अवस्था ४० वर्ष और कम होती अर्थात् वे ८० वर्ष के स्थान पर ४० वर्ष के होते, तो आरा की रक्षा में, हमें इससे कहीं अधिक कठिनाई होती, जो इस समय हुई। हमें अपने आपको बड़ा सौभाग्यशाली समझना चाहिए कि वृद्धावस्था ने उनकी सैनिक-शक्तियों तथा साधनों की दृढ़ता को बहुत कम कर दिया था।"[१] वे बहुत बड़ी जागीर के स्वामी थे किन्तु ब्रिटिश राज्यकाल के मालगुजारी के नियमों ने उनकी जागीर पर भी हाथ साफ किया[२] और वह शनैः शनैः बड़ी शोचनीय दशा को प्राप्त हो गयी। लक्ष्मी ने आँखें फेर लीं, किन्तु समस्त शाहाबाद के निवासियों की उनके प्रति निष्ठा में कमी न हुई।[३] अपनी जान पर मर मिटनेवाले राजपूत अपने स्वामी के साथ थे। जब कुँवरसिंह ने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध के लिए संगठन प्रारम्भ किया तो वह उनके साथ हो गये।[४] उन्होंने बिहार से लेकर

१. आई० जी० शीवकिंग : 'ए टरनिंग प्वाइन्ट इन दि इंडियन म्यूटिनी'—लन्दन १९१०, भाग ३, पृष्ठ १८।

२. जी० बी० मैलेसन : 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' भाग ३, पृष्ठ ५०।

३. जे० डब्लू० के० : 'हिस्ट्री आव दि सीप्वाय वार इन इन्डिया' भाग ३, पृष्ठ ९७।

४. वही—पृष्ठ ९७।



बाबू कुँवर सिंह

उत्तरी प्रदेश के पूर्वी जिलों तक को अपना कार्यक्षेत्र बना लिया था और कहा जाता है कि नाना साहब से भी इनका पत्र-व्यवहार होता था।[1]

रहस्यमय कुँवरसिंह

नाना साहब तथा बहुत से अन्य क्रान्तिकारियों की भाँति इनके विषय में भी अंग्रेजों को उस समय तक कोई पूर्ण ज्ञान न प्राप्त हो सका जब तक कि वह स्वयं तलवार लेकर अग्नि में न फाँद पड़े। १४ जून को टेयलर, कमिश्नर पटना ने अंग्रेजी सरकार को लिखा कि बहुत-से लोगों के पत्र इस आशय के प्राप्त हुए हैं कि बहुत से जमींदार, विशेष रूप से बाबू कुँवरसिंह, विद्रोहियों के साथ हैं किन्तु "मैं अपनी व्यक्तिगत मित्रता तथा उनकी अपने प्रति निष्ठा के आधार पर विश्वास से कह सकता हूँ कि यह सूचना निराधार है।"[2] ८ जुलाई को उसने लिखा, "बाबू कुँवरसिंह से जो कुछ सम्भव होगा वे करेंगे, किन्तु उनके पास कोई साधन नहीं। उन्होंने अनेक बार अपनी निष्ठा तथा सहानुभूति से सम्बन्धित पत्र लिखे हैं।" मजिस्ट्रेट शाहाबाद ने भी कुँवरसिंह के विषय में ब्रिटिश सरकार को लिखा, "कि विद्रोह के प्रारम्भ से जो सूचनायें प्राप्त हो रही हैं उनमें उनका हाथ बताया जाता है, किन्तु मेरे पास इन पर विश्वास करने का कोई कारण नहीं। कमिश्नर को उनके निष्ठावान् होने पर पूर्ण विश्वास है और मेरी समझ में नहीं आता कि मैं इन पर क्यों सन्देह करूँ।"[3] अन्य जिलों के अधिकारियों को उन बातों पर विश्वास न था। वे देख रहे थे कि किस प्रकार सभी जमींदारों की दृष्टि कुँवरसिंह पर है और वे उनके पदचिह्नों पर चलने के लिए तैयार हैं। इस प्रकार कुँवरसिंह की युक्ति से, केवल थोड़े से अंग्रेज ही भ्रम में थे। क्रान्तिकारियों की भावनायें तथा उनकी योजनायें छिपी नहीं रह सकतीं। यद्यपि कुँवरसिंह ने कमिश्नर को अपने सौजन्यपूर्ण व्यवहार से सन्तुष्ट कर रखा था किन्तु अन्य अधिकारी उन्हें बहुत बड़ा क्रान्तिकारी समझते थे। अतः कमिश्नर टेयलर ने उन्हें १६ जुलाई के पूर्व

१. बिहार व उड़ीसा डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स शाहाबाद, पृष्ठ ४७।

२. जी० डब्लू० फॉरेस्ट: 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' भाग ३, पृ० ४२१।

३. जे० डब्लू० के०: 'हिस्ट्री आव दि सीपॉय वार इन इंडिया' भाग ३, पृष्ठ १८।

पटना बुलवाया।[1] आरा के डिप्टी कलेक्टर सैयिद आज़मुद्दीन को उनके व्यवहार की निगरानी करने के लिये भेजा।[2] अनुभवी कुँवरसिंह समझ गये कि उनके बुलाये जाने का क्या अर्थ है। वे जानते थे कि एक प्रकार से उन्हें बन्दी बनाया जा रहा है। उन्होंने रुग्णावस्था तथा वृद्धावस्था का बहाना बना दिया।[3] आपने संकल्प कर लिया था कि यदि उन्हें बुलाया गया तो वे इसका विरोध करेंगे।[4] उन्होंने पूरा संगठन इस प्रकार किया था कि उनकी जागीर में जो गुप्त पूछ-ताछ करायी गयी, तो यही ज्ञात हुआ कि बाबू कुँवरसिंह ने विद्रोह की किसी प्रकार की कोई तैयारी नहीं की है और न यही पता चला कि उनकी प्रजा किसी प्रकार अंग्रेजों से असंतुष्ट है।[5] इस प्रकार यह अनुभवी वृद्ध बड़े रहस्यपूर्ण ढंग से संगठन करते रहे और अंग्रेज अधिकारी उनके विषय में अपना मत स्थिर न कर पाये। उनकी सेना में ४०वीं भारतीय पदातियों की पलटन के सैनिक[6] तथा भोजपुर के अवकाश प्राप्त सैनिक विशेष रूप से सम्मिलित थे।[7]

१. पार्लियामेन्ट्री प्रपत्रों का संकलन—'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज' नं० ५, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के संचालकों को बंगाल सरकार द्वारा प्रेषित आख्या, संलग्न प्रपत्र नं० ३, अगस्त ३१, १८५७, पृष्ठ ३८, पैरा ६४।

२. वही : पृष्ठ ३८, पैरा ६५।

३. वही : पृष्ठ ३८, पैरा ६६।

४. पार्लियामेन्ट्री प्रपत्रों का संकलन—'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज' नं० ५, ईस्ट इंडिया कम्पनी के संचालकों को बंगाल सरकार द्वारा प्रेषित आख्या, संलग्न प्रपत्र १ इन नं० २; अगस्त ८, १८५७, पृष्ठ १२, पैरा ३०।

५. पार्लियामेंट्री प्रपत्रों का संकलन—'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज' नं० ५, ईस्ट इंडिया कम्पनी के संचालकों को बंगाल सरकार द्वारा प्रेषित आख्या, संलग्न प्रपत्र नं० ३, अगस्त ३१, १८५७, पृष्ठ ३८, पैरा ६७।

६. पार्लियामेंट्री प्रपत्रों का संकलन—'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज' नं० ५, ईस्ट इंडिया कम्पनी के संचालकों को बंगाल सरकार द्वारा प्रेषित आख्या. संलग्न प्रपत्र नं० १ इन नं० ६; सितम्बर १२, १८५७ ई०, पृष्ठ ५६।

७. पार्लियामेंट्री प्रपत्रों का संकलन—'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज' नं० ५, ईस्ट इंडिया कम्पनी के संचालकों को बंगाल सरकार द्वारा प्रेषित आख्या, संलग्न प्रपत्र नं० २ इन नं० ६, सितम्बर १६, १८५७, पृष्ठ ७०, पैरा ३६।

पटना में क्रान्ति की तैयारियाँ—देहली में क्रान्तिकारियों का शासन आरम्भ हो जाने के उपरान्त देश के अन्य भागों में भी क्रान्ति की चिनगारी प्रज्वलित होने लगी। टेयलर बड़ी कठोरता से क्रान्ति के दमन का प्रयत्न करने लगा। पटना वहाबियों का बहुत बड़ा केन्द्र था। वे स्पष्ट रूप से अंग्रेजी शासन के विनाश का प्रयत्न करने लगे किन्तु उनके दमन का प्रयास भी अंग्रेजों की ओर से उतनी ही व्यग्रता से होने लगा। इस नीति के कारण ३ जुलाई को पटना में क्रान्ति का विस्फोट हुआ।[1] अंग्रेज इस क्रान्ति का दमन कर भी न पाये थे कि २५ जुलाई १८५७ ई० को दानापुर में ७वीं, ८वीं तथा ४०वीं भारतीय पदातियों की सेनायें क्रान्ति के लिए उठ खड़ी हुईं। यह सैनिक स्थान-स्थान पर कहते थे, "वे (अंग्रेज) हम लोगों के अस्त्र-शस्त्र छीन ले रहे हैं। इसे रोको। साहबों को मारो।"[2] अंग्रेज जनरल लायड ने इन विद्रोहियों को युद्ध में परास्त कर नगर में शांति स्थापित की।[3] और भारतीय सैनिक सोन नदी पार कर आरा की ओर चले गये।[4]

कुँवरसिंह तथा आरा का युद्ध, ३० जुलाई, १८५७ ई०

दानापुर में पराजित भारतीय पदातियों की सेना ने २७ जुलाई, सोमवार को प्रातःकाल ८ बजे, आरा नगर में प्रवेश किया।[5] उन्होंने बन्दीगृह के द्वार तोड़ डाले और ४०० बन्दियों को कारागार के बन्धनों

---

१. पार्लियामेंट्री प्रपत्रों का संकलन—'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज' नं० ५, ईस्ट इंडिया कम्पनी के संचालकों को बंगाल सरकार द्वारा प्रेषित आख्या, संलग्न प्रपत्र नं० २ इन नं० ६, सितम्बर १६, १८५७, पृष्ठ ७०, पैरा ३६।

२. जी० डब्लू० फॉरेस्ट : 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' भाग ३, पृष्ठ ४१५।

३. जी० बी० मैलेसन : 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' भाग ३, पृ० ४५।

४. चार्ल्स बाल : 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' भाग २, पृष्ठ १०४।

५. जी० बी० मैलेसन : 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' भाग ३, पृष्ठ ५०।

से मुक्त करके,[१] खजाने पर अधिकार जमा लिया।[२] उन्हें ८५००० रुपये प्राप्त हुए।[3] कुँवरसिंह इस शुभ अवसर से लाभ उठाने हेतु, इन भारतीय पदातियों से आ मिले। कुँवरसिंह के नेतृत्व में भारतीय पदातियों तथा अश्वारोहियों ने बोयल के बँगले का घेरा डाल दिया।[४] ३० जुलाई को अंग्रेजी सेना कुँवरसिंह द्वारा युद्ध में परास्त हुई।[५] गंगा नदी के तट पर कैप्टेन दुन्वर तथा कुँवरसिंह की सेनाओं में युद्ध हुआ और कुँवरसिंह ने अंग्रेजी सेना पर पीछे से आक्रमण कर उसे बुरी तरह पराजित किया।[६]

कैप्टेन दुन्वर का कथन है कि, "जिस समय कुँवरसिंह की सेना से युद्ध हो रहा था उस समय रात्रि के कारण हम लोग यह न पहचान पा रहे थे कि कौन हमारे सिपाही हैं और कौन कुँवरसिंह के। इस कारण हमारे अनेक साथी हमारे ही साथियों द्वारा मारे गये थे।"[७] कैप्टेन दुन्वर की मृत्यु तथा पराजय[८] का हाल ज्ञात होते ही, मेजर विंसेन्ट इर, सेना सहित, २ अगस्त को आरा के निकटवर्ती बीबीगंज नामक ग्राम में आ गया।[९]

---

१. जी० डब्लू० फॉरेस्ट : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग ३, पृष्ठ ४३०।

२. पार्लियामेंट्री प्रपत्रों का संकलन : 'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज' नं० ५, ईस्ट इंडिया कम्पनी के संचालकों को बंगाल सरकार द्वारा प्रेषित आख्या संलग्न प्रपत्र नं० ३, अगस्त ३१, १८५७, पृष्ठ ३३।

३. वही : पृष्ठ ३२, पैरा ८।

४. नैरेटिव आव ईवेन्ट्स १८५७-५८ बनारस, पृष्ठ १८, पैरा ५८।

५. पार्लियामेंट्री प्रपत्रों का संकलन, 'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज' नं० ५, ईस्ट इंडिया कम्पनी के संचालकों को बंगाल सरकार द्वारा प्रेषित आख्या संलग्न प्रपत्र नं० ३, अगस्त ३१, १८५७, पृष्ठ ३३, पैरा १६।

६. चार्ल्स बाल : 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' भाग २ पृष्ठ १०८।

७. वही : पृष्ठ ११६।

८. वही : पृष्ठ १२४।

९. जी० डब्लू० फॉरेस्ट : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग ३ पृष्ठ ५५१।

३ अगस्त को दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ। अन्त में, मेजर इर की, एल इस्ट्रेन्ज की सहायता के कारण विजय हुई।[1] कुँवरसिंह अपनी जन्मभूमि जगदीशपुर को वापस चले आये।[2]

जगदीशपुर का युद्ध १२ अगस्त १८५७ ई०

जगदीशपुर के क्रान्तिकारी तथा भोजपुर के अवकाशप्राप्त सैनिक, कुँवरसिंह को अपने मध्य में देख अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनके नेतृत्व में, अंग्रेजों से युद्ध करने में संलग्न हो गये।[3] कुँवरसिंह ने यहाँ आकर सैन्यबल ३००० कर लिया था। इसमें १५०० क्रान्तिकारी सैनिक थे। जगदीशपुर के निकटवर्ती दिलावर नामक ग्राम में मेजर इर तथा कुँवरसिंह की सेनाओं में युद्ध हुआ और अन्त में १२ अगस्त दिन के एक बजे अंग्रेजी सेना ने भारतीय सैनिकों को परास्त कर जगदीशपुर में अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।[4] अंग्रेजों को कुँवरसिंह के निवासस्थान में अत्यधिक अनाज तथा युद्ध-सम्बन्धी अस्त्र-शस्त्र प्राप्त हुए। कुँवरसिंह ४० वीं पलटन के साथ शाहाबाद के पहाड़ी इलाकों में सैनिक संगठन कर सहसराम की ओर आये।[5] इसके उपरान्त वे अपने छोटे भाई अमरसिंह के साथ रोहतास में प्रविष्ट हुए।[6]

---

१. चार्ल्स बाल : 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' भाग २, पृष्ठ ११२।

२. जी० बी० मैलेसन : 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' भाग ३, पृष्ठ ६७।

३. पार्लियामेन्ट्री प्रपत्रों का संकलन, 'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज' नं० ५, ईस्ट इंडिया कम्पनी के संचालकों को बंगाल सरकार द्वारा प्रेषित आख्या संलग्न प्रपत्र नं० २ इन नं० ६, सितम्बर १६, १८५७, पृष्ठ ७० पैरा ३६।

४. जी० बी० मैलेसन : 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' भाग ३, पृष्ठ ८६।

५. पार्लियामेन्ट्री प्रपत्रों का संकलन, 'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज' नं० ५, ईस्ट इंडिया कम्पनी के संचालकों को बंगाल सरकार द्वारा प्रेषित आख्या संलग्न प्रपत्र नं० ४, सितम्बर १८५७, पृष्ठ ५५।

६. पार्लियामेन्ट्री प्रपत्रों का संकलन, 'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज' नं० ५, ईस्ट इंडिया कम्पनी के संचालकों को बंगाल सरकार द्वारा प्रेषित आख्या संलग्न प्रपत्र नं० १ इन नं० ४ सितम्बर १२, १८५७, पृष्ठ ५१ पैरा ८।

कुँवरसिंह रीवाँ की ओर—सहसराम और रोहतास के पठान अंग्रेजों से, उनके अत्याचारों के कारण अत्यधिक असन्तुष्ट थे। सहसराम तथा रोहतास में, क्रान्ति की अग्नि प्रज्वलित कर, सोन नदी पार कर, कुँवरसिंह ने रीवाँ की ओर कूच किया।[1]

अंग्रेजों की बर्बरता चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। मेजर इर की तृष्णा कुँवरसिंह को युद्ध में परास्त कर तथा क्रान्तिकारियों को फाँसी पर लटका कर शान्त न हुई थी। उन्होंने जगदीशनगर को नष्ट-भ्रष्ट कर खाक में मिला दिया।[2] उन्होंने कुँवरसिंह, अमरसिंह तथा दयालसिंह के निवास-स्थानों में आग लगा दी।[3] कुँवरसिंह द्वारा निर्मित मन्दिर को इस कारण से नष्ट करवा दिया[4] कि यहाँ के ब्राह्मणों ने कुँवरसिंह को अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध में सहायता दी थी।

कुँवरसिंह रीवाँ में

कुँवरसिंह, रामगढ़ तथा दानापुर के विद्रोहियों को अपनी ओर मिला, ५००० सैनिकों सहित रीवाँ पहुँचे।[5] जब कुँवरसिंह को जगदीशपुर में किये गये अत्याचारों का हाल ज्ञात हुआ तो वह अत्यधिक दुःखित हुए। मन्दिर के नष्ट होने की सूचना ने उन्हें किंकर्त्तव्यविमूढ़ कर दिया।[6] धैर्य तथा साहस के प्रतीक कुँवरसिंह अब और भी अधिक तीव्र गति से, रीवाँ में

---

१. पार्लियामेन्ट्री प्रपत्रों का संकलन, 'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज' नं० ६, संलग्न प्रपत्र नं० ६८ इन नं० ४।

२. जी० बी० मैलेसन : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग ३, पृष्ठ ८६।

३. चार्ल्स बाल : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग २, पृष्ठ १२७।

४. पार्लियामेन्ट्री प्रपत्रों का संकलन : 'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज' नं० ५, ईस्ट इंडिया कम्पनी के संचालकों को बंगाल सरकार द्वारा प्रेषित आख्या संलग्न प्रपत्र नं० ३ अगस्त ३१, १८५७, पृष्ठ ३८, पैरा ६२।

५. जे० डब्लू० के० : 'हिस्ट्री आव दि सीप्वाय वार इन इन्डिया' भाग ३, पृष्ठ १४६।

६. चार्ल्स बाल : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग २ पृष्ठ १२७।

क्रान्ति के संचालन में संलग्न हो गये।[1] यद्यपि रीवाँ का राजा अंग्रेजों का परम मित्र था किन्तु अंग्रेज उस पर कुँवरसिंह का सम्बन्धी होने के कारण सन्देह की दृष्टि रखते थे।[2] कुँवरसिंह ने शाहजपुर के ठाकुरों में क्रान्ति की भावना उत्पन्न कर, रीवाँ के जमींदारों को, अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध युद्ध करने को प्रोत्साहित किया।[3] हशमत अली तथा हरचन्द राज की सहायता से रीवाँ में क्रान्ति की अग्नि प्रज्वलित कर,[4] कुँवरसिंह उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों की ओर अग्रसर हुए।[5]

कुँवरसिंह बाँदा में, २९ सितम्बर १८५७

२९ सितम्बर को कुँवरसिंह २००० सैनिकों सहित बाँदा पहुँचे। बाँदा के नवाब ने आपका विशेष स्वागत तथा सत्कार किया। नगरवासियों ने, कुँवरसिंह को सैनिक एकत्र करने में हर तरह की सहायता प्रदान की। अवध से अनेक अस्त्र-शस्त्र सहित सैनिक बाँदा आये और कुँवरसिंह के नेतृत्व में क्रान्ति करने के उद्योग में संलग्न हो गये।[6]

कुँवरसिंह कानपुर में, नवम्बर १८५७

ग्वालियर के क्रान्तिकारियों के जालौन में आने के पूर्व, कुँवरसिंह १९ अक्तूबर को ४० वीं भारतीय पदातियों के साथ, बाँदा होते हुए काल्पी आये थे।[7] आप ग्वालियर के क्रान्तिकारियों से क्रान्ति-विस्फोटक विषयों पर पत्र-व्यवहार कर रहे थे।[8] ३ नवम्बर १८५७ ई० को शिवराम तात्या को

१. जी० डब्लू० फॉरेस्ट : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग ३, पृष्ठ ४५७।

२. पार्लियामेन्ट्री प्रपत्रों का संकलन, 'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज' नं० ६, संलग्न प्रपत्र नं० ६८ इन नं० ४, पैरा ५।

३. वही : पैरा ११।

४. पार्लियामेन्ट्री प्रपत्रों का संकलन 'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज' नं० ६, संलग्न प्रपत्र नं० ३६ इन नं० ४।

५. बिहार व उड़ीसा डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स शाहाबाद, पृ० ४७।

६. दि रिवोल्ट इन सेन्ट्रल इन्डिया, १८५७-५९ पृष्ठ २७।

७. पार्लियामेन्ट्री प्रपत्रों का संकलन, 'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज' नं० ६, संलग्न प्रपत्र ४६ इन नं० १।

८. नैरेटिव आव ईवेन्ट्स जालौन, १८५७-५८, नं० १२ ऋ/व १८५८

काल्पी में बन्दी बनाया था।[1] आपको ज्ञात हुआ कि लाहौर के गुलाबसिंह के भतीजे जवाहरसिंह, कानपुर से ६ कोस दूर स्थित चहारनिशां (Chaharnison) नामक स्थान में बन्दी हैं।[2] ७ नवम्बर को, ग्वालियर के क्रान्तिकारियों ने काल्पी आकर कुँवरसिंह का नेतृत्व स्वीकार किया।[3] तदुपरान्त कुँवरसिंह ने, ग्वालियर के क्रान्तिकारियों तथा ४०वीं भारतीय पदातियों का नेतृत्व करते हुए, कानपुर पर आक्रमण करने के हेतु कूच किया था।[4]

आजमगढ़ में क्रान्ति

अंग्रेज अभी मिर्जापुर, रीवाँ तथा कानपुर में कुँवरसिंह द्वारा प्रज्वलित की गयी क्रान्ति की अग्नि[5] को शान्त भी न कर पाये थे कि आजमगढ़ में क्रान्ति की लहरें प्रवाहित होने लगीं। आजमगढ़ के पलवार, राजपूत, जमींदार तथा पठान आदि अंग्रेजों के बर्बरतापूर्ण व्यवहार से असन्तुष्ट थे। बेनीमाधव, पृथीपाल सिंह तथा मुजफ्फर खाँ के नेतृत्व में क्रान्तिकारियों ने, जून के माह में खजाने पर अधिकार स्थापित कर लिया और पाँच लाख रुपये के स्वामी बन गये। इसके उपरान्त उन्होंने बन्दीगृह के दरवाजों को तोड़कर बन्दियों को मुक्त किया।[6] लुइस तथा हचिन्सन को अपनी गोली का शिकार बनाया। जून के तीसरे सप्ताह में, वेनविल के प्रयास से, आजमगढ़ के पूर्वी परगनों पर अंग्रेजों का शासन स्थापित हो गया। राजपूतों की वीरता के कारण अब भी, आजमगढ़ के अधिकांश परगने

---

१ व २. ए० एच० टेरनन डिप्टी कमिश्नर जालौन को, जी० पसन्ना डिप्टी मजिस्ट्रेट आव जालौन द्वारा प्रेषित आख्या—काल्पी ६ जून १८५८, पृष्ठ ६ पैरा ८।

३. आजमगढ़ के फारसी में रिकार्ड, डिप्टी कमिश्नर जालौन को—डिप्टी मजिस्ट्रेट जालौन द्वारा प्रेषित आख्या—काल्पी ६ जून १८५८ पैरा ८।

४. आजमगढ़ पर्शियन रिकार्ड. डिप्टी कमिश्नर जालौन को डिप्टी मजिस्ट्रेट जालौन द्वारा प्रेषित आख्या—काल्पी ६ जून १८५८ पैरा ८।

५. नैरेटिव आव ईवेन्ट्स १८५७-१८५८, बनारस, पृष्ठ १६ पैरा ६०।

६. आजमगढ़ कलेक्ट्रेट रिकार्ड गोश्वरा २४, तारीख २७. ११. १८५८ व २२. १. १८५६, पृष्ठ ६८।

और जयपुर से ३० मील दूर दौसा पहुँच गये।[१] किन्तु ब्रिगेडियर राबर्ट्स ने उन्हें यहाँ पर १४ जनवरी को परास्त कर दिया। इस समय उनके पास केवल ३००० सैनिक थे। तात्या के ११ हाथी भी छिन गये।[२]

दौसा से वह उत्तर-पश्चिम की ओर भागे। अंततः कर्नल होम्स ने उन्हें सीकर में २१ जनवरी,' ५९, को पूर्ण रूप से परास्त कर दिया।[३]

विश्वासघात—सीकर के युद्ध के पश्चात् तात्या का भाग्य-सूर्य अस्त हो गया। राव साहब और फ़ीरोजशाह उनका साथ छोड़ गये और उन्होंने तीन या चार साथियों के साथ नरवर राज्य में स्थित पारोण के जंगल में अपने मित्र मानसिंह के पास शरण ली।[४] यहाँ वह अप्रैल १८५९ तक रहे। और अंत में अपने ही मित्र मानसिंह के विश्वासघात के फलस्वरूप ७ अप्रैल, १८५९ को वह मेजर मीड द्वारा मयूदिया में जीवित बंदी बना लिये गये।[५]

तात्या टोपे को सिप्री लाया गया जहाँ उन पर सैनिक न्यायालय के सम्मुख मुकदमा चलाया गया। न्यायालय ने उन्हें प्राणदंड दिया और १८ अप्रैल, १८५९ को उन्हें फाँसी दे दी गयी।[६] और इस प्रकार इस अनन्य वीर का भी वही अंत हुआ जो कि विदेशी शासन से अपनी मातृभूमि को स्वतंत्रता दिलाने के लिए युद्ध करनेवाले असंख्य सैनिकों का अनादि काल से होता आया है।

१. म्यूटिनी रिकार्ड्स (सचिवालय लखनऊ) ओरिजिनल टेलीग्राम्स सेंट बाई मि० ई० ए० रीड, नैपियर द्वारा भेजा गया १५ जनवरी १८५९ का तार।

२. वही—मेन का तार मैक्फर्सन को दिनांक २३ जनवरी १८५९।

३. 'दि रिवोल्ट इन सेंट्रल इंडिया' और फ़ारेन पोलिटिकल प्रोसीडिंग्स दिनांक २२ अप्रैल, १८५९, नं० १८६-१८९ नेशनल आर्काइव, नयी दिल्ली, पृ० २३१।

४. म्यूटिनी रिकार्ड्स (लखनऊ सचिवालय) आथेंटिकेटेड कापीज आव टेलीग्राम्स सेंट टु मि० ई० ए० रीड, २४ मार्च, १८५८ से अप्रैल १८५९ तक। मेजर मैक्फर्सन का ग्वालियर से भेजा हुआ २३ जनवरी १८५८ का तार।

५. वही—मेजर मैक्फर्सन का ग्वालियर से १९ अप्रैल १८५९ का तार।

६. 'दि रिवोल्ट इन सेन्ट्रल इण्डिया'

क्रान्तिकारियों के अधीनस्थ थे।[1] तीन दिन के भीषण संग्राम के पश्चात्, क्रान्तिकारियों ने, वेनविल को मौत के घाट उतार[2] आजमगढ़ पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। अब २५०० क्रान्तिकारी, दिसम्बर के माह में स्थान-स्थान पर अंग्रेजों को मारने तथा लूटने लगे और उनके अनेक बँगले भस्मीभूत कर दिये। मल्क ने अंग्रेजी सेना के साथ इन क्रान्तिकारियों पर आक्रमण कर युद्ध में परास्त किया।[3] उन्होंने अनेक क्रान्तिकारियों को बन्दी बनाया और अनेक को फाँसी पर लटका दिया।[4]

कुँवरसिंह आजमगढ़ में—आजमगढ़ में जब क्रान्ति करने की योजनायें चल रही थीं, तब कुँवरसिंह आसाम तथा पश्चिमी बिहार में क्रान्ति-विस्फोट में संलग्न थे। दिब्रूगढ़ से २८ अगस्त १८५८ ई० को हैने ने गोपनीय पत्र द्वारा आसाम में स्थित गवर्नर जनरल के पोलिटिकल एजेन्ट जेन्किन्स को सूचना दी कि कुछ माह पहले से दानापुर के क्रान्तिकारी सैनिकों के पत्र दिब्रूगढ़ की रेजीमेन्ट में आ रहे थे। उसने रेजीमेन्ट के १ हवलदार, २ नायक तथा २० सैनिकों के नाम लिखे जो देश के अग्रगण्य नेता बाबू कुँवरसिंह आदि से मिलकर आसाम में क्रान्ति फैलाने की योजना बना रहे थे। कुँवरसिंह को जब गुप्तचरों द्वारा ज्ञात हुआ कि आजमगढ़ में स्थित अंग्रेजी सेना, लखनऊ में विद्रोह-दमन करने के लिए गयी हुई है, तो वे तुरन्त २०० सैनिकों[5] सहित घाघरा नदी पार कर गाजीपुर आ गये। यहाँ पर क्रान्तिकारियों का शासन स्थापित कर[6] आजमगढ़ की ओर

१. नैरेटिव आव ईवेन्ट्स १८५७-१८५८, बनारस, पृष्ठ २२ पैरा ७६।

२. आजमगढ़ कलेक्ट्रेट रिकार्ड गोश्वरा २४, तारीख २७. ११. १८५८ व २२. १. १८५९, पृष्ठ ९९।

३. आजमगढ़ कलेक्ट्रेट रिकार्ड गोश्वरा २४, तारीख २७. ११. १८५८ व २२. १. १८५९, पृष्ठ १००।

४. वही, पृष्ठ १०१।

५. जी० बी० मैलेसन : 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' भाग ४, पृष्ठ ३१८।

६. टी० आर० होम्स : 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' लन्दन १९०४, पृष्ठ ४५२।

प्रस्थान करने के लिए परामर्श करने लगे।[1] कुँवरसिंह भली भाँति जानते थे कि यद्यपि अंग्रेजी सेना आजमगढ़ से लखनऊ गयी हुई है किन्तु उसकी दृष्टि जगदीशपुर तथा आजमगढ़ की ओर है। अतः वे उत्तर प्रदेश के पूर्वी ओर आये[2] जहाँ पर अंग्रेजों की सैनिक शक्ति सबसे अधिक क्षीण थी।

आजमगढ़ का युद्ध, मार्च १८५८—कुँवरसिंह ने आजमगढ़ के जमींदारों, राजपूतों तथा पठानों को,[3] एकत्रित कर १८ मार्च को आजमगढ़ से पच्चीस मील दूर स्थित उतरौलिया[4] नामक गढ़ में घेरा डाल दिया।[5] इस समय आजमगढ़ में मिलमन के नेतृत्व में ३७वीं पलटन के २८६ आदमी, ४थी मद्रास अश्वारोही के ६० आदमी तथा २ बन्दूकें थीं।[6] मिलमन ने २२ मार्च को आजमगढ़ से छः मील दूर स्थित कोलस[7] नामक स्थान पर घेरा डाल, क्रान्तिकारियों पर आक्रमण कर दिया। कुँवरसिंह एक सफल सेनापति की भाँति, मिलमन को उतरौलिया के जंगलों की ओर ले गये और उन्होंने छापामार युद्धशैली अपना कर अंग्रेजों को बुरी तरह परास्त किया।[8] मिलमन तथा उसके सैनिक, भूख व प्यास से व्याकुल, युद्ध में हारकर शरणार्थ कोलस होते हुए आजमगढ़ की ओर आये। उसने बनारस, इलाहाबाद

१. जी० बी० मैलेसन : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग ४, पृष्ठ ३१८।

२. वही, पृष्ठ ३१६।

३. आजमगढ़ कलेक्ट्रेट रिकार्ड गोश्वरा २४, तारीख २७. ११. १८५८ व २२. १. १८५६, पृष्ठ १६८।

४. जी० डब्लू० फॉरेस्ट : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग ३, पृष्ठ ४५८।

५. जी० बी० मैलेसन : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग ४, पृष्ठ ३१६।

६. जी० डब्लू० फॉरेस्ट : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग ३, पृष्ठ ४५८।

७. जी० डब्लू० फॉरेस्ट : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग ३, पृष्ठ ४५६।

८. आजमगढ़ कलेक्ट्रेट रिकार्ड गोश्वरा २४, तारीख २७. ११. १८५८ व २१. १. १८५६, पृष्ठ १०१।

तथा लखनऊ के अधिकारियों को युद्ध का विवरण देकर, सैनिक सहायता भेजने के लिए पत्र-व्यवहार किया।[1] बनारस तथा गाजीपुर से आये हुए ३५० सैनिकों के साथ कर्नल डेमस ने, २७ मार्च को कुँवरसिंह पर आक्रमण कर दिया।[2] कुँवरसिंह ने सुचारु रूप से सैन्य संचालन कर वीरता के साथ युद्ध कर शत्रुओं पर विजय प्राप्त की।[3] अब कुँवरसिंह इलाहाबाद तथा बनारस में क्रान्ति की लहरें प्रवाहित करने की योजना बना रहे थे। लार्ड कैनिंग ने, पराजय की सूचना पाते ही, क्रीमिया युद्ध के विजेता लार्ड मार्क को १३वीं पदातियों के साथ आजमगढ़ पर आक्रमण करने का आदेश दिया।[4] लार्ड मार्क २२ अफसरों तथा ४४४ सैनिकों सहित, ६ अप्रैल को आजमगढ़ पहुँचा[5] और उसने कुँवरसिंह की बाईं ओर की सेना पर आक्रमण कर दिया।[6] इस समय कुँवरसिंह सेना सहित आजमगढ़ में थे और अंग्रेजी सैनिक आजमगढ़ के किले में।[7] कुँवरसिंह की रणकुशलता दर्शनीय एवं प्रशंसनीय थी। वह अंग्रेजी सेना के गोले तथा बारूदों के अनवरत प्रहार से किंचित्‌मात्र भी विचलित न हो, बड़ी निपुणता से सैन्य संचालन कर रहे थे। उन्होंने अंग्रेजी सेना के पृष्ठभाग पर आक्रमण कर उसे पीछे हटने

---

१. जी० बी० मैलेसन : 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' भाग ४, पृष्ठ ३२०।

२. टी० आर० होम्स : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' लन्दन १६०४, पृष्ठ ४५३।

३. पार्लियामेंट्री प्रपत्रों का संकलन 'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज' नं० ५, ईस्ट इंडिया कम्पनी के संचालकों को बंगाल सरकार द्वारा प्रेषित आख्या, संलग्न प्रपत्र नं० ८, पृष्ठ ८४।

४. जी० बी० मैलेसन : 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' भाग ४, पृष्ठ ३२१।

५. टी० आर० होम्स : 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' लन्दन १६०४, पृष्ठ ४५४।

६. जी० डब्लू० फॉरेस्ट : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग ३, पृष्ठ ४६१।

७. आजमगढ़ कलेक्ट्रेट रिकार्ड गोश्वरा २४, तारीख २७. ११. १८५८, तथा २२. १. १८५६, पृष्ठ १०२।

पर बाध्य कर दिया।[1] लार्ड मार्क, लागडेन तथा वेनविल ने एक साथ पूर्ण शक्ति से कुँवरसिंह पर भीषण आक्रमण किया। कुँवरसिंह के वीर सेनानियों ने बड़ी उत्तेजना तथा वीरता से अंग्रेजी सेना का सामना किया किन्तु अंग्रेजों की संगठित तथा सुव्यवस्थित सैनिक शक्ति के सम्मुख उन्हें पीछे हटना पड़ा और वे जंगलों की ओर प्रविष्ट हो छापामार युद्ध में व्यस्त हो गये।[2]

कुँवरसिंह गाजीपुर में

१५ अप्रैल को जनरल ल्यूगार्ड ने ३७वीं पलटन सहित कुँवरसिंह पर आक्रमण कर दिया।[3] कुँवरसिंह बड़ी वीरता तथा कुशलता से, छापामार युद्ध-शैली अपना कर, अंग्रेजों से युद्ध करते रहे। अनवरत युद्ध करते-करते ८० वर्षीय कुँवरसिंह शिथिल पड़ गये थे और उनकी सेना अस्त-व्यस्त हो गयी थी। वह अब टोंस नदी पारकर गाजीपुर जाना चाहते थे।[4] टोंस नदी के पास दोनों सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ। कुँवरसिंह सैन्य-संचालन बड़ी कुशलता से कर रहे थे। उन्होंने तथा उनके सैनिकों ने जो वीरता इस युद्ध में प्रदर्शित की वह चिरस्मरणीय है। जनरल वेनविल तथा हैमिल्टन को मौत के घाट उतार,[5] कुँवरसिंह ने टोंस नदी पारकर, गाजीपुर की ओर प्रस्थान किया। जनरल ल्यूगार्ड ने तुरन्त ही ७००० सैनिकों सहित, जनरल डगलस को कुँवरसिंह पर आक्रमण करने का आदेश दिया।[6] कुँवरसिंह नाथूपुर होते हुए नघाई ग्राम पहुँचे।[7] यहाँ पर १७ अप्रैल को मेजर डगलस तथा कुँवरसिंह की सेनाओं में युद्ध हुआ। कुँवरसिंह अंग्रेजी सेना को पीछे

१. जी० बी० मैलेसन : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग ४, पृष्ठ ३२३।

२. वही, पृष्ठ ३२६।

३. जी० डब्लू० फारेस्ट : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग ३, पृष्ठ ४६५।

४. जी० बी० मैलेसन : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग ४, पृष्ठ ३३०।

५. जी० डब्लू० फारेस्ट : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग ३, पृष्ठ ४६६।

६. वही, पृष्ठ ४६७।

७. जी० बी० मैलेसन : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग ४, पृष्ठ ३३२।

हटने पर बाध्य कर सिकन्दरपुर तथा जिला बलिया होते हुए गाजीपुर आ गये।[1] बलिया जिले के पचरुखा स्थान पर भी कुँवरसिंह की सेना और अंग्रेजों की सेना में झड़प हुई। यह भी बताया जाता है कि इस मध्य में कुँवरसिंह अपने ननिहाल सहतवार में तथा अपने भाई की ससुराल राजा-गाँव खरौनी में छिपे थे। यहाँ वह अपने कुछ कपड़े, तलवार आदि सामान छोड़ गये थे। केवल वस्त्र शेष है। तलवार डर के मारे सम्बन्धियों ने फेंक दिया था।

कुँवरसिंह जगदीशपुर की ओर

कुँवरसिंह गंगा नदी पार कर जगदीशपुर आना चाहते थे।[2] जब वे गंगा नदी के निकट पहुँच गये तो उनके गुप्तचरों ने आकर सूचना दी कि जनरल डगलस तथा जनरल बेली सेना सहित उनका पीछा करते हुए गंगा के निकट आ गये हैं। दुश्मनों को गंगा घाट पर आते हुए देख कुँवरसिंह ने अफवाह उड़ायी कि घाट पर नाव न होने के कारण हाथी पर बैठ कर गंगा के उस पार जाया जायगा। उन्होंने कुछ साथियों को हाथियों के साथ पश्चिम दिशा की ओर भेज दिया। अंग्रेज सैनिक, कुँवरसिंह को उस हाथी पर सवार समझ उसका पीछा करने लगे।[3] इधर कुँवरसिंह रात्रि को नाव पर बैठ गंगा नदी पार करने लगे।[4] सूर्य निकलने के पूर्व जब जनरल डगलस तथा बेली को कुँवरसिंह का पता चला तो वे तुरन्त शिवपुर घाट आये और गोली चलाना आरम्भ कर दिया।[5] अब तक कुँवरसिंह की समस्त सेना गंगा के उस पार पहुँच चुकी थी। कुँवरसिंह स्वयं अन्तिम नाव में बैठे। जब वे उस पार पहुँच रहे थे तो गोलियों की आवाज सुनायी दी। कुँवरसिंह के हाथ में ढाल तथा तलवार थी। अंग्रेजी सैनिकों की

---

१. जी० बी० मैलेसन : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग ४, पृष्ठ ३३३।

२. नैरेटिव आव ईवेन्ट्स, बनारस डिवीजन, १८५७-१८५८, पृष्ठ २।

३. जी० डब्लू० फॉरेस्ट : 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' भाग ३, पृष्ठ ४६६।

४. जी० बी० मैलेसन : 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' भाग ४, पृष्ठ ३३४।

५. जी० डब्लू० फॉरेस्ट : 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' भाग ३, पृष्ठ ४६६।

कई गोलियाँ कुँवरसिंह की ढाल को छेदकर निकल गयी थीं किन्तु कहा जाता है कि जनरल बेली की एक गोली उनके बायें हाथ की कलाई में जा लगी। आपने गोली द्वारा आहत कलाई को अपनी पैनी तलवार से तुरन्त काटकर पुण्य सलिला भागीरथी की पावन धारा में प्रवाहित कर दिया।[1]

कुँवरसिंह तथा जगदीशपुर का युद्ध, २३ अप्रैल १८५८ ई०

जब कुँवरसिंह अपनी सेना सहित नाव पर बैठ कर गंगा नदी पार कर रहे थे तो अंग्रेज सैनिक नदी के दूसरी ओर खड़े, कुँवरसिंह को अपनी परिधि से दूर देख, विवशता से हाथ मल रहे थे। कुँवरसिंह अपनी अस्त-व्यस्त सेनासहित २२ अप्रैल को जगदीशपुर पहुँच गये थे।[2] कटे हाथ के घाव के कारण उन्हें अतिशय पीड़ा हो रही थी। अपने ज्वर तथा पीड़ा का किंचित् मात्र भी विचार न कर वे जगदीशपुर की जनता से बड़े उत्साह से मिले। नगर की जनता पर किये गये अत्याचारों का विवरण सुन, वे अत्यधिक दुखी हुए और उसका बदला लेने के लिए कटिबद्ध हो अपने प्रयत्न में संलग्न हो गये। जब अमरसिंह को अपने भाई कुँवरसिंह के आगमन का हाल ज्ञात हुआ तो वह भी क्रान्तिकारी कृषकों तथा ग्रामीणों के साथ उनसे आ मिले।[3] कुँवरसिंह ने, इस प्रकार एकत्रित हुई समस्त सेना को चारों दिशाओं की ओर, राजधानी की रक्षा के हेतु भेज दिया।

२३ अप्रैल को, जनरल ली० ग्रान्ड ने सेना सहित आरा से जगदीशपुर में आकर नगर को चारों ओर से घेर लिया।[4] इस सेना में सिक्ख तथा अंग्रेज सैनिक अधिक संख्या में थे। कुँवरसिंह अंग्रेजों की विशाल सेना आते देख बड़ी कूटनीतिज्ञता से, जगदीशपुर के जंगलों की ओर चले गये। वह जंगलों में अपनी समस्त सेना छिपा शत्रुओं के आगमन की प्रतीक्षा करने

---

१. जी० डब्लू० फॉरेस्ट : 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' भाग ३, पृष्ठ ४६१।

२. जी० बी० मैलेसन : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग ४, पृष्ठ ३३४।

३. जी० डब्लू० फॉरेस्ट : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग ४, पृष्ठ ४६१।

४. चार्ल्स बाल : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग २, पृष्ठ २८८।

लगे। ली० ग्रान्ड कुँवरसिंह को नगर में न पा जंगलों की ओर आये। जंगलों में आते ही कुँवरसिंह की सेना ने चारों तरफ से उन पर आक्रमण कर दिया।[1] अंग्रेज सैनिक भूख-प्यास से व्याकुल तथा रसद की कमी के कारण भारतीय सेना के सम्मुख पराजित हुए।[2] ली० ग्रान्ड स्वयं गोली का शिकार बना। १९९ अंग्रेज सैनिकों में केवल ८० ही जीवित वापस लौट सके, जिनमें ३५ तो पहले ही भग आये थे।[3] इस प्रकार कुँवरसिंह अंग्रेजी सेना को बुरी तरह परास्त कर २३ अप्रैल १८५८ ई० को जगदीशपुर में प्रविष्ट हुए। नगरवासियों ने विजय की प्रसन्नता में, २३ अप्रैल के हुए दरबार में कुँवरसिंह को सिंहासनारूढ़ कर राजा घोषित किया। इस युद्ध में यह बात विशेष महत्त्व की है कि अंग्रेजी सेना की ओर से युद्ध करनेवाले सिक्ख सिपाहियों के साथ, जो अब बन्दी थे, बड़ी उदारता तथा सहृदयता का व्यवहार किया गया। उन्होंने उन सबको बन्दीगृह से मुक्त करवा, सम्मानपूर्वक उनके निवास स्थानों तक पहुँचा दिया। इससे यह स्पष्ट है कि आपको अपने देशवासियों से कितना अधिक प्रेम था।

बाबू कुँवरसिंह का स्वर्गारोहण, २६ अप्रैल १८५८

२४ अप्रैल से बाबू कुँवरसिंह का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। वृद्धावस्था के कारण, आपकी रुग्णावस्था अति चिन्ताजनक हो गयी। कटे हाथ का क्षत विषाक्त हो गया। २६ अप्रैल १८५८ ई० को भारत के महान् सैनिक, वीर-शिरोमणि, बाबू कुँवरसिंह, मातृभूमि को फिरंगियों की दासता के बन्धन से मुक्त करने की साधना में, संसार त्यागकर स्वर्गवासी हो गये।[4]

डा० रामसागर रस्तोगी
एम० ए०, पी०-एच० डी०

---

१. जी० डब्लू० फॉरेस्ट : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग ३, पृ० ४७० ।

२. वही, पृ० ४७२ ।

३. चार्ल्स बाल : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग २, पृ० २८८ ।

४. जी० डब्लू० फॉरेस्ट : 'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' भाग ३, पृ० ४७३ ।

महारानी लक्ष्मीबाई

जन्म तथा बाल्यकाल :—बाजीराव पेशवा के साथ में बिठूर (ब्रह्मावर्त) में महाराष्ट्र से सहस्रों आश्रित मराठे चले आये थे। इनकी संख्या लगभग आठ सहस्र बतलायी जाती थी। बाजीराव की पेंशन का एक बड़ा भाग इन्हीं लोगों पर खर्च होता था। पेशवाई परिवार वालों की संख्या ही लगभग ३०० के थी, जिनको बाजीराव २७००) मासिक वेतन के रूप में देते थे।[1] इन आगन्तुकों में मोरोपन्त भी आ मिले थे। इनके पिता बलवन्तराय पेशवा की सेना में सेनानायक थे, और श्री चिम्माजी अप्पा के साथ काशी चले आये थे। वहाँ उनकी धर्मपत्नी भागीरथीबाई की कोख से १६ नवम्बर १८३५[2] तदनुसार कातिक बदी चतुर्दशी संवत् १८९२ को एक कन्या का जन्म हुआ। यही आगे चलकर इतिहास-प्रसिद्ध महारानी लक्ष्मीबाई हुईं।

लक्ष्मीबाई का बचपन का नाम मनुबाई अथवा मणिकर्णिकाबाई था। सन् १८३६ ई० में चिम्माजी के देहान्त के कुछ वर्ष पश्चात् मनुबाई के माता-पिता काशी से बिठूर चले आये। वहाँ बाजीराव ने उन्हें ५०) मासिक पर नौकर रख लिया। दो वर्ष पश्चात् इनकी माता का देहान्त हो गया। पालन-पोषण का भार इनके पिता पर पड़ा। आरम्भ से ही मनु ने, जिनका दूसरा नाम बहिन छबीली हो गया था, रणविद्या की शिक्षा ग्रहण की। बाजीराव छबीली की दक्षता अथवा चपलता से बहुत प्रभावित हुए। वे इनको "मैना छबीली" के नाम से पुकारने लगे। नाना धुँधूपन्त तथा छबीली का पालन-पोषण साथ ही साथ होने लगा। वे दोनों भाई-बहिन की भाँति बड़े होने लगे।

लक्ष्मीबाई के विवाह की चिन्ता :—बाजीराव पेशवा ने मनु अथवा छबीली का पालन-पोषण बड़े लाड़-प्यार से किया। नाना, बाला और

---

१. 'आगरा नैरेटिव, फारेन'—अक्तूबर-दिसम्बर १८५२ ई०, (हस्तलिखित प्रति)।

२. पारसनीस के आधार पर।

छबीली सब एक ही दृष्टि से देखे जाने लगे। फलतः छबीली के विवाह का भी प्रबन्ध पेशवा ने अपने ऊपर ले लिया। झाँसी के राजा श्रीमन्त सरकार गंगाधरराव, जिनकी प्रथम पत्नी रामाबाई का देहान्त हो चुका था, विवाह करने के लिए उत्सुक थे। पेशवा द्वारा पंडितों ने उनसे प्रसंग छेड़ा। गंगाधरराव की अवस्था उस समय लगभग ४० वर्ष की थी, लक्ष्मीबाई केवल १४ वर्ष की। परन्तु बाजीराव ने यह सोचकर कि जो शिक्षा लक्ष्मीबाई को मिली है, जो दक्षता उन्होंने घोड़े की सवारी, तीर-तमंचा आदि में पायी है, उसका निर्वाह ऐसी ही जगह हो सकता है, इस सम्बन्ध के लिए स्वीकृति दे दी।

गंगाधरराव :—बाबा गंगाधरराव, झाँसी राज्य के संस्थापक स्वर्गीय शिवराम भाऊ के कनिष्ठ पुत्र थे। इनके बड़े भाई रघुनाथराव थे, जो १८३५ ई० में झाँसी की गद्दी पर बैठे। उनके शासन-काल में राज्य की व्यवस्था बिगड़ती गयी। राज्य पर ऋण बढ़ता गया। उन्हें कोढ़ का भी रोग था। सन् १८३६ ई० में गंगाधरराव ने ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन से प्रार्थना की कि शास्त्रों के अनुसार कोढ़ी राजा नहीं बन सकता, इसलिए रघुनाथ राव के स्थान पर उन्हें राजा बनाया जाय।[1] स्वर्गीय राजा रामचन्द्रराव की विधवा ने अपने दत्तक पुत्र कृष्णराव को राजा बनाने की प्रार्थना की। परन्तु कम्पनी के शासकों ने इन प्रार्थना-पत्रों पर कोई ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वे रघुनाथराव को राजा स्वीकार कर चुके थे। वही सबसे बड़े उत्तराधिकारी थे। बाबा गंगाधरराव की ओर से मिस्टर विलियम बैरन ने, जो सुप्रीम कोर्ट कलकत्ता के प्रमुख वकील थे, कम्पनी के शासन के सम्मुख, मूल प्रपत्र (document) के साथ अपना विवाद-कथन प्रस्तुत किया, परन्तु गवर्नर जनरल ने अपनी पहली आज्ञा रद्द करना उचित न समझा।[2] इसी प्रसंग में दत्तक पुत्र स्वीकार करने की नीति पर भी काफी लिखा-पढ़ी हुई। उत्तर-पश्चिमी प्रान्त के गवर्नर का विचार था कि इस प्रश्न के निर्णय करने से पहले स्वतन्त्र राजाओं तथा जागीरदारों में भेद समझना आवश्यक है। जो पूर्ण सत्ताधारी राजा हैं उन्हें हिन्दू-धर्म के अनुसार दत्तक पुत्र बनाने का पूर्ण

१. 'आगरा नैरेटिव, फारेन'—१८३६, संग्रह संख्या २१, उत्तर-पश्चिमी प्रान्त के गवर्नर की ओर से—अप्रैल, मई, जून १८३६ की प्रोसीडिंग (हस्तलिखित प्रति)।

२. वही : संग्रह संख्या १०, वर्ष १८३८–३९।

अधिकार है। परन्तु जिन राजाओं को कम्पनी के शासन ने अधिकार सौंपा है, और जो केवल बड़े जागीरदारों की भाँति कर एकत्रित करके अपना कार्य चलाते हैं, उन्हें दत्तक पुत्र बनाने या उत्तराधिकारी नियुक्त करने का अधिकार नहीं,[1] तथा कम्पनी के शासन पर इस प्रकार के उत्तराधिकारियों को स्वीकार करने का कोई उत्तरदायित्व नहीं। मुसलमान राजाओं के विषय में भी इसी प्रकार की कठिनाई थी। उनके विषय में मुस्लिम नियमों के अनुसार ही चलना अनिवार्य था। परन्तु केवल जागीरदारों की अवस्था-वाले राजाओं की निःसन्तान मृत्यु पर कम्पनी के शासन को जागीर अपहरण करने का पूर्ण अधिकार था।[2] निर्णय के अनुसार बुन्देलखण्ड-स्थित ब्रिटिश एजेन्ट को आदेश दिया गया कि वह सब राजाओं को इसकी सूचना दे दे।

रघुनाथराव की मृत्यु:—सन् १८३८ ई० में रघुनाथराव की मृत्यु होने के पश्चात् झाँसी की राजगद्दी के लिए पुनः झगड़ा आरम्भ हुआ। इस समय चार उम्मीदवार थे :—

(१) गंगाधरराव—रामचन्द्रराव के छोटे भाई।

(२) कृष्णराव—रामचन्द्रराव के दत्तक पुत्र।

(३) अलीबहादुर—रघुनाथराव के अवैध पुत्र।

(४) रघुनाथराव की विधवा।

इनमें से रामचन्द्रराव की विधवा सखूबाई ने अवसर देखकर अपने दत्तक पुत्र को गद्दी दिलाने के ध्येय से झाँसी के दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया। अलीबहादुर ने भागकर करेरा के दुर्ग में शरण ली। गंगाधरराव भागकर कानपुर पहुँचे। मध्य भारत के पोलिटिकल एजेन्ट फ्रेजर ने झाँसी आकर परिस्थिति को अपने वश में किया; गद्दी के उत्तराधिकारी निश्चित करने के लिए एक कमीशन नियुक्त हुआ। इसके निर्णय के अनुसार बाबा गंगाधरराव को राजा स्वीकार किया गया और वह सन् १८३९ ई० में गद्दी पर बैठे। परन्तु इस अवसर पर झाँसी तथा जालौन की सुरक्षा के लिए "बुन्देलखण्ड लीजियन" बनायी गयी। इसमें १,००० पदाति, ८०

१. 'आगरा नैरेटिव फारेन डिपार्टमेंट', अप्रैल १८३६ से दिसम्बर १८३७, संग्रह संख्या–नं० १६, हस्तलिखित प्रति।

२. 'आगरा नैरेटिव फारेन डिपार्टमेंट', अप्रैल १८३६ से दिसम्बर १८३७, पैरा ७२, हस्तलिखित प्रति।

इस प्रकार लगभग १० मास तक, ग्वालियर की पराजय के उपरान्त यह वीर मध्य भारत के ऊबड़-खाबड़ भू-भागों में, अंग्रेजी साम्राज्य की संपूर्ण शक्ति का सामना करता रहा। बिना युद्ध-सामग्री के, बिना किसी प्रकार के विश्राम के, अपनी सेनाओं सहित एक स्थान से दूसरे स्थान पर अंग्रेजी सेनाओं को छकाते हुए तात्या टोपे घूमते रहे। उन्होंने अपने इस काल में मराठों की प्रिय छापामार युद्धविधि का आश्रय लिया। शिवाजी के काल से यह विधि मराठों ने निरन्तर प्रयुक्त की। इस विधि के अनुसार कभी शत्रु-सेना का खुले स्थान में सामना नहीं किया जाता था। नीति जो अपनायी जाती थी वह यह थी कि क्रान्तिकारी तीव्रता से भागते जाते थे और शत्रु सेना की गतिविधि पर दृष्टि रक्खे रहते थे। जहाँ कोई दुर्बलता देखी, बाज की तरह झपटकर आक्रमण करते और शत्रु से जो कुछ मिला छीनकर फौरन फिर किसी जंगल में विलुप्त हो जाते।

इस युद्धविधि में, चूँकि यह उनकी राष्ट्रीय युद्धविधि थी, तात्या टोपे पारंगत थे। समकालीन पत्र 'फ्रैंड आव इंडिया' के एक पत्रकार ने लिखा था—"वह एक मराठे की तरह युद्ध करते थे न कि काले यूरोपियन की तरह और फलतः उनको वह सफलता प्राप्त होती है जोकि बहुधा एक राष्ट्रीय युद्धविधि को प्राप्त होती है।[1] अंग्रेजों ने एक से एक कुशल सेनापति भेजे जैसे, राबर्ट्‌स, मिचेल, शावर्स, होप ग्रांट आदि। सारे भारतवर्ष से सेनाओं को भेजा गया, परन्तु अंग्रेज उनको फिर भी उचित उपायों से पकड़ने में असफल रहे। और अंत में विश्वासघात का सहारा लेकर ही वे उनको पकड़ने में सफल हो सके।

एक अंग्रेज अधिकारी, जिसने उनका पीछा करने में भाग लिया था, लिखता है—

"प्रत्येक नया सेनानायक, जो मैदान में आता था, सोचता था कि वह तात्या को पकड़ लेगा। लम्बी-लम्बी दौड़ें लगायी जाती थीं, अधिकारी और

१. 'फ्रैंड आव इंडिया' (सीरामपुर से प्रकाशित एक समकालीन पत्र) भाग २४, १८५८; दिसम्बर १६, १८५८ का अंक। पृ० नं० ११८०, "He fights like a Maratha instead of a black European and has consequently the success which usually belongs to a national mode of warfare."



गणेश मंदिर, झाँसी
यहाँ पर रानी का विवाह हुआ था ।

घुड़सवार तथा तोपखाने की एक ब्रिगेड थी। इस पर ३,८३,१८६ रु० वार्षिक व्यय होने का अनुमान था।[1] झाँसी की पुलिस पर भी अंग्रेजों का अधिकार हो गया था। राज्य के ऋणों की जाँच आरम्भ हुई।[2] सन् १८४० ई० से बाबा गंगाधरराव के लिए १ लाख रुपये वार्षिक की धनराशि निश्चित हुई। राव रामचन्द्रराव की माता को १०,०००) प्रति मास; राव रघुनाथराव की विधवा तथा अलीबहादुर को ५००) की पेन्शन स्वीकृत हुई[3]। बाबा गंगाधरराव ने प्राचीन, झाँसी राजा की उपाधियाँ ग्रहण करने की प्रार्थना की। उनकी यह प्रार्थना स्वीकार की गयी।[4] परन्तु गंगाधरराव की झाँसी के किले में रहने के लिए प्रार्थना अस्वीकार कर दी गयी।[5] उनका दुर्ग में रहना अंग्रेजों ने आपत्तिजनक समझा। फलस्वरूप उन्हें बरवा सागर में एक निवास-स्थान दिया गया।

गंगाधरराव से लक्ष्मीबाई का विवाह:—पेशवा बाजीराव के आदेशानुसार गंगाधरराव ने लक्ष्मीबाई का पाणिग्रहण स्वीकार किया। लक्ष्मीबाई के पिता मोरो पन्त विवाह करने के लिए झाँसी चले आये। बताया जाता है कि झाँसी के गणेश मंदिर में वर-पूजा इत्यादि रीति पूरी की गयी। तत्पश्चात् कोठी कुँआ वाले भवन में भाँवरें पड़ीं। विवाह के अवसर पर आसपास के राजा भी आमन्त्रित हुए। विवाह के उपरान्त लक्ष्मीबाई ने राज्य की सभी बातों में दिलचस्पी लेना आरम्भ किया, परन्तु बाबा गंगाधरराव को यह सब पसन्द न था तथा उनको सीमित अधिकार ही प्राप्त थे। वास्तविक अधिकार झाँसी-स्थित अंग्रेजी नायब पोलिटिकल एजेण्ट कप्तान डनलप के हाथ में थे। जो कुछ अधिकार उन्हें प्राप्त हुए, उनके साथ बाबा गंगाधरराव को 'बुन्देलखण्ड लीजियन' स्वीकार

१. 'आगरा नैरेटिव फारेन डिपार्टमेंट', १८३८-३९, संग्रह संख्या १३, पैरा ३४, ३५।

२. वही : पैरा-३६।

३. वही : पैरा-३८।

४. वही : पैरा-३९।

५. वही : पैरा-४०।

करना पड़ा तथा मोटे नाम का एक इलाका कम्पनी को उसके व्यय के लिए देना पड़ा।[1]

सन् १८५० ई० में बाबा गंगाधरराव तथा रानी लक्ष्मीबाई ने कम्पनी के शासन से आज्ञा लेकर प्रयाग, काशी तथा गया की तीर्थयात्रा की। माघ सुदी ७ संवत् १६०७ अर्थात् सन् १८५० ई० में काशी पहुँचे। अंग्रेजी शासन की ओर से महाराज के सम्मानार्थ स्थान-स्थान पर अच्छा प्रबन्ध किया गया था।

रानी लक्ष्मीबाई के पुत्र का जन्म:—सन् १८५१ ई०—संवत् १६०८ की अगहन सुदी एकादशी को गंगाधरराव के पुत्र उत्पन्न हुआ।[2]

झाँसी राज्य में अपूर्व आनन्द छा गया। सब लोगों ने महाराज को बधाई दी।

परन्तु यह बच्चा तीन महीने की आयु पाकर मर गया। राजा के ऊपर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। उनका स्वास्थ्य गिरने लगा। दो वर्ष तक उनका समय कष्ट से बीता। सन् १८५३ ई० को गंगाधरराव संग्रहणी रोग से पीड़ित हो गये। निःसन्तान मृत्यु हो जाने के भय से गंगाधरराव ने दत्तक पुत्र बनाने का निश्चय किया।

दामोदरराव को गोद लेना:—दामोदरराव को स्थानीय लेखकों ने वासुदेवराव नेवालकर का पुत्र बताया है। गोद लेने के समय उसकी अवस्था पाँच वर्ष की थी। झाँसी के सुप्रसिद्ध विद्वान् पुरोहित विनायकराव के निर्देशानुसार शास्त्रोक्त विधि से दत्तक विधान करवाया गया।

रुग्णावस्था के पश्चात् २१ नवम्बर सन् १८५३ ई० को राजा गंगाधरराव का देहान्त हो गया।

लार्ड डलहौजी तथा झाँसी का राज्य—गंगाधरराव की मृत्यु के पश्चात् १८५३ ई० में ही रानी लक्ष्मीबाई ने अपने दत्तक पुत्र के लिए राज्याधिकार प्राप्त करने के लिए कम्पनी के शासन से प्रार्थना की और लैंग जान वकील द्वारा गवर्नर जनरल के नाम, १८५४ में प्रार्थना-पत्र भेजा,

१. 'आगरा नैरेटिव', फारेन डिपार्टमेंट, १८३८-३६, संग्रह संख्या १३, पैरा ७१, हस्तलिखित प्रति।

२. 'सेलेक्शंस फ्राम स्टेट पेपर्स', 'दि इंडियन म्यूटिनी'—१८५७-५८ मध्यभारत, भूमिका पृ० २।

व ११ जुलाई १८५४ को द्वितीय खरीता प्रेषित किया। लार्ड डलहौजी की कौंसिल के एक सदस्य कर्नल लो ने, स्वतंत्र सत्तावाले राज्यों तथा कम्पनी पर आश्रित जागीरदारों के भेद पर प्रकाश डालते हुए झाँसी के बारे में लिखा :—

"झाँसी राज्य के भारतीय शासक कभी भी स्वतंत्र नहीं रहे। वे तो सदैव केवल स्वतंत्र राजाओं की प्रजा रहे, प्रथम पेशवा के, तत्पश्चात् कम्पनी के; इसलिए शासन को पूर्ण अधिकार है कि वह झाँसी की जागीरों को ब्रिटिश शासन में ले ले।"[1]

लार्ड डलहौजी ने भी एक शासकीय प्रपत्र में घोषणा की :—

"........क्योंकि राजा उत्तराधिकारी छोड़े बिना ही मर गया है, तथा गत ५० वर्षों के अन्य राजाओं का भी कोई पुरुष-उत्तराधिकारी नहीं है, इसलिए ब्रिटिश शासन का दत्तक पुत्र को अस्वीकार करने का अधिकार निर्विवाद है।"

लार्ड डलहौजी ने गत दो शासकों के राज्यकाल में प्रजा की दुःखभरी कहानी का भी वर्णन किया और कम्पनी का शासन सँभालने के उत्तरदायित्व पर प्रकाश डाला। फलस्वरूप २७ दिसम्बर १८५४ ई० को डलहौजी ने झाँसी राज्य को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया।

रानी लक्ष्मीबाई के लिए पेन्शन :—झाँसी की रानी अपनी प्रार्थना के अस्वीकार होने पर बहुत रोष में भर गयीं। उस समय उनकी अवस्था १६ वर्ष की थी। उनके सामने पेशवा की मृत्यु के पश्चात् नाना धुँधूपन्त की ८ लाख की पेन्शन बन्द होने का उदाहरण उपस्थित ही था। फलतः उन्होंने क्रुद्ध होकर कहा—"मेरा झाँसी नहीं देऊँगी"—अर्थात् 'मैं अपनी झाँसी न दूँगी।'[2]

झाँसी राज्य अपहरण कर लेने के पश्चात् कम्पनी के शासन ने ६,००० पौंड वार्षिक अथवा ५,००० रु० मासिक धनराशि पेंशन निश्चित की। पहले रानी ने पेंशन लेने से इन्कार किया, फिर स्वीकार कर लिया। परन्तु रानी के क्रोध की सीमा न रही जब उनसे, अपने पति के समय के राज्य-ऋण को चुकाने के लिए कहा गया।

---

१. ली० वारनर : 'डलहौजी की जीवनी'—खण्ड २—पृष्ठ १६५-१६७।

२. लैंग जान : 'वान्डरिंग्स इन इंडिया'—लन्दन, जुलाई १५, १८५६, पृ० ८४-६६।

झाँसी तथा नौगाँव में क्रान्ति की चिनगारियाँ :—सन् १८५७ ई० के प्रारम्भिक महीनों में झाँसी तथा नौगाँव स्थित पदाति सेना की १२ टुकड़ी के सैनिकों में असन्तोष की लहर दौड़ने लगी। जैसे जैसे बारकपुर तथा अम्बाला आदि स्थानों में अग्निकांड की घटनाएँ होने लगीं, नौगाँव में भी उसी प्रकार की कार्यवाहियाँ हुई।[1] झाँसी में यह समाचार बड़े जोरों से फैलाया गया कि सैनिकों को हड्डियों का चूर्ण मिला हुआ आटा खिलाकर धर्म-भ्रष्ट किया जायेगा। फलतः जब मेरठ में क्रान्ति का श्रीगणेश हो गया तो झाँसी तथा नौगाँव में सैनिकों ने तैयारियाँ आरम्भ कीं। २३ मई १८५७ को मेजर कर्क को नौगाँव में यह पता चल गया कि भारतीय सैनिकों के पास पत्र द्वारा मेरठ व दिल्ली की क्रान्ति की सूचना आ गयी है। झाँसी जिले के सुपरिन्टेंडेंट मेजर स्कीन ने कप्तान गार्डन द्वारा पकड़े गये कुछ सैनिकों के पत्र नौगाँव स्थित मेजर कर्क के पास जाँच के लिए भेजे। इन पत्रों से ज्ञात हुआ कि लच्मणराव नाम का ब्राह्मण, जो झाँसी की रानी का एक सेवक था, सेना की १२वीं रेजीमेंट के सैनिकों से मिलकर क्रान्ति की तैयारी कर रहा था।[2] यह ठीक तरह से मालूम न हो सका कि लच्मणराव को रानी की आज्ञा प्राप्त थी अथवा वह अपनी ओर से यह कार्य कर रहा था। इस घटना से सतर्क होकर अंग्रेजों ने नगर के किले में मोर्चाबन्दी आरम्भ की। गुप्त रूप से बँगलों में से अंग्रेज परिवारों को हटाकर किले में पहुँचाया जाने लगा। किले में गोरे गादवार भी रहने का प्रबन्ध किया जाने लगा। सैनिकों में क्रान्ति की तैयारियाँ धीरे-धीरे हो रही थीं। ३१ मई को कोंच के ठाकुरों ने स्वतन्त्रता की घोषणा की। इसकी सूचना झाँसी १ ता० को पहुँची।

झाँसी में विस्फोट :—चौथी जून १८५७ ई० को, जिस दिन कानपुर में क्रान्ति का श्रीगणेश हुआ, झाँसी में भी क्रान्ति का विस्फोट हुआ। सबसे पहले सैनिकों ने तारागढ़ (स्टार-फोर्ट) पर धावा बोला। इसी में तोपखाना तथा खजाना था। जब अंग्रेज अपनी बची-बचाई सेना लेकर

१. 'दि इंडियन म्यूटिनी, १८५७-५८' नौगाँव में अग्निकाण्ड : मध्यभारत की भूमिका, पृ० ७।

२. वही : कप्तान पी० जी० स्काट की आख्या, पष्ट—ए

भूमिका : पृ० ३ से पता चलता है कि और भी अन्य पुरुष साधुओं तथा भिखारियों के भेष में क्रान्ति की चिनगारियाँ सुलगा रहे थे।

वहाँ पहुँचे तो उन्हें तारागढ़ खाली मिला। अंग्रेजों ने घबरा कर बड़े किले में छिपकर अपनी रक्षा करने का निश्चय किया। इस घटना की सूचना डनलप ने इन शब्दों में भेजी।[1]

झाँसी, जून ४, १८५७, ४ बजे सायंकाल।

"महोदय,—तोपची तथा पदाति दोनों ने विद्रोह कर दिया है, और तारागढ़ (स्टार-फोर्ट) में घुस गये हैं। अभी तक किसी को चोट नहीं आयी है।"

"जे० डनलप"

---

४ जून की सायंकाल को सब अंग्रेजों ने भागकर बड़े किले में शरण ली। ६ जून तक दोनों ओर तैयारी होती रही।[2] ६ जून की शाम को कप्तान डनलप तथा एनसाईन टेलर को, जो सैनिकों से बार-बार परेड कराते थे तथा उनसे स्वामिभक्त बने रहने के लिए कहते थे, परेड के मैदान में ही गोली मार दी गयी। डनलप तो वहीं मर गया, टेलर घायल हुआ। तत्पश्चात् क्रान्ति ने उग्र रूप धारण कर लिया। ५० सवार तथा ३०० पदाति सैनिकों ने ओरछा द्वार से नगर में प्रवेश किया और जेल दारोगा बख्त अली के नायकत्व में "दीन! दीन!" के नारों के साथ झाँसी में स्वतन्त्रता-संग्राम का श्रीगणेश किया। अंग्रेजों ने बड़े किले के दरवाजे बन्द कर लिये। परन्तु किले में पर्याप्त खाद्य सामग्री न थी। केवल ५५ अंग्रेज थे, जिनमें स्त्रियाँ तथा बच्चे भी सम्मिलित थे। क्रान्तिकारियों ने तुरन्त ही किले को घेर लिया। २ दिन में ही अंग्रेज परेशान हो गये तथा रानी लक्ष्मीबाई से सहायता माँगने लगे।[3] एन्ड्रूज़, परसेल तथा स्काट मुसलमानी वेष बदल

---

१. चार्ल्स बाल : 'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी' खण्ड १। देखिए मेजर एलिस द्वारा भेजा हुआ तार, समय—८ बजकर २५ मिनट, सोमवार दिनांक २६ जून, नागोड, कनसल्टेशन सं० १७१/३१७, नेशनल आरकाइव्ज, नयी दिल्ली।

२. 'सेलेक्शंस फ्राम स्टेट पेपर्स' 'दि इन्डियन म्यूटिनी' २६--२७ : ७ जून को झाँसी से, ग्वालियर से सहायता की माँग आयी। कप्तान मरे कुछ सैनिक लेकर झाँसी की ओर चला, परन्तु ८ ता० की घटनाओं की खबर सुनकर रास्ते से ही लौट आया।

३. वही : एक बंगाली का लिखित बयान, पृ० ५, परिशिष्ट—ए

कर रानी के पास जाने का प्रयत्न कर रहे थे, किन्तु रास्ते में ही पकड़े गये। वे रानी के महल ले जाये गये परन्तु रानी ने उनसे मिलने से इन्कार कर दिया।[1] उन्हें वापिस रिसालदार के पास भेज दिया गया। महल से बाहर ले जाकर तीनों दूतों को मौत के घाट उतार दिया गया। सायंकाल पुनः किला जीतने का प्रयत्न किया गया। इस समय तक रानी के अपने सैनिक तथा हाथी, तोपें इत्यादि क्रान्तिकारियों को उपलब्ध हो गयी थीं। इतनी शक्ति के एकत्र होने से अंग्रेज भयभीत हो गये। सैनिकों ने उनसे किला खाली करने के लिए कहा। किला चारों ओर से घिरा था। दो द्वार टूटे जा रहे थे, व सहायता की कहीं से आशा न थी। अंग्रेजों के लिए सिवाय हथियार डालने के कोई और चारा नहीं था। कप्तान स्कीन ने रानी से, उन्हें कुशलपूर्वक झाँसी से चले जाने देने की याचना की। यह बताया जाता है कि इस समय सैनिकों ने उन्हें इस बात का आश्वासन दिया।[2] परन्तु समकालीन आगरा नैरेटिव फारेन डिपार्टमेंट की हस्तलिखित प्रति में इन सब बातों का कोई उल्लेख नहीं है। एक पदाधिकारी, जो भेष बदलकर झाँसी से निकल भागा था, लिखता है कि जिस समय अंग्रेज किले से निकले क्रान्तिकारी सैनिक दल फाटक के दोनों तरफ दो कतारों में लैस खड़े थे। उन्होंने किले से निकलते ही अंग्रेजों को पकड़कर रस्सों से बाँध लिया। तब उन्हें जोखनबाग में ले जाया गया। वहाँ उन्हें मृत्युदण्ड दिया गया। इस घटना के बारे में अंग्रेजों ने सहस्रों झूठी तथा बे सिर-पैर की अफवाहें उड़ाईं तथा सैनिकों पर लांछन लगाया कि उन्होंने स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार किया। बम्बई टाइम्स समाचार-पत्र में इस प्रकार के पत्र छपे। शासन की ओर से कप्तान पिन्किनी ने "पूना आबजरवर" समाचार-पत्र में इस लांछन का खण्डन किया तथा उसे गजट में भी छपवाने की आज्ञा दी।[3]

रानी लक्ष्मीबाई :—झाँसी की रानी तथा क्रान्ति के सम्बन्ध में

---

१. **सेलेक्शंस फ्राम स्टेट पेपर्स, दि इन्डियन म्यूटिनी**, एक बंगाली का लिखित कथन, परिशिष्ट ए, रानी ने इन शब्दों में उत्तर दिया "She had no concern with the English swine.'

२. वही, श्रीमती मटलोव का कथन, परिशिष्ट—ए

३. 'आगरा नैरेटिव', हस्तलिखित प्रति, अप्रैल—सन् १८५८ ई०, संग्रह संख्या ५२, संख्या १०६-११०, पैरा ८५, झाँसी हत्याकाण्ड।

इतनी तरह की बातें प्रचलित हैं कि उन सब पर प्रकाश डालना असम्भव है। इतना तो अवश्य निश्चय होता है कि रानी के सैनिक झाँसी की क्रान्ति में पूर्ण रूप से सम्मिलित थे। किले पर धावा बोलने से पहले रानी ने अपने हाथी, धन तथा सैनिक सबको क्रान्तिकारियों के सुपुर्द कर दिया था।[1] बख्शिशअली, मोरोपन्त,[2] गुलजार खाँ तथा गुरुबख्शसिंह क्रान्ति के नायक थे। ८ जून १८५७ ई० को सायंकाल झाँसी नगर में यह घोषणा की गयी कि :—"ख़ल्क खुदा की, मुल्क बादशाह का; हुकूमत महारानी लक्ष्मीबाई की"। इसकी पुष्टि उत्तर-पश्चिमी प्रान्तीय प्रोसीडिंग–पोलिटिकल फारेन डिपार्टमेंट–की हस्तलिखित तथा अप्रकाशित प्रति में दिये गये निम्नलिखित अवतरण से होती है :—

"१० जून
११ जून } कोई विशेष समाचार नहीं।

१२ जून : जालौन के स्थानापन्न अतिरिक्त सहायक कमिश्नर लेफ्टिनेन्ट जे० एच० लैम्ब ने सूचना दी...........

"....कि झाँसी की रानी ने महारानी की उपाधि ग्रहण कर ली है और समस्त तहसीलदारों को तथा अन्य अधिकारियों को अपने साथियों के साथ उनकी सहायता करने के लिए आज्ञा दी गयी।[3]

राज्य की बागडोर सँभालते ही रानी ने १४,००० की सेना एकत्रित की तथा २० तोपें तैयार कीं, जो कि किले में छिपी हुई दबी पड़ी थीं। अंग्रेजों को इनका पता न था।[4] रानी ने टकसाल जारी की। झाँसी पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो गयी। सेना की एक टुकड़ी मुहम्मद बख्त अली, जो पहले झाँसी

---

१. 'पार्लियामेंट्री पेपर्स'—१८५७–संलग्न प्रपत्र ७८ संग्रह सं० ३ में यह कहा गया है कि जोखनबाग हत्याकाण्ड होने के पश्चात् रानी ने क्रान्तिकारियों को ३५००० रु०, दो हाथी तथा ५ घोड़े दिये। इसमें कोई तथ्य नहीं मालूम होता क्योंकि हाथी, घोड़े तो किले पर धावा बोलने के समय ही क्रान्तिकारियों से मिल गये थे।

२. रानी लक्ष्मीबाई के पिता। मेजर स्कीन के खानसामा का लिखित बयान ता० २३ मार्च १८५८।

३. ३० जून १८५७ का साप्ताहिक विवरण, संग्रह नं० १६७। (मैलेसन ने रानी की उपाधि ग्रहण करने की तारीख ६ जून बताई है।)

४. 'पार्लियामेन्ट्री पेपर्स' नं० ७८।

जेल का दारोगा था, के नेतृत्व में दिल्ली की ओर रवाना हुई। झाँसी से उरई, काल्पी, इटावा, मैनपुरी तथा अन्य जिलों में क्रान्ति की अग्नि को प्रज्वलित करती हुई यह सेना १६ जुलाई १८५७ को दिल्ली दरबार में पहुँची।[1]

झाँसी का स्वतन्त्र शासन :—झाँसी की क्रान्ति के विषय में अनेक भ्रान्तियाँ हैं। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि उनमें से अधिकतर अविश्वसनीय हैं। झाँसी की रानी ने परिस्थिति को देखते हुए बहुत बुद्धिमत्ता से कार्य किया। सैनिकों को क्रान्ति के लिए कानपुर, मेरठ, दिल्ली से गुप्त आदेश प्राप्त थे। फिरंगियों को मारना, खजाना लूटना, तोपखाना तथा किले पर अधिकार करना यह सब ठीक समय पर बहुत ही सरलता के साथ पूर्ण किया गया। रानी लक्ष्मीबाई को इसमें अधिक कार्य करने की आवश्यकता न थी। निश्चित योजना के अनुसार झाँसी में भी मुहम्मदी पताका फहराई गयी तथा सेना के लगभग ५०० वीर बख्शिशअली के नायकत्व में दिल्ली की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए गये। कानपुर तथा झाँसी में एक ही दिन क्रान्ति का होना, तथा रानी का पेशवा नाना धूँधूपन्त की योजना को कार्यान्वित करना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं। नाना साहब की भाँति रानी भी देश की स्वतन्त्रता के लिए सर्वस्व न्योछावर करने को उद्यत थीं। फलतः इससे पहले कि झाँसी राज्य में गद्दी के विभिन्न उम्मीदवार अशान्ति व अराजकता पैदा करें उन्होंने १२ जून तक राज्य की सत्ता अपने हाथ में ले ली। इसकी पुष्टि स्वयं अंग्रेजी शासन द्वारा संचित रेकार्डों से हो ही गयी। हाँ, इतना अवश्य है कि झाँसी में तथा आसपास के रजवाड़ों में ऐसे व्यक्ति बहुत से थे जो रानी के शत्रु थे व अराजकता फैलाकर अपना वैभव बढ़ाना चाहते थे। इनमें से सदाशिव राव ने गाँवों में जाकर, करेरा में अपनी मनमानी करना आरम्भ किया। बुन्देलखण्ड के अन्य राज्यों में भी खलबली मची हुई थी। बारकपुर के राजा मर्दानसिंह तथा शाहगढ़ के राजा बख्तअली ने झाँसी से सागर तक क्रान्ति की ज्वाला प्रज्वलित कर दी। परन्तु कुछ राज्यों ने प्रतिक्रिया का भी बीड़ा उठाया। इनमें से ओरछा तथा दतिया की रियासतें थीं।

१. 'पार्लियामेन्ट्री पेपर्स', बहादुरशाह का ट्रायल, मुहम्मद बख्त अली का बहादुरशाह के नाम १६ अगस्त १८५७ का प्रार्थना-पत्र। कुछ लेखक इसका नाम बख्शिश अली बताते हैं।

सैनिक अपना सारा सामान फेंक देते थे, यहाँ तक कि खीमे भी, और चालीस मील प्रतिदिन तक चले—पर विद्रोही पचास मील चले गये थे। अंत यह होता था कि हमारे सारे घोड़ों की पीठें छिल जाती थीं और एक सप्ताह या दस दिन तक विश्राम आवश्यक हो जाता था। तब सी० बी० (एक प्रकार का आदर) एवम् तात्या के सर का एक नया आकांक्षी और ताजी सेना और ऊँट क्षेत्र में लाता। उसको कदाचित् तात्या का पीछा मात्र ही नहीं करना था वरन् अपने से उच्च पदाधिकारी द्वारा संचालित सेना से भी बचना पड़ता था। उनका पीछा करने के लिए जो शक्ति लगायी गयी थी वह आश्चर्यजनक थी और सैकड़ों मृत ऊँट जंगलों के प्रत्येक मार्ग पर छितरे पड़े थे। पीछा करनेवालों और जिनका पीछा हो रहा था उनके लिये मार्ग या नदी कोई बाधा नहीं थे। वह तब तक पीछा करते जब तक कि मरणासन्न न हो जाते। कभी-कभी जो अधिक भाग्यशाली होता था, भागनेवालों तक पहुँच पाता था और पीछे रहनेवालों को काट डालता था। पर ऐसा सदैव घने जंगलों में होता था; उनको (क्रांतिकारियों को) सदैव सर्वोत्तम सूचना रहती थी और जब कभी अंग्रेजी सेना निकट होती थी तो खुले क्षेत्र में नहीं आते थे। हमारे पास उन राजाओं के राज्य में, जोकि मौखिक रूप से हमारे मित्र थे, भी निकृष्टतम सूचना रहती थी। लोगों की सहानुभूति उनके (क्रांतिकारियों के) साथ थी।"[1]

---

१. 'रिवोल्ट इन सेंट्रल इंडिया' पृ० २१५।

"Each fresh commandant who took the field fancied he could catch Tantia. Prodigious marches were made, officers and men threw aside all baggage, even their tents and accomplished upwards of forty miles daily—the rebels did fifty. The end was all our horses were sorebacked, and the halt of a week or ten days rendered absolutely necessary. Then came a new as pirant for a C. B. and Tantia's head, who brought fresh troops and camels into the field. He perhaps had not only to chase Tantia but to keep clear of other forces commanded by a senior in rank to himself. It was wonderful the amount of energy that was thrown into the pursuit, and the hundreds of dead camels strewn over every jungle track: roads were no object, or river either, to pursued or pursuers.

ओरछा से युद्ध :—झाँसी में क्रान्तिकारी शासन स्थापित होने के पश्चात् झाँसी की रानी को ओरछा से युद्ध करना पड़ा। वर्षों पहले ओरछा अर्थात् टेहरी के राज्य में झाँसी राज्य का अधिकतर भाग सम्मिलित था। १० अगस्त को टेहरी की सेना ने मऊरानीपुर पर अधिकार कर लिया। बेतवा तथा धसान नदियों के बीच के भाग को रौंद डाला। बरवा-सागर पर अधिकार स्थापित कर झाँसी को घेर लिया। यह घेरा ३ सितम्बर से २२ अक्तूबर १८५७ ई० तक बना रहा। टेहरी राज्य के अधिकारी अपने को अंग्रेजों की ओर से लड़ते हुए बतलाने लगे।

अक्तूबर माह में ग्वालियर में नाना साहब तथा झाँसी की रानी के वकील राज्य के सेनानियों को क्रान्ति में सम्मिलित होने के लिए बुलाने पहुँचे।[1] अब ग्वालियर की सेना सिन्धिया के रोकने से भी नहीं रुक सकी। फलतः अंग्रेज रेजीडेंट ने भी सिन्धिया को उन्हें जाने की आज्ञा देने की सलाह दे दी। वह केवल यह चाहता था कि क्रान्तिकारी आगरा के स्थान पर झाँसी तथा कानपुर जायँ। फलस्वरूप १५ अक्तूबर को ग्वालियर की सेना ने क्रान्तिकारी दलों में सम्मिलित होना स्वीकार किया। तात्या टोपे की अध्यक्षता में सेना ने जालौन तथा कछवागढ़ पर अधिकार कर लिया। २२ अक्तूबर को झाँसी की रानी ने भी ग्वालियर से कुछ सहायता आ जाने पर टेहरी के सैनिकों को मार भगाया। इस समय राजा बाणपुर ने झाँसी की सहायता करके टेहरी की सेना को हराने में महारानी लक्ष्मीबाई को सहायता दी।[2] जनवरी १८५८ ई० तक रानी की सेना ने पूर्ण विजय पायी। १ मार्च १८५८ ई० को बेतवा तथा धसान नदियों के मध्य से भी टेहरी की सेना को बाहर निकाल दिया।[3]

रानी लक्ष्मीबाई के सहायक राजा बाणपुर ने चन्देरी क्षेत्र में अपना अधिकार कर लिया तथा जनवरी १८५६ ई० तक सागर क्षेत्र का अधिकतर भाग भी उसी के अधिकार में आ गया था।

१. 'पार्लियामेंट्री पेपर्स—नेटिव प्रिंसेज'—सिंधिया—ग्वालियर के पोलिटिकल एजेन्ट मैक्फरसन की आख्या पृ० १०७।

२. 'म्यूटिनी नैरेटिव्ज़—झाँसी'—पिन्किनी कमिश्नर की २० नवम्बर १८५८ की आख्या, पृ० १५, पैरा ७८।

३. 'दि रिवोल्ट इन सेन्ट्रल इण्डिया'—१८५७-५६, पृ० २५।

झाँसी तथा ग्वालियर—झाँसी में क्रान्ति की सफलता का ग्वालियर दरबार पर बड़ा प्रभाव पड़ा। २० वर्षीय महाराजा सिन्धिया घबराकर रेजीडेन्ट से मिला। दीवान भी उसके साथ था। दरबार के अधिकतर सरदार व जागीरदार क्रान्तिकारियों से आरम्भ से ही सहानुभूति रखते थे। क्रान्ति-विषयक दरबार की राय झाँसी की रानी तथा अन्य नेताओं के घोषणा-पत्रों में दी हुई बातों से मिलती थी। मैक्फरसन द्वारा दिये गये विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है[1] :—

ग्वालियर दरबार तथा क्रान्ति—पैरा ७—दरबार के विचार से बंगाल सेना को विश्वास हो गया था कि चिकनी कारतूसों के द्वारा, हिन्दू तथा मुसलमान धर्मों पर आघात होगा तथा ईसाई धर्म का पक्ष बढ़ेगा।

सेना ने, जो विद्रोह के लिए पहले से ही तैयार थी, इस शिकायत को कारण बनाकर, अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकने का अवसर ढूँढ़ निकाला।

(८) यह तो जाँच से ही ज्ञात होगा कि विद्रोहाग्नि प्रज्वलित करने वाले कौन षड्यन्त्रकारी थे। हमारे शासन के सर्वप्रमुख शत्रुओं ने अवसर को हाथ में लिया और विद्रोह भड़काया। दिल्ली के बादशाह ने उसकी अध्यक्षता की और इससे जन-साधारण में यह दृढ़ विश्वास हो गया कि हमारी शक्ति उखाड़ फेंकी जायगी तथा दिल्ली की राज-सत्ता पुनः स्थापित हो जायगी।

(९) सेना तो पहले से ही विद्रोह के लिए प्रस्तुत थी, और भारतीय प्रजा के साथ वह भी हमारे शासन से असन्तुष्ट थी। यदि ऐसी विद्रोह की भावना पहले से विद्यमान न होती, तो कारतूस की शिकायत, चाहे कितनी ही उचित एवं बलवती क्यों न होती, सेना उसे विद्रोह का कारण न बनाती। उसका निवारण विश्वास दिलाने तथा स्पष्टीकरण देने से हो जाता। कोई भी असन्तुष्ट राजा या पुजारी, इसके द्वारा, सेना को हमारे शासन को दिल्ली के शासन द्वारा बदलने के लिए षड्यंत्र में मिला न सका। विशेषतः जब कि हिन्दुओं व मुसलमानों में पारस्परिक वैमनस्य था, जैसा कि अवध के एक मन्दिर की दुर्घटना में पाया गया था।

---

१. 'पार्लियामेंट्री पेपर्स'—नेटिव प्रिन्सेज आव इंडिया, ईस्ट इंडीज, १८६०, सिन्धिया—मेजर एस० सी० मैक्फरसन, पोलिटिकल एजेन्ट, ग्वालियर द्वारा सर आर० हैमिल्टन को प्रेषित आख्या—दिनांक आगरा—१० फरवरी १८५८।

परन्तु, हमारे जन-साधारण में शासन के विरुद्ध असन्तोष से प्रभावित होकर सेना ने, कई विशेष उद्देश्यों से, अंग्रेजी सेना की संख्या को कम पाकर सरलता से विजय प्राप्त करने की आकांक्षा से, तथा साधारण जन-समुदाय की सहायता से, विद्रोह किया, तथा कारतूस की शिकायत को केवल एक बहाना तथा सांकेतिक शब्द (watch word) बनाया।

पैरा १३ : अस्तु दरबार के विचार से, हमारे शासन के विरुद्ध असन्तोष के मुख्य कारणों को निम्नांकित प्रचलित तथा कल्पनायुक्त शीर्षकों में संकलित किया जा सकता है :—

(१) भारतीय राज्यों का विनाश, तथा उसके हेतु हमारे उपाय।

(२) समाज के मुखियाओं तथा जागीरदारों में निराशा की भावना।

(३) पैतृक माफी भूमि को वापिस लेकर उन्हें जीवनकाल के लिए पट्टे (tenure) में परिवर्तित करना अर्थात् भूमि में पैतृक अधिकारों तथा लगान सम्बन्धी माफी इत्यादि की अवहेलना करना।

(४) लगान की बाकी अथवा न्यायालयों की डिग्री हो जाने पर जमींदारी भूमि से बेदखली।

(५) राज्य के लिए प्रशंसनीय कार्यों के करने पर भी उपाधियाँ अथवा जागीर प्रदान न करना।

(६) अधिकारियों, भारतीय जागीरदारों, समाज के मुखियाओं तथा जन-साधारण में पारस्परिक सहानुभूति तथा गोपनीय व्यक्तिगत संपर्क का अभाव।

(७) हमारे न्यायालयों का प्रबन्ध।

यह शीर्षक, कहने की आवश्यकता नहीं, अमले के भ्रष्टाचार, अवध के प्रश्न इत्यादि को भी सम्मिलित करते हैं।

पैरा १४ : हमारे सती प्रथा सम्बन्धी शासकीय कार्य तथा हिन्दू विधवाओं के विवाह के लिए प्रोत्साहन, अवश्य जन-साधारण को अस्वीकार थे; हमारी शिक्षा-सम्बन्धी कार्यवाही, जिसके साथ विशेष कर भी था, अथवा हमारा ईसाई धर्म-प्रचारकों को प्रोत्साहन जब कि शासन में धार्मिक विषयों में हस्तक्षेप न करने की नीति घोषित की थी; परन्तु उन्होंने विद्रोह को प्रज्वलित नहीं किया।

का नायकत्व सँभाला। जनवरी में सिहौर तथा इन्दौर से दुर्गध्वंसक तोपखाने का काफिला लेते हुए ह्यू रोज उत्तर की ओर बढ़ा। भोपाल से भी युद्ध-सामग्री एकत्रित की और महीने के अन्त तक रायगढ़ के दुर्ग पर क्रान्तिकारियों की सेना से मुठभेड़ हो गयी। क्रान्तिकारियों को भी अंग्रेजों की सरगर्मी के समाचार मिलते जा रहे थे। उनकी चालबाजियों को रोकने के लिए मालवा, इन्दौर, भोपाल, सागर, जबलपुर इत्यादि में क्रान्तिकारियों ने भरसक प्रयत्न किया। परन्तु दिल्ली की पराजय से बड़ा धक्का पहुँचा। फिर भी क्रान्तिकारी इस प्रकार जुटे रहे कि कोई घटना घटी ही नहीं। ग्वालियर की प्रमुख सेना स्वतंत्रता-संग्राम में कूद पड़ी और काल्पी को अपना गढ़ बनाकर कानपुर तक छापा मारा। नवम्बर में कानपुर की तीसरी लड़ाई के बाद वे सब काल्पी में आकर डट गये। रानी लक्ष्मीबाई ने बाणपुर के राजा से मुँहबोले भाई का सम्बन्ध स्थापित किया तथा उसकी सहायता से झाँसी के दक्षिणी प्रदेश की सुरक्षा का प्रबन्ध किया।

रहटगढ़ तथा गढ़ाकोटे का युद्ध—अंग्रेजों की दक्षिणी भारत से आयी हुई सेना से क्रान्तिकारियों की मुठभेड़ रहटगढ़ में २५ जनवरी १८५८ ई० को हुई। राजा बाणपुर ने २८ जनवरी को अंग्रेजी सेना के पृष्ठभाग पर आक्रमण किया। इस युद्ध में २,००० विलायती अफगानों ने भी भाग लिया। राजा का ध्येय गढ़ का घेरा बनाने का था। परन्तु भोपाल तथा हैदराबाद की सेना आ जाने से क्रान्तिकारी दल ने पीछे हटना आरम्भ किया। अंग्रेजी सेना जब रहटगढ़ के दुर्ग में पहुँची तब एक चिड़िया भी नहीं मिली।[1] रहटगढ़ से अंग्रेजी सेना ने बरोदिया तथा सागर पर अधिकार प्राप्त किया। सागर से बीस मील पूर्व में गढ़ाकोटे का दुर्ग था। झाँसी की सुरक्षा के लिए इसका महत्व बहुत था। फलतः बुन्देलखण्ड से क्रान्तिकारी सैनिकों ने अंग्रेजी सेना को रोकने के लिए दुर्ग की ओर कूच किया। १० फरवरी १८५८ ई० को क्रान्तिकारी सेनाएँ इस गढ़ को भी खाली करके बरोदिया की ओर बढ़ गयीं। इस समय ह्यू रोज को युद्ध-सामग्री की कमी मालूम हुई। वह झाँसी की ओर बढ़ने को बहुत उत्सुक था। स्थान-स्थान पर वह झाँसी की रानी की प्रशंसा तथा झाँसी के दुर्ग की दृढ़ता व झाँसी की महिला-सेना के बारे में सुनता आ रहा था। क्रान्तिकारी सेना का प्रसिद्ध नायक तात्या उस समय चरखारी को घेरे पड़ा था। लार्ड कैनिंग

---

१. सर ह्यू रोज का सैनिक प्रपत्र—सागर से—७ फरवरी १८५८ ई०



झाँसी का किला

ने ह्यू रोज को चरखारी के राजा की सहायता करने की आज्ञा दी, परन्तु उसने उसकी अवहेलना करके झाँसी की ओर बढ़ने का निश्चय किया। राजा बाणपुर ने झाँसी की रानी को संकटकालीन स्थिति से सचेत किया।[1]

झाँसी की रानी की राजाओं से विनती—फरवरी माह में रोज के साथ राजनीतिक अधिकारी हैमिल्टन के नाम रानी ने एक प्रपत्र की प्रतिलिपि भेजी जिसका शीर्षक "धर्म की विजय" था। इसमें राजाओं से प्रार्थना की गयी थी कि वे अपने धर्म की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दें।

धर्म की विजय[2]

(मुद्रा पर अंकित)

ब्रह्माण्ड का स्वामी केवल ईश्वर है।
उसका अनुशासन भी उसी के हाथ में है॥

"हे राजागण ! आप धर्मावलम्बी, शीलवान्, चरित्रवान तथा वीर और अपने तथा अन्य व्यक्तियों के धर्म के संरक्षक हैं; आपके ऐश्वर्य में वृद्धि हो : मैं आपसे निवेदन करती हूँ:—

१. गोडसे : माझा प्रवास : "झाँसी के पश्चिम में वेत्रवती (बेतवा) नदी के पास बाणपुर नाम का एक छोटा-सा राज्य है। यहाँ के राजा को लक्ष्मीबाई ने अपना बड़ा भाई माना है। बाणपुर का राजा गदरवाली पलटनों को अपने यहाँ आश्रय देता था। उसने सोचा कि इस शहर में अंग्रेजों के साथ अपनी लड़ाई तो होगी ही, इसलिए शहर के लोगों को यहाँ से जहाँ-तहाँ जाने का हुक्म देकर अपने कुटुम्ब और खजाने को झाँसी भेज दिया जाय। जब यह खबर लगी कि कप्तान साहब की पलटनें पास आने लगी हैं तो उसने तुरन्त अपनी रय्यत को बुलाकर कहा कि यहाँ थोड़े दिनों बाद जंग होगी, इसलिए तुम लोग अभी से इधर-उधर गाँवों में अपने रहने की व्यवस्था कर लो। इसके बाद राजा अपना खजाना और घर के लोगों को लेकर झाँसी आये। लक्ष्मीबाई ने उन्हें रहने के लिए एक अलग महल दिया........राजा फिर बाणपुर लौट गये।"

२. 'उत्तर-पश्चिमी प्रान्तीय ऐब्सट्रैक्ट (संक्षिप्त), नैरेटिव फारेन' : १४ फरवरी १८५८ की आख्या, अप्रकाशित हस्तलिखित प्रति,

"ईश्वर ने आपको दैवी पुण्य-कार्य सम्पन्न करने के लिए मनुष्य-शरीर दिया है; यह पुण्य-कार्य समस्त पुरुषों को उनके धर्म से दर्शाये गये हैं तथा उन्हें उनको सम्पन्न करने का आदेश भी है। हे राजागण! ईश्वर ने आपको, अपने धर्म के विनाशकों का सर्वनाश करने के लिए बनाया है; और उसी के लिए आपको शक्ति प्रदान की है, इसलिए यह युक्ति-संगत प्रतीत होता है कि जिनको शक्ति मिली है वह अन्य उपालम्भों को संचित करके अपना मन्तव्य पूर्ण करें तथा अपने धर्म की रक्षा करें।

"शास्त्रों ने घोषणा की है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपने धर्म का पालन करना ही सर्वोत्तम है, तथा दूसरे का धर्म अपनाना ठीक नहीं; ईश्वर ने स्वयं भी ऐसा ही कहा है। परन्तु यह सबको स्पष्टतः विदित है कि अंग्रेज प्रत्येक धर्म के भ्रष्ट करनेवाले हैं। अति प्राचीन काल से उन्होंने हिन्दू तथा मुसलमान धर्मों को अशुद्ध करने का प्रयत्न किया है। ऐसा करने के लिए उन्होंने पादरियों द्वारा धार्मिक पुस्तकें बनवाकर वितरित कीं तथा ऐसी पुस्तकों को, जिनमें उनके धर्म के विरुद्ध बातें दी थीं, नष्ट करवा दिया है। विश्वस्त सूत्रों से सुना है कि उन्होंने हमारे धर्म को भ्रष्ट करने के लिए कई विशेष प्रयत्न किये हैं :—

(१) बलपूर्वक विधवाओं का विवाह।

(२) सती की प्राचीन प्रथा का बन्द कराना।

(३) ईसाई धर्म स्वीकार करने वालों को अत्यधिक सम्मान; और हिन्दू राजाओं के केवल वैध शिशुओं को उत्तराधिकारी स्वीकार करना तथा दत्तक

सचिवालय रिकार्ड संग्रहालय, लखनऊ; उपर्युक्त प्रपत्र झाँसी क्षेत्र के नैरेटिव में निम्नांकित शब्दों में दिया गया है :—

"Nothing has been heard from these Districts of recent date........ ....

"Sir R. N. C. Hamilton has forwarded a translation of a letter to his address from the rebel Ranee of Jhansi professing her loyalty in general terms................

[circular letter..]

"Having regard to the part which the Ranee has played, it is not the intention of the Governor-General to notice this letter at present."

पुत्रों को उत्तराधिकार-च्युत करना, जब कि शास्त्रों ने उनको भी वही अधिकार दिया है जो वैध पुत्रों को।

"इस प्रकार की कूटनीतियाँ हैं जिनसे अंग्रेज हमको सिंहासनों तथा सम्पत्ति से च्युत करते हैं जैसे मैं नागपुर तथा अवध का उदाहरण देती हूँ।

"उन्होंने बन्दियों को उनकी (अंग्रेजों की) डबलरोटियाँ खाने पर बाध्य किया है। कुछ ने तो अनशन करके प्राण त्याग दिये और धर्म की रक्षा की; अन्य बन्दियों ने रोटियाँ ग्रहण करके अपना धर्म भ्रष्ट किया।*

"इन उपायों को भी असफल पाकर उन्होंने अस्थियों का चूर्ण बनाकर आटे तथा शक्कर इत्यादि में मिला दिया तथा उसे विक्रयार्थ प्रस्तुत किया। हर प्रकार से उन्होंने हमारे धर्म को भ्रष्ट करने का भरसक प्रयत्न किया। अन्ततोगत्वा एक बंगाली ने उनको यह सूचना दी कि :—

'यदि आपकी सेना आपका धर्म स्वीकार कर लेगी, तो हमें भी वैसा ही करने में कोई आपत्ति न होगी।'

"बंगाली के इस कथन की उन्होंने बहुत प्रशंसा की। फलतः उन्होंने ब्राह्मणोंतथा अन्य व्यक्तियों को, जो सेना में कार्य करते थे, मज्जायुक्त कारतूसों को दाँत से काटकर प्रयोग में लाने की आज्ञा दी। मुसलमानों ने उन्हें प्रयोग में लाने से इन्कार कर दिया। यद्यपि उन्हें इसका भास था कि कारतूसों का प्रयोग केवल हिन्दुओं के धर्म को ही प्रभावित करेगा। फिरंगियों ने दोनों जातियों के धर्मों को भ्रष्ट करने का निश्चय किया तथा उपर्युक्त बातों के होते हुए भी उन रेजीमेन्टों के सैनिकों को तोप से उड़वाना प्रारम्भ किया, जिन्होंने उन कारतूसों का प्रयोग करने से इन्कार किया। सैनिकों ने अपने प्रति ऐसा दुर्व्यवहार देखकर अपने धर्म की रक्षा करने का प्रयत्न किया; और उनको जहाँ पाया, वहीं मारा। वे अब भी उसी मार्ग का अनुसरण करने को तैयार हैं तथा उन्हें नष्ट-भ्रष्ट करने पर तुले हुए हैं।

"आपको यह विदित हो, कि यह फिरंगी जब तक भारतवर्ष में रहेंगे, हमें समूल नष्ट करने का प्रयत्न करेंगे। इतने पर भी हमारे कुछ देशवासी उन्हें सहायता दे रहे हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि फिरंगी उनके (समर्थकों के)

* देखिए, उत्तर-पश्चिमी प्रान्तीय जेल विभाग के संचालक की वार्षिक आख्या, सन् १८५४ ई०, 'ऐनल्स आव दि इंडियन रिबेलियन'

धर्म को भ्रष्ट किये बिना नहीं छोड़ेंगे।[1] आगे, क्या मैं पूछ सकती हूँ कि उन लोगों ने अपने धर्म तथा जीवन की रक्षा करने के लिए क्या उपाय किये हैं ?

"यदि आप सब और मैं एकमत हो जायँ, तो तनिक कष्ट तथा प्रयत्न से हम उनका (फिरंगियों का) सर्वनाश कर सकते हैं। और इसलिए मैंने धर्म तथा जीवन की रक्षा के लिए इस मार्ग को ढूँढ निकाला है। मैं हिन्दुओं को गंगा, तुलसी तथा शालिग्राम के नाम पर शपथ दिलाती हूँ तथा मुसलमानों को अल्लाह तथा कुरान के नाम पर; तथा उनसे विनती करती हूँ कि वह पारस्परिक भलाई के लिए, फिरंगियों का विध्वंस करने में सहायता दें।[2] हिन्दुओं में आदरणीय महानुभाव के लिए गोहत्या महापाप होता है। मुसलमान नेताओं ने, जिस दिन से हिन्दू फिरंगियों को मारने के लिए उद्यत हुए, गोहत्या बन्द करा दी है।[3]

"यदि कोई भी मुसलमान इस समझौते के विपरीत कार्यवाही करता है तो उसे अल्लाह के सामने घृणास्पद अभियोग का अभियुक्त समझा जायगा, और यदि वह गोमांस खायगा तो सुअर की भाँति समझा जायगा। तथा यदि हिन्दू फिरंगी को मारने में स्वयं प्रयत्नशील न होंगे, तो वे ईश्वर के सामने गोहत्या के अभियोगी समझे जायँगे तथा गोमांसभक्षी समझे जायँगे।

"सम्भवतः फिरंगी अपने स्वार्थवश हिन्दुओं को गोहत्या न करने का आश्वासन दें, परन्तु कोई भी बुद्धिमान् पुरुष उनके कृत्रिम आश्वासन पर विश्वास न करेगा। इसका मैं हिन्दुओं को पूर्ण आश्वासन दिलाती हूँ,

१. मध्यभारत तथा बुन्देलखण्ड में भोपाल, दतिया तथा ओरछा (टेहरी) के नरेश अंग्रेजों के पक्ष में थे और झाँसी के विरुद्ध युद्ध करके पराजित भी हो चुके थे।

२. झाँसी के युद्ध में रानी लक्ष्मीबाई को ग़ौस मुहम्मद जैसे गोलन्दाज तथा लगभग १२०० विलायती अफगान सैनिकों का सहयोग प्राप्त था। इन्होंने जिस वीरता से रानी का साथ दिया वह भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।

३. देखिये : दिल्ली के सम्राट् बहादुरशाह की गोहत्याएँ बन्द कराने की घोषणाएँ। 'प्रेस लिस्ट आव म्यूटिनी पेपर्स।'

क्योंकि ये लोग उद्दण्डतापूर्वक अपने वचनों को तोड़ चुके हैं । छोटे-बड़े, सभी को यह ज्ञात है कि ये लोग स्वभावतः अविश्वसनीय हैं, और इन्होंने भारतीयों के साथ विश्वासघात करने के अतिरिक्त कुछ नहीं किया है ।

"इस सुन्दर अवसर को हाथ से न जाने दिया जाय । आप लोगों को विदित हो कि ऐसा अवसर पुनः नहीं आवेगा ।

"क्योंकि पत्र आधी भेंट का कार्य करते हैं इसलिए आशा की जाती है कि उपर्युक्त प्रपत्र के विषयों पर गम्भीर विचार होगा तथा इसका उत्तर दिया जायगा ।"

यह प्रपत्र, जिसमें हिन्दू तथा मुसलमान दोनों को एकमत होकर चलने का आह्वान है, बरेली नगर में मौलवी सैयिद कुतुबशाह द्वारा बहादुरी प्रेस में प्रकाशित हुआ ।*

हस्ताक्षर : ई० सी० बेयली
स्थानापन्न उप-सचिव, उत्तर-पश्चिमी
प्रान्तीय शासन

झाँसी की रानी तथा अन्य क्रान्तिकारी नेता :—झाँसी में जून माह में स्वतंत्र शासन स्थापित होने के पश्चात् से ही रानी लक्ष्मीबाई का समय अधिकतर युद्ध करने अथवा युद्ध की तैयारी करने में बीता । इसलिए

* मौलवी सैयिद कुतुबशाह, बरेली के राजकीय महाविद्यालय में ३०) मासिक वेतन पर फारसी के अध्यापक थे । रुहेलखण्ड में क्रान्तिकारी शासन सम्पन्न होने पर राजकीय महाविद्यालय क्रान्तिकारी शासन का केन्द्र बन गया था । जब नाना साहब बरेली मार्च १८५८ ई० में आये थे तो उनके ठहरने के लिए उसे खाली कराया गया था । इसी में एक लिथो मुद्रणालय था । इस प्रपत्र की प्रतियाँ इसी में छपी थीं । १७ फरवरी १८५८ ई० का शाहजादा फीरोजशाह का महत्त्वपूर्ण घोषणापत्र भी इसी मुद्रणालय से प्रकाशित हुआ था । इस समय फीरोजशाह शाहजादा, भूपाल के नवाब आदिल खाँ आदि के साथ झाँसी में ही उपस्थित थे । देखिए : २२ व २३ फरवरी १८५८ की दतिया तथा झाँसी से हरकारों की गुप्त सूचनाएँ । फारेन सीक्रेट कनसल्टेशन्स--३० अप्रैल १८५८ नं० १३६ तथा फारेन पोलिटिकल कनसल्टेशन--३० दिसम्बर १८५१, नं० १४८० ।

उन्हें प्रारम्भ से ही अन्य क्रान्तिकारी नेताओं, राजाओं तथा नाना साहब से पत्र-व्यवहार करना पड़ा। काल्पी की पराजय के पश्चात् सर ह्यू रोज को काल्पी दुर्ग में रानी लक्ष्मीबाई का एक बक्स प्राप्त हुआ जिसमें, उनका अन्य क्रान्तिकारी नेताओं के साथ व्यावहारिक पत्रों का संकलन था।[1] इस पत्र-व्यवहार से अंग्रेजों को यह ज्ञात हुआ कि क्रान्ति के वास्तविक प्रवर्तक कौन थे।

उत्तर-पश्चिमी प्रान्तीय प्रोसीडिंग्स, जिनकी हस्तलिखित प्रतियाँ विधान भवन रिकार्ड संग्रहालय लखनऊ में उपलब्ध हैं, इस विषय में नवीन प्रकाश डालती हैं।

इनसे सर्वप्रथम १२ जून को रानी लक्ष्मीबाई द्वारा शासन की बागडोर सँभालने का पता चलता है।

द्वितीय : उत्तर-पश्चिमी प्रान्तीय राजकीय आख्याओं तथा प्रपत्रों को देखने पर कहीं पर भी यह पता नहीं मिलता कि झाँसी की रानी अंग्रेजों की ओर से युद्ध कर रही थीं। दूसरी ओर यह अवश्य मिलता है कि अंग्रेजों के मित्र-राज्य टेहरी, पन्ना, चरखारी, माऊ को पहले सहायता दी जाये।[2]

तृतीय : झाँसी की रानी का हैमिल्टन को "धर्म की विजय" नामक प्रपत्र की प्रतिलिपि।

चतुर्थ : रानी लक्ष्मीबाई को अंग्रेजी शासन ने स्वयं क्रान्ति का अग्रगण्य नेता समझा। लार्ड कैनिंग, गवर्नर-जनरल ने सर आर० हैमिल्टन को इलाहाबाद से ११ फरवरी १८५८ को यह पत्र लिखा[3] :—

प्रिय सर राबर्ट,

यदि नर्बदा की स्थल सेना झाँसी की ओर कूच करे, और यदि रानी

---

१. 'दि रिवोल्ट इन सेन्ट्रल इंडिया' : १८५७-५९ : पृ० १४३।

२. 'सेलेक्शंस फ्राम स्टेट पेपर्स' : दि इंडियन म्यूटिनी, १८५७-५८, खण्ड ४, मध्यभारत— परिशिष्ट (ई) हैमिल्टन द्वारा एडमान्स्टन सचिव, भारतीय शासन, परराष्ट्र विभाग को प्रेषित पत्र : दिनांक—मार्च १८५८, पृ० ८४।

३. वही : पृ० ७९-८०, परिशिष्ट—ई।

हमारे हाथों में आ जायँ, तो उन पर अभियोग चलाया जाय, कोर्ट-मार्शल द्वारा नहीं, परन्तु उनके लिए नियुक्त हुए कमीशन द्वारा।

सर एच० रोज को आदेश दिया जायगा कि वह उन्हें तुम्हारे सुपुर्द कर दे, और तुम सर्वोत्तम कमीशन, जो तुम्हारे पास उपलब्ध हो सके, नियुक्त करो।

यदि किसी कारणवश उनके बारे में तुरन्त निश्चय करना सम्भव न हो सके, और उन्हें झाँसी के निकट बन्दी बनाये रखने में कठिनाई हो, तो उन्हें यहाँ भेज दिया जाय। परन्तु यहाँ आने से पहले उनके अभियोग की सभी प्रारम्भिक जाँच समाप्त हो जाय। वह यहाँ किसी दुविधा में न आयें कि उन पर अभियोग चलाया जायगा या नहीं। मुझे पूर्ण आशा है कि तुम्हारे लिए, उनके अभियोग का स्थान पर ही प्रबन्ध करना सम्भव होगा। अभियोग के पश्चात् उनके साथ क्या बर्ताव किया जायगा, यह उनको दी गयी सजा पर निर्भर होगा........

(हस्ताक्षर) कैनिंग

उपर्युक्त कारणों से स्पष्ट हो जाता है कि हैमिल्टन, रोज इत्यादि झाँसी की रानी को बन्दी बनाने का गुप्त रूप से प्रयत्न कर रहे थे। रानी लक्ष्मीबाई भी दत्तचित्त होकर युद्ध की तैयारी में संलग्न थीं व उन्होंने अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये।[1] ऐसी विलक्षण प्रतिभाशालिनी रानी के उद्देश्य के बारे में भी क्या कभी सन्देह हो सकता है? कदापि नहीं।

झाँसी की सुरक्षा में राजाओं का सहयोग

बाणपुर की पराजय के पश्चात् झाँसी में खलबली मच गयी। रानी ने नाकेबन्दी और भी शीघ्रता से आरम्भ की। सेना में नयी भरती होने लगी। बुर्जों पर बड़ी-बड़ी तोपें चढ़ा दी गयीं तथा नगर की दीवार के बाहर सेना

---

१. 'सेलेक्शंस फ्राम स्टेट पेपर्स'—पृ० xcv : ह्यू रोज का चीफ आव स्टाफ को पूंच शिविर से पत्र : दिनांक ३० अप्रैल १८५८ :

"The fact is that Jhansi had proved so strong, and the ground to be watched by cavalry was so extensive, that my force had actually enough in its hands."

नियुक्त कर दी गयी। खाद्य-सामग्री प्रचुर मात्रा में एकत्रित कर ली गयी।[1] दूसरी ओर अंग्रेजी सेना भी बड़ी-बड़ी तोपों का काफिला लेकर, बारूद इत्यादि जमा करके सागर से २७ फरवरी १८५८ ई० को झाँसी की ओर बढ़ने लगी। जैसे ही सेना ने कूच किया, आकाश में अग्निगोले छूटते दिखाई दिये। इससे झाँसी में अंग्रेजों के बढ़ने की सूचना मिल गयी।[2] दूसरे दिन १ मील सफर तय करने के पश्चात् फिर उसी प्रकार अग्नि गोले छूटे। जब सेना आगे बढ़ी तो पहाड़ियों के दर्रों को पार करना कठिन था। राजा बाणपुर ने नारुत तथा बरोदिया में सुरक्षा का अच्छा प्रबन्ध कर रखा था। उनके साथ ८ या १० हजार सेनानी थे। जैसे-जैसे अंग्रेजी सेना आगे बढ़ती गयी, बाणपुर के राजा के सैनिक लड़ते थे व पीछे हटते जाते थे। नारुत के बाद मदिनपुर, तत्पश्चात् बरोदिया में संघर्ष हुआ। २ मार्च १८५८ ई० को राजा, बरोदिया छोड़कर जंगलों में बढ़ गये। मदिनपुर में शाहगढ़ के राजा ने मोर्चा लिया। यहाँ पर अंग्रेजों की सेना के छक्के छूट गये। मेजर ऑर क्रान्तिकारी सेना की गोलन्दाजी देखकर परेशान हो गया। इस समय शाहगढ़ के राजा तथा बाणपुर के राजा ने अपने सैनिक दलों को एक स्थान

---

१. गोडसे—'माझा प्रवास' पृ० ८३-८४, हिन्दी अनुवाद।

"लालू बख्शी बारूद-गोले का सामान जोरों से तैयार करने लगा। लड़ाई छिड़ने पर गरीब लोगों को खाने-पीने की तकलीफ हो जायगी। इसलिए पहले से ही चने, मुरमुरे और मटर भरी गयी। मौका पड़ने पर भोजन का मुक्त द्वार खोलने के विचार से गणपति के मन्दिर में शक्कर, घी, चावल, कनकी आदि सब सामानों का प्रबन्ध हो गया। सबके लिए पूरा पड़े, इतना धन राजकोष में नहीं था। इसलिए महल में जितनी बड़ी-बड़ी परातें, पतीलियाँ, हण्डे, गगरे, डिब्बे, कण्डालें आदि चाँदी के बर्तन थे, वे सब टकसाल में भेज दिये गये और हजारों रुपये राजकोष में आकर पड़े। लड़ाई में जय मिले, इसलिए मन्दिरों में अनुष्ठान शुरू हुए। पत्र लिखकर काल्पी से राव साहब और तात्या टोपे की सहायता माँगी गयी। इस तरह वह शूर स्त्री बिना किसी प्रकार की घबराहट के बड़ी शान्ति और चतुराई के साथ नगर का और युद्ध का बन्दोबस्त कर रही थी।"

२. "The enemy" Hugh Rose "evidently had their spies in our camp who were now telegraphing the departure of our troops to their friends north of us."

पर एकत्र करने का प्रयत्न किया, परन्तु अंग्रेजों ने ऐसा होने से रोका।[1] बरोदिया का दुर्ग लेने के पश्चात् मदिनपुर दर्रे पर अंग्रेजी सेना से क्रान्तिकारियों का युद्ध हुआ। पहले पहाड़ी पर धावा बोला, तत्पश्चात् मदिनपुर ग्राम में एक बँधे की ओर से क्रान्तिकारी सेना ने तोपें दागना आरम्भ किया। थोड़ी-सी लड़ाई के उपरान्त क्रान्तिकारी सैनिक मदिनपुर से सराय की ओर चले गये। सराय या शिवराजी में शाहगढ़ के राजा का दुर्ग की भाँति बनाया हुआ महल था। इसको क्रान्तिकारी सेना बारूद तथा छर्रे बनाने के लिए प्रयोग में ला रही थी।[2] इसको भी खाली करके क्रान्तिकारी सैनिक मरौरा के दुर्ग में मोर्चा लेने के लिए तैयार हुए। सागर से झाँसी की ओर बढ़ने के लिए मरौरा दुर्ग का विशेष महत्त्व था। मरौरा पर अधिकार कर लिया गया और इस प्रकार सागर से तालबेहूत तक की स्थलभूमि, जो स्वतन्त्र थी, पुनः अंग्रेजों के अधीन हो गयी। रहटगढ़ से तालबेहूत तक के युद्ध के बारे में ह्यूरोज की बहुत प्रशंसा की गयी है। परन्तु उसके विपरीत कर्वी तथा बाँदा की लूट के बटवारे के सम्बन्ध में विटलाक तथा उनके साथियों द्वारा इसके दूसरे पक्ष पर प्रकाश डाला गया है, जिससे मालूम पड़ता है कि रोज केवल इसलिए आगे बढ़ पाये कि राजा

१. राजकीय प्रपत्रों का संकलन, सेंट्रल इन्डिया : ह्यूरोज का मैन्सफील्ड, चीफ आव स्टाफ—कानपुर को २६ मार्च १८५८ का प्रपत्र : पृष्ठ-संख्या १६-२१।

"In order to deceive the Enemy as to my intention, and prevent the Rajah of Banpore from coming from the pass of Narut to the assistance of Rajah of Shahghur, who defended Mudinpore I made a serious feint against Narut by sending Major Scudamon Commanding H. M's. Light Dragoons with the force stated in the margin............with their tents and baggage, to the Fort and town of Malthane just above the pass of Narut. Whilst I made the real attack on the pass of Mudinpore."

२. वही : पृ० संख्या २४. "The Fort of Serai or Sayrage a fortified Palace of the Rajah of Shahghur perfect in architecture, now used as an Arsenal for the manufacture of powder and shot, fell the next day into the hands of my troops. The dyes of the old Saugor Mint from which the rebels were making balls, were found here, in quantities."

बाणपुर तथा राजा शाहगढ़ युद्ध करते जाते तथा झाँसी की ओर पीछे हटते जाते थे।[1] रोज केवल खाली किये हुए दुर्गों को जीत पाये व महलों को विध्वंस करके अपनी तसल्ली कर पाये। ऐसा करने में उन्होंने सैनिक अनुशासन के विपरीत लार्ड कैनिंग के आदेशों की अवहेलना की*; फलस्वरूप १ मार्च को तात्या ने चरखारी के राजा पर पूर्ण विजय पायी।

झाँसी का गढ़—मार्च १८५८ ई० में अंग्रेज सैनिक झाँसी से ८ मील की दूरी पर आकर शिविर में युद्ध की तैयारी करने लगे। रोज ने झाँसी के गढ़ की बड़ी प्रशंसा की है। उसके कथनानुसार झाँसी का दुर्ग भारत के प्रसिद्ध गढ़ों में गिना जाने वाला था। उसकी प्राकृतिक तथा कृत्रिम बनावट अद्वितीय थी। वह एक चट्टान पर स्थित था। उसको जीतना आसान न था। उसकी दीवारें १६ से २० फुट मोटी थीं। दुर्ग में सुदृढ़ बुर्जियाँ बनी थीं, जहाँ से तोपें भली भाँति दागी जा सकती थीं। दीवार में पाँच पाँच मंजिलों में बन्दूक चलाने के स्थान बने हुए थे। झाँसी की रानी ने एक नयी बुर्ज बनवाई थी जिसका नाम 'सफेद बुर्ज' रखा था, जिसमें युद्ध की भारी-भारी सामग्री एकत्रित की गयी थी। दुर्ग चारों ओर झाँसी नगर से घिरा

---

१. 'पार्लियामेन्ट्री पेपर्स : बाँदा कर्वी बूटी'—१३-२१ जुलाई १८६३ ई०, पृ० ६२।

"....Failing in this, they (the prize agents) addressed, in November, 1861 a memorial to the Lords Commissioner's of your Majesty's Treasury showing by a conclusive evidence that the Bombay troops under Major General Rose were not in any way engaged in the operation by which Kerwee was captured; that General Whitlock held a distinct and independent command; that he received no orders from Sir Hugh Rose and forwarded no report to him, that his division was in no fair sense leaning on or connected with the Bombay force; and that Sir Hugh Rose was fully engaged with a powerful and successful enemy and nearly a month's march from Kerwee at the time of capture."

* कर्नल बर्च, सचिव भारतीय शासन, सैनिक विभाग, गवर्नर जनरल के साथ, का इलाहाबाद, दिनांक १३ मार्च १८५८ ई० का मेजर विटलाक के नाम पत्र तथा उसकी प्रतिलिपि ह्यू रोज के नाम, परिशिष्ट 'सेलेक्शंस फ्राम स्टेट पेपर्स', खण्ड ४, मध्यभारत—'दि इण्डियन म्यूटिनी' पृ० ८०-८१।



झाँसी का किला

हुआ था, केवल पश्चिमी तथा दक्षिणी भाग में खुला हुआ था।[1] पश्चिम ओर से चट्टान की सपाट ऊँचाई उसकी रक्षा करती थी। दक्षिणी ओर से खुले हुए स्थान से झाँसी नगर की चहारदीवारी प्रारम्भ हो जाती थी। एक टीला भी गढ़ की भाँति बना लिया गया था, उसकी गोलाकार दीवार पर पाँच तोपें चढ़ा दी गयी थीं और उसके चारों ओर १२ फीट गहरी तथा १५ फीट चौड़ी खाई बना दी गयी थी। इस पर हर समय सैकड़ों मजदूर कार्य करते रहते थे।

झाँसी नगर भी ४½ मील के दायरे में बसा हुआ था। उसके चारों ओर एक दृढ़ दीवार थी, जो ६ से १२ फीट मोटी थी, परन्तु कहीं-कहीं पर १८ व ३० फीट भी थी। इस दीवार में बीच-बीच में बुर्जियाँ थीं जिनमें युद्ध-सामग्री जमा थी तथा पदाति सेना के लिए सुरक्षित स्थान था। नगर से बाहर जंगल था। एक ओर एक झील तथा झीलवाला महल था। दक्षिण की ओर पुरानी छावनी तथा अंग्रेजों के बंगलों के खण्डहर थे।

नगर के बाहर रानी की सेना की कोई टुकड़ियाँ न थीं। हैमिल्टन के अनुमान के अनुसार झाँसी की सेना में १०,००० बुन्देला तथा विलायती अफगान सैनिक थे, १५०० अंग्रेजी सेनाओं के क्रान्तिकारी सिपाही थे, जिनमें ४०० घुड़सवार थे। नगर तथा दुर्ग में लगभग ३० व ४० तोपें थीं।[2]

झाँसी का युद्ध :—२१ मार्च १८५८ ई० को ह्यू रोज झाँसी नगर के सम्मुख पहुँच गया। दूसरे ही दिन से घमासान युद्ध छिड़ गया। रानी ने दुर्ग से तोपें दागना आरम्भ किया। आठ दिन तक रात और दिन प्रलयकारी युद्ध चलता रहा। रानी लक्ष्मीबाई के गोलन्दाजों ने कमाल कर दिया, इसकी स्वयं ह्यू रोज ने प्रशंसा की।[3] सायंकाल के समय रानी

१. ह्यू रोज का चीफ आव स्टाफ को ३० अप्रैल १८५८ का प्रपत्र 'दि इन्डियन म्यूटिनी मध्यभारत–झाँसी', पृ० ८९, ९०, ९१।

२. 'सेलेक्शंस फ्राम स्टेट पेपर्स'—सैनिक विभाग, 'दि इंडियन म्यूटिनी—खण्ड ४, मध्यभारत'—पृ० ४२।

३. वही : पृ० ४२-४३।

The Chief of the Rebels Artillery was a first rate Artillery-man; he had under him two Companies of Golundauge, the manner in which the Rebels served their Guns, repaired their defences, and re-opened fire from batteries and Guns repeatedly shut up, was remarkable from some batteries they returned shot for shot. The women were seen working in batteries and carrying ammunition. The garden battery was fought under the black flag of the Fakeers."

लक्ष्मीबाई स्वयं गोलन्दाजों के पास जाकर उनका उत्साह बढ़ाती थीं व उन्हें स्वतन्त्रता-संग्राम में लड़ने के लिए उत्तेजित करती थीं।[1] श्री गोडसे ने भी इस युद्ध का आँखों-देखा वर्णन दिया है जिससे रानी लक्ष्मीबाई की अद्वितीय प्रतिभा, रण-कौशल तथा अदम्य साहस का पता चलता है। यह सब २३ वर्षीय भारतीय अबला नारी का चमत्कार था।[2] ३० मार्च १८५८ ई० तक दुर्ग तथा नगर की अनेक बुर्जियाँ टूट-फूट गयी थीं, तथा बहुत-सी तोपें बेकार हो गयी थीं। सहस्रों वीर सैनिकों की जानें गयीं परन्तु झाँसी का युद्ध चलता रहा। अंग्रेजों के पास गोला-बारूद भी कम पड़ने लगा। रानी लक्ष्मीबाई ने गुप्त रूप से राव साहब से सहायता माँगी। तात्या पेशवा की २०,००० सैनिकों की नयी सेना को लेते हुए आँधी की तरह बेतवा पर आ पहुँचे। ह्यू रोज को ३१ मार्च १८५८ ई० को जैसे ही इसकी सूचना मिली वह घबरा गया। यदि कुछ समय और उसे सूचना न मिलती तो उसकी सेना का काम तमाम हो गया होता। तात्या ने भी रोज की सेना पर आक्रमण करने में अदूरदर्शिता दिखायी। उसकी सेना इतने आवेश में थी कि बेतवा की पोखरों में जाकर फँस गयी। झाँसी की रानी ने जैसे ही इसकी

१. 'सेलेक्शन्स फ्राम स्टेट पेपर्स', सैनिक विभाग, दि इंडियन म्यूटिनी, खंड ४, मध्यभारत, भूमिका पृ० ११४-११५।

२. विष्णु भट्ट गोडसे का 'माझा प्रवास : आँखों-देखा गदर'—पृ० ९२।

"आठवें दिन बड़ी प्रलय मची और बड़ा ही घनघोर युद्ध हुआ। बहादुर लोग जोर-जोर से एक दूसरे को बढ़ावा दे रहे थे। बन्दूकों और तोपों की आवाज के सिवा और कुछ सुनाई ही न देता था। नरसिंघे, नगाड़े, बिगुल आदि बज रहे थे। धूल और धुआँ, बारूद, गोले, बन्दूकें और बाजों की आवाज, मनुष्यों के चीत्कार सब मिलकर बड़ा ही भयंकर वातावरण उपस्थित कर रहे थे। अंग्रेजी फौजों ने बड़ी तबाही मचाई। रात में आकाश से... तोपों के लाल-लाल गोलों की शहर पर मूसलाधार वर्षा हो रही थी। ....परकोटे पर के सिपाही और गोलंदाज एक के बाद दूसरे गिरते थे और उनकी जगह नये लोग खड़े किये जाते थे। बाई साहब को बड़ी मेहनत पड़ रही थी। चारों तरफ घूम-घूमकर सारा प्रबन्ध कर रही थीं। जहाँ जरा कमजोरी देखी वहीं आदमी बढ़ाये, आदमियों को हिम्मत दी पर उन्हें बड़ी ही चिन्ता थी कि पेशवा की तरफ से मदद क्यों नहीं आ रही है...............!"

सूचना पायी तोपें दागना, जो पहले दिन स्थगित कर दिया गया था, पुनः चालू कर दिया।[1]

बेतवा की लड़ाई :—१ अप्रैल १८५८ झाँसी की लड़ाई का दसवाँ दिन था। तात्या की तूफानी सेना तथा ह्यू रोज के अंग्रेज सिपाही युद्ध में जूझ पड़े। झाँसी के भाग्य का यहीं निर्णय हो रहा था। श्री गोडसे ने निम्न शब्दों में इस युद्ध का आँखों-देखा हाल लिखा है:—

"........आमने सामने की लड़ाई थी। किसी को भी अपना भान नहीं रहा। बिगुल, नरसिंहों, बन्दूकों, तोपों इत्यादि की आवाज हवा में धुन्ध सी बनकर छा गयी थी। झाँसीवाली बाई और उसके सरदार लोग दूरबीन लगाकर देख रहे थे। परन्तु झाँसी के दुर्भाग्य से कहो या तात्या टोपे की अकुशलता से कहो या हिन्दी सिपाहियों के नादान और अशूर होने से कहो तात्या टोपे की फौज टूटने लगी।..............."[2]

इस विजय से अंग्रेजों की हिम्मत बढ़ गयी। झाँसी में खलबली मच गयी। परन्तु फिर भी नागरिकों ने मरते दम तक युद्ध करने की ठान ली। रानी लक्ष्मीबाई ने युद्ध के ग्यारहवें दिवस भी उसी प्रकार धैर्य और साहस से कार्य लिया। गोलंदाजों को बख्शीशें दी गयीं। जो तोपें बन्द हो गयी थीं, वे पुनः चालू की गयीं। परन्तु रोज ने इस समय चालाकी से काम लिया। उसने भेदियों से एक ऐसी जगह का पता चला लिया जहाँ से नगर की चहारदीवारी पर आक्रमण हो सकता था। २ अप्रैल को रोज ने सैनिकों को

---

१. 'सेलेक्शंस फ्राम स्टेट पेपर्स', सैनिक विभाग, 'दि इंडियन म्यूटिनी', खण्ड ४, मध्यभारत, पृ० ११६–११७, Battle of Betwa, 1st April.

"Between 4 and 5 A. M. when it was still dark, the British pickets began to fall back on their support, and so soon as early dawn shoneforth, dense masses of infantry, accompanied by numerous batteries and many hundred cavalry were seen pouring over a knob. On they came, their long lines spreading far beyond the British flanks, waving innumerable banners of all colours and devices, beating drums, and their bayonets gleaning in the sun"......................

२. विष्णु भट्ट गोडसे के 'माझा प्रवास' का हिन्दी-अनुवाद 'आँखों देखा गदर', पृ० ६३।

उस स्थान का नकशा दे दिया। रात्रि के २ बजे से ही आक्रमण आरम्भ कर दिया। जैसे ही सबेरा होते-होते आक्रमणकारी फाटक की ओर सड़क पर दिखाई दिये, क्रान्तिकारी सैनिकों ने उनके ऊपर गोलियों की बौछार कर दी। बढ़ते हुए सैनिकों को रोकने का प्रयत्न किया। उन पर बारूद भरी बाल्टियाँ उलट दी गयीं, लकड़ी के कुन्दे फेंके गये, तथा हर प्रकार के अस्त्र-शस्त्र प्रयोग में लाये गये।[1] अन्त में अंग्रेजों की सफरमैना ने नगर के द्वार को बारूद से उड़ाने का प्रयत्न किया। सिपाहियों ने द्वार में घुसने का प्रयत्न किया परन्तु असफल रहे। द्वार बड़ी-बड़ी चट्टानों के टुकड़ों, पत्थरों आदि से ठसाठस भरा हुआ था। हताश होकर सिपाही लौट गये, तथा दूसरी ओर से, जहाँ चहारदीवारी केवल २३ फीट ऊँची थी, ऊपर चढ़ने लगे। झाँसी के वीर सेनानियों ने यहाँ भी अंग्रेजों को रोकने का प्रयत्न किया। बहुत से खेत रहे। परन्तु सफलता न मिल पायी। ह्यू रोज भी नगर के अन्दर घुस आया और रानी के महल की ओर झपटा। अब नगर के अन्दर युद्ध आरम्भ हुआ। नागरिकों ने घर-घर से अंग्रेजों से लोहा लिया। अंग्रेज डर के मारे दीवारों के पीछे से उनमें छेद करके गोली चलाने लगे। महल पर आक्रमण हुआ। वहाँ के संरक्षकों ने बारूदखाने में आग लगा दी व स्वयं भी वीरगति को प्राप्त हुए।[2] महल के अस्तबलों से विलायती (अफ-

---

१. 'सेलेक्शंस फ्राम स्टेट पेपर्स'—खंड ४, मध्यभारत पृ० १२०।

"For a time it appeared like a sheet of fire out of which burst a storm of bullets, round shot, and rockets destined for our annihilation."

तथा ब्रिगेडियर स्टुअर्ट का २६ अप्रैल १८५८ का प्रपत्र—संख्या २३६।

"The left Column............advanced with great steadiness through a heavy fire of musketry and wall pieces towards the ladders, on reaching which they were assailed with rockets, earthen pots filled with powder, and in fact every sort of missile."

२. 'सेलेक्शंस फ्राम स्टेट पेपर्स'—खंड ४, मध्यभारत पृ० १२३।

"The enemy smote them with a deadly fire from the houses. The assailants burst open the doors: the contest was furious, but it was short, Shouts and groans were heard in every quarter, and the street was wet with dark blood. Every inch of ground was contested until the palace was reached,"

गान) सैनिकों ने अंग्रेजों पर ऐसी गोलाबारी की कि वे भयभीत हो गये। विलायतियों ने अस्तबलों से हटकर मकानों के पीछे से लोहा लिया, ऐसी तलवार चलायी कि अंग्रेज सिपाही घायल होकर भागे। यह वीर सेनानी दोनों हाथों में तलवार लेकर लड़ते रहे, तथा जब तक शरीर में दम रहा, वार किया, गिरते-गिरते भी प्रहार किया। उनकी एक टोली तो अस्तबल के कमरे में ही रह गयी थी जहाँ पर उनके कपड़ों में आग लग गयी परन्तु फिर भी वे लड़ते-लड़ते अपने सिरों की ढाल से रक्षा करते हुए बाहर निकले।[1]

रानी लक्ष्मीबाई का झाँसी से प्रस्थान—महल पर अंग्रेजों का अधिकार हो जाने के पश्चात् रानी ने झाँसी में रुकना उचित न समझा। नगर की दुर्दशा, नागरिकों का हत्याकांड, अंग्रेजों द्वारा लूटमार रानी न देख सकीं। बड़े-बूढ़ों के परामर्श से उन्होंने नगर से कूच करने का निश्चय किया।[2] मोरोपंत ताम्बे तथा अन्य सगे, सम्बन्धी, हथियारबन्द विलायती सैनिक घोड़ों पर सवार होकर किले से रात्रि के समय बाहर निकले। बाहर निकलने से पहले अंग्रेजों से मुठभेड़ हो गयी। रानी तथा कुछ साथी नगर से बाहर निकल गये। रात्रि का समय था। वह भाँडेरी फाटक से निकलकर सरपट काल्पी मार्ग पर निकल गयीं; अंग्रेज सैनिक वापस लौट आये।[3] उनकी पीठ पर

१. 'सेलेक्शंस फ्राम स्टेट पेपर्स', खंड ४, मध्य भारत, पृ० १२३-१२४।

"A party of them remained in a room of the stable which was on fire till they were half burnt; their clothes in flames, they rushed out hacking at their assailants and guarding their heads with their shields."

"And Jhansi was a slaughter-pen recking under the hot eastern Sun."

२. गोडसे : 'माझा प्रवास', पृ० १०१।

सब लोगों को बुलाकर उन्होंने कहा—

"मैं महल में गोला-बारूद भरकर इसी में आग लगाकर मर जाऊँगी, लोग रात होते ही किले को छोड़कर चले जायँ और अपने प्राण की रक्षा के लिए उपाय करें।"

३. 'सेलेक्शंस फ्राम स्टेट पेपर्स'—भूमिका, पृष्ठ १२६।

"The British Subaltern was fast gaining on her, when a shot was fired and he fell from his horse severely wounded and had to abandon the pursuit,"

(१) ह्यू रोज का चीफ आव स्टाफ को प्रपत्र—ता० ग्वालियर—२२ जून १८५८ ई०।

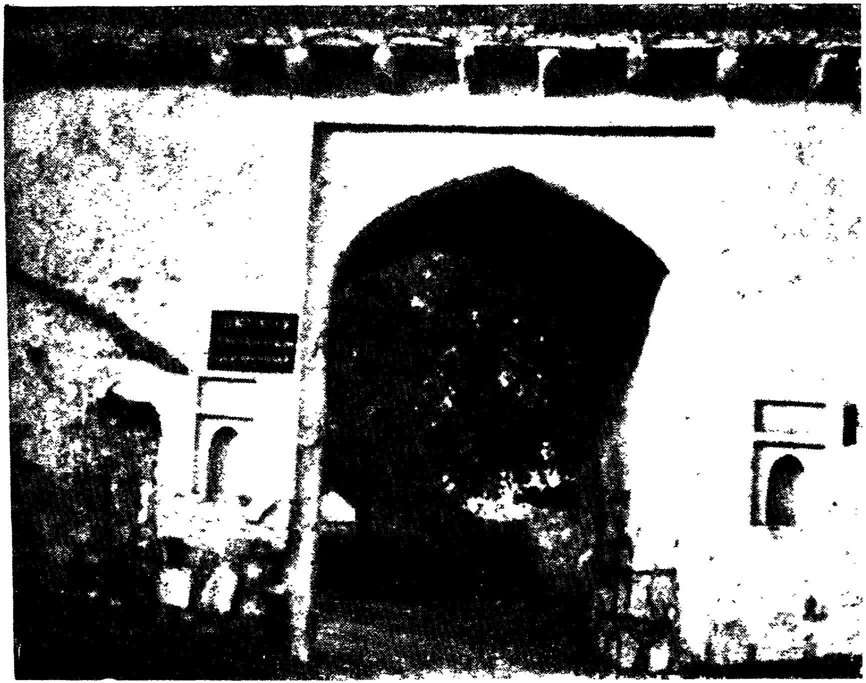
उनका दत्तक पुत्र दामोदर राव बँधा हुआ था। सवेरा होते-होते वह एक गाँव में पहुँच गयीं। वह जलपान आदि करके काल्पी की ओर बढ़ीं। काल्पी में इस समय युद्ध की पूर्ण रूप से तैयारी हो रही थी। तात्या विशाल शस्त्रागार को और भरपूर बना रहे थे। भाँति भाँति के गोले ढाले जा रहे थे। बन्दूकें बनायी जा रही थीं। बारूद भी तैयार की जा रही थी। काल्पी पहुँचते ही राव साहब तथा तात्या रानी से मिले। वहाँ पहुँचते ही रानी लक्ष्मीबाई युद्ध की तैयारी में पुनः दत्तचित्त हो गयीं। अप्रैल के तीसरे सप्ताह में बाणपुर, शाहगढ़ की सेनाएँ भी रानी के पास आ गयीं। दूसरी ओर से नवाब बाँदा भी ससैन्य काल्पी आ गये। अब काल्पी में अंग्रेजों से युद्ध करने की तैयारी होने लगी।

काल्पी का युद्ध

अप्रैल १८५८ ई० में काल्पी में क्रान्तिकारी सेना के ३ अग्रगण्य नेता थे—राव साहब, बाँदा के नवाब तथा झाँसी की रानी। तात्या कूँच की ओर अंग्रेजों की सेना से लोहा लेने चले गये थे। काल्पी में घमासान युद्ध हुआ और २० अप्रैल तक अंग्रेजी सेना को बहुत मात खानी पड़ी। कड़ाके की धूप में अंग्रेज परेशान हो गये। उनमें से बहुत से लू लगने से मर गये। २२ अप्रैल को क्रान्तिकारी सेना ने बड़े जोर-शोर से अंग्रेजों पर धावा बोला। कर्नल राबर्टसन की सेना ने मुँह की खायी। ब्रिगेडियर स्टुअर्ट की तोपें शान्त हो गयीं। ह्यू रोज घबरा गया। उसने अन्तिम वार किया।[1] उसके पास एक सुरक्षित ऊँटों की टुकड़ी थी। उसको आक्रमण करने की आज्ञा उसने दी। अकस्मात् क्रान्तिकारी सेना के पैर उखड़ गये। उन्होंने काल्पी छोड़कर ग्वालियर कूच करने का निश्चय किया। यह रहस्य इतना गुप्त रखा गया कि अंग्रेजों को सप्ताहों तक पता न चला कि वह किधर निकल गये। काल्पी में क्रान्तिकारी सेना को युद्ध की सामग्री प्रचुर मात्रा में छोड़नी पड़ी। परन्तु कोई चारा न था। ऐसे संकट के समय में झाँसी की रानी ने राव साहब, तथा नवाब बाँदा को ढाढ़स बँधाया।*

१. 'सेलेक्शंस फ्राम स्टेट पेपर्स'—खण्ड ४, मध्य भारत, पृ० १००—१०७।

* यहीं पर झाँसी की रानी का एक बक्स रह गया था, जिसमें उनका अन्य क्रान्तिकारी नेताओं की चिट्ठी-पत्री थीं।



भाँडेरी फाटक झाँसी

यहाँ होकर रानी लक्ष्मीबाई ४ अप्रैल १८५८ की रात में कालपी गयी थीं।

ग्वालियर पर आक्रमण

कालपी के युद्ध में ग्वालियर की पलटनों ने अधिक भाग लिया था। उनकी लगभग ३७ रेशमी पताकाएँ कालपी की पराजय के पश्चात् अंग्रेजों के हाथ लगीं। उनके साथ बड़ी-बड़ी तोपें भी थीं। कालपी के दुर्ग में तीन तोप ढालने की भट्टियाँ थीं। एक सुरंग में बड़ा भारी तोपखाना था जिसमें ६०००० पौंड अंग्रेजी बारूद थी। युद्ध की अन्य सामग्री, नयी तथा पुरानी बन्दूकों की पेटियाँ, अंग्रेजी औजार यह सब दुर्ग में ही रह गया। अंग्रेजों ने इन सबका मूल्य २० से ३० हजार पौंड आँका था।[1] अंग्रेज सेनानायक इतनी सामग्री पाकर फूले न समाये। ह्यू रोज ने तो अपनी सेना को बधाई देते हुए बिदाई भी माँग ली थी।[2] परन्तु कुछ समय पश्चात् जब उसे यह समाचार मिला कि क्रान्तिकारी सेना ग्वालियर की ओर कूच कर गयी है तो वह अवाक् रह गया। कालपी में पेशवा की सेना में अधिकतर ग्वालियर के ही सेनानी थे, अस्तु वह सब कालपी से तितर-बितर होकर निश्चित स्थान में एकत्रित हो गये। ऐसे संकटकालीन समय में पुनः तात्या टोपे उनके मध्य में गोपालपुर स्थान पर आ गये।[3] फिर क्या था, पेशवाई सेना में पुनः जीवन आ गया। नयी स्फूर्ति का संचार हो गया। वह रणमत्त हो मुरार की छावनी पर टूट पड़े। उन्होंने तात्या, राव साहब, झाँसी की रानी तथा नवाब बाँदा

---

१. 'दि रिवोल्ट इन सेन्ट्रल इन्डिया', १८५७-५९ ई०, पृ० १४३।

२. वही :—पृ० १४५।

"Soldiers! You have marched more than a thousand miles and taken more than a hundred guns. You have forced your way through mountain passes and intricate jungles; and over rivers. You have captured the strongest forts and beat the enemy, no matter what odds. wherever you have met him............I thank you with all my sincerity for your bravery, your devotion and your discipline."

३. वही :—ह्यू रोज का चीफ आव स्टाफ के नाम पत्र, दिनांक शिविर कौंच : ३० अप्रैल १८५८।

"........A cloud of dust about a mile and a half to our right pointed out line of retreat of another large body the second line of the rebels, which, by a singular arrangement of the Rebel general Tantia Tope must have been three miles in rear of his first line."

के साथ ग्वालियर पर धावा बोल दिया। सिन्धिया को कहलवाया गया कि, "या तो खर्चे के चार लाख रुपये दो, नहीं तो मैदान में आ जाओ।" सिंधिया अपने सरदारों को साथ लेकर मुरार में आ गया। परन्तु वहाँ सिंधिया की पलटनों ने पेशवा की सेना पर गोली चलाने से मना कर दिया।

ग्वालियर में झाँसी की रानी—सिन्धिया तथा दीवान रजवाड़ों के आगरा भाग जाने पर पेशवाई सेना विजयोल्लास से उन्मत्त हो ग्वालियर में प्रविष्ट हुई। झाँसी की रानी ने पुनः सेना का नेतृत्व सँभाला।[1] वह दो सौ अश्वारोहियों को लेकर नगर के महल में पहुँच गयीं। वहाँ उन्होंने सब चीजें अपने हाथ में ले लीं। तब रावसाहब तथा तात्या भी पहुँचे। नगर में ब्रह्मभोज का प्रबन्ध किया जाने लगा। ग्वालियर के कोष की समस्त धनराशि क्रान्तिकारियों के लिए उपलब्ध हो गयी। सिन्धिया की अतुल धन-सम्पत्ति महलों से बाहर लाकर नाम मात्र के मूल्य में नीलाम कर दी गयी। बहुत से नागरिकों ने भय के मारे सामग्री को नहीं खरीदा। एक नाटकमंडली ने अवश्य बड़ी मूल्यवान् वस्तुएँ ले लीं। उनके नाटकों के लिए अच्छी साज-सामग्री प्राप्त हो गयी। झाँसी की रानी ने यह लूटपाट देखकर, रावसाहब तथा तात्या का ध्यान युद्ध की तैयारी की ओर आकृष्ट किया।

रावसाहब को पेशवाधिराज की गद्दी पर सिंहासनारूढ़ करा दिया गया। देश में पेशवा का राज्य घोषित हो गया। मध्यभारत तथा आसपास के राज्यों में एक नया उत्साह पैदा हो गया। पेशवा-गद्दी के बहुत से पुराने सेवक ग्वालियर आ पहुँचे। रावसाहब की सवारी बड़े ठाट-बाट के साथ नगर के बड़े-बड़े बाजारों से होकर महलों में पहुँची। तत्पश्चात् उत्सव मनाने से पहले 'मुक्तद्वार ब्रह्मभोज' कराया गया।[2] यह तो रोज का कार्य-क्रम बन चला। इसके उपरान्त ग्वालियर के प्रसिद्ध नाट्यकार तथा गायकों

१. 'रिवोल्ट इन सेन्ट्रल इण्डिया'—पृ० १४७।

"The Rani' desperate and daring, then conceived the plan of marching on Sindhia's capital and taking possession of that stronghold."

२. विष्णु भट्ट गोडसे : 'माझा प्रवास' अथवा 'आँखों देखा गदर' अमृतलाल नागर द्वारा हिन्दी-अनुवाद। पृष्ठ-संख्या १५०।

ने रंगमंच की धूम मचा दी। चारों तरफ नृत्य तथा संगीत की ध्वनि गूँज उठी। भारतीय क्रान्ति के इतिहास में यह एक अद्‌भुत घटना थी।

ग्वालियर में सैनिक संगठन :—काल्पी की पराजय के पश्चात् क्रान्तिकारियों को पुनः युद्ध-सामग्री का खजाना ग्वालियर में मिल गया। उन्हें ५० या ६० बड़ी तोपें, सुदृढ़ दुर्ग, तोपखाना व बारूदखाना तथा सिन्धिया की ग्वालियर में बची हुई सेना मिली[1]। इस प्रकार क्रान्तिकारी सेना में पुनः जीवन आ गया। सिन्धिया के सेनानी, जो अब क्रान्तिकारियों से मिल गये थे, भारतवर्ष में सबसे अच्छे सिखाये-पढ़ाये सैनिक थे। ग्वालियर ऐसे समय में क्रान्तिकारियों के हाथ में आया था जब भीषण ग्रीष्म ऋतु के पश्चात् वर्षाऋतु आरम्भ होने को थी। तात्या तथा झाँसी की रानी ने ग्वालियर की महत्ता समझकर तुरन्त रावसाहब को पेशवा घोषित कर दिया। पेशवा की

---

१. दि इन्डियन म्यूटिनी—१८५७-५६ : खण्ड ४, मध्य भारत, पृ० १३१।

"The rebel Army had attacked Scindiah at Bahadurpure, 9 miles from Gwalior; his troop of all Arms, with the exception of a few of his Body-Guard, had treacherously gone over, the artillery in mass, to the enemy. His Highness himself, after bravely doing his best to make his troops do their duty, had been forced by fire of his own Artillery, and the combined attacks of his Troops, and of the Rebel Army, to fly to Agra, which he reached with difficulty, accompanied by one or two attendants; *the Rebels had entered Gwalior, taken Scindiah's Treasury and Jewels, the latter said to be of fabulous value the Garrison of the Fort of Gwalior considered to be one of the strongest, if not the strongest, fortress in India*, had, after a mock resistance, opened it's gates to the Rebels: finally, from 50 to 60 fine guns, comprising Horse, Field and Siege artillery, had fallen, as well as an Arsenal with abundance of Warlike Stores into the hands of the enemy. In short, the Rebels, who had fled most disorderly flight and helpless state from Calpee, were now completely set up with abundance of money, a capital park of Artillery, plenty, and Scindiah's Army, as their allies."

गद्दी की पुनः स्थापना के चमत्कार ने, इंदौर, उज्जैन, मंदसौर, पूना तथा उत्तरी भारत में क्रान्तिकारियों पर घिरे हुए काले-काले बादलों में विद्युत् के क्षणिक प्रकाश का कार्य किया। ग्वालियर नगर का सैनिक संगठन करने में झाँसी की रानी ने सबसे अधिक रण-कुशलता दिखाई। नगर के चारों ओर सेना की टुकड़ियाँ नियुक्त कर दी गयीं। केवल एक माह की कठिनाई थी, ग्रीष्म ऋतु में अंग्रेजों से लड़ना कठिन था, तथा वर्षाऋतु आरम्भ होते ही अंग्रेजी सेना का ग्वालियर पहुँचना दूभर हो जाता। एक माह में ग्वालियर स्थित पेशवा की सेना सुव्यवस्थित हो जाती। जैसा कि अंग्रेजों को भय था, एक माह में पेशवा के नाम से दक्षिण में विशेषतः महाराष्ट्र में, नागपुर, पूना में तथा अन्य प्रदेशों में क्रान्ति की ज्वाला प्रज्वलित होना असम्भव न था। परन्तु विधि का विधान कुछ और ही था।

ग्वालियर का युद्ध :—अंग्रेजों ने ग्वालियर की घटना की सूचना पाते ही सेना की एक टुकड़ी को ग्वालियर की ओर भेज दिया। एक टुकड़ी झाँसी में रखी गयी। दूसरी कालपी में डटी थी। परन्तु ह्यू रोज ने अपना अपमान होने के भय से लाचार होकर ग्वालियर की ओर कूच किया। उसे आगरा से सहायता प्राप्त हुई। १६ जून को अंग्रेजी सेनाएँ बहादुरपुर के समीप आ गयीं तथा मुरार की छावनी से ४ या ५ मील की दूरी पर पड़ाव डाला। अंग्रेजों की आवभगत करने के लिए ग्वालियर की सेना मुरार छावनी के सम्मुख डटी हुई थी। छावनी के दोनों बाजू अश्वारोही सँभाले थे। दाहिनी ओर तोपें चढ़ी हुई थीं तथा पदाति सेना थी। १६ जून को क्रान्तिकारी सेना ने अंग्रेजी सेना पर ६ तोपें दाग दीं।[1] दूसरे दिन कोटा की सराय में दोनों सेनाओं में झड़प हुई। अंग्रेजी सेना को अधिक सहायता प्राप्त करने के लिए पीछे हटना पड़ा। कड़ाके की धूप होते हुए भी क्रान्तिकारी सेनानियों की तोपों ने कमाल दिखाया। अंग्रेज घिरते ही जा रहे थे कि उनकी सहायता के लिए सेनाओं की टुकड़ियाँ आ गयीं। युद्ध जारी रहा।[2] अंग्रेजों ने अब यह देखा कि सीधी तौर से ग्वालियर पर आक्रमण करना कठिन है। इसलिए उन्होंने जंगली मार्ग से पूर्वी पहाड़ियों के ऊपर से आक्रमण करने का प्रयास किया।

---

१. 'सेलेक्शंस फ्राम स्टेट पेपर्स', नैपियर की मुरार शिविर से १८ जून १८५८ की आख्या।

२. वही : स्मिथ की आख्या, ग्वालियर दिनांक २५ जून १८५८ ई०।

रानी लक्ष्मीबाई का अन्तिम प्रयास :—१७ जून को अंग्रेजों ने पहाड़ियों पर आक्रमण किया। वह एक दर्रे से होकर नहर के किनारे-किनारे आगे बढ़े। ३०० क्रान्तिकारी अश्वारोहियों ने ८वीं हसर सेना की टुकड़ी, जो हीनियज के अधीन थी, पर आक्रमण किया। अश्वारोही फूलबाग छावनी लौट आये। वहाँ पर पदाति तथा अश्वारोही दोनों मिलकर अंग्रेजों से लड़े। परन्तु उनमें से बहुत से खेत रहे तथा आहत हुए। इन्हीं वीर सेनानियों के मध्य में रानी लक्ष्मीबाई ने लड़ते-लड़ते प्राण त्याग दिये। एक हसर सैनिक के वार से वे आहत हो गयीं। इतने में ही क्रान्तिकारियों ने आक्रमण कर दिया। अंग्रेजों की ओर से ६५वीं सेना तोपों के साथ आ गयी थी। प्रथम बम्बई लान्सेट्स भी सहायतार्थ आ पहुँचे थे। सायंकाल होते-होते अंग्रेज अश्वारोही नवागन्तुक सहायकों के संरक्षण में पीछे हट गये।[1] उन्होंने पहाड़ियों के ऊपर जाकर रात्रि में शरण ली।[2] क्रान्तिकारियों ने पुनः अपना मोर्चा शक्तिशाली बना लिया था। परन्तु ग्वालियर की पेशवाई सेना की श्वास निकल गयी। मृतप्राय शरीर युद्ध-स्थल में पड़ा रह गया। रानी की मृत्यु से ग्वालियर में खलबली मच गयी। इस तरह दैववश क्रान्तिकारी सेना में खलबली मच जाने पर सर ह्यू रोज १८ जून को कोटा की सराय पहुँचा। १९ ता० को घमासान युद्ध हुआ। २० जून १८५८ ई० को राव साहब, पेशवा, तात्या तथा अन्य क्रान्तिकारी नेताओं ने ग्वालियर खाली करने का निश्चय कर लिया। अश्वारोही तथा तोपों के संरक्षण में सेना ने अंग्रेजों से बचकर नगर से कूच कर दिया। दूसरे दिन ग्वालियर दुर्ग भी छोड़ दिया गया। तात्या ने पुन्नियार तथा गूना की ओर २०,००० सेना के साथ प्रस्थान किया। यह स्वतन्त्रता-संग्राम की प्रधान घटना थी। झाँसी, काल्पी, लखनऊ तथा बरेली अन्त में ग्वालियर सब अंग्रेजों के हाथ में आ गये थे। झाँसी की रानी की मृत्यु से यमुना के दक्षिणी भाग में क्रान्ति को सांघातिक धक्का पहुँचा।

रानी की मृत्यु तथा दाहसंस्कार १७ जून १८५८—रानी लक्ष्मीबाई की मृत्यु के विषय में अनेक किंवदंतियाँ प्रसिद्ध हैं। उपलब्ध

१. 'दि रिवोल्ट इन सेन्ट्रल इंडिया', हिक्स का स्मिथ को पत्र, सिप्री, २५ जुलाई १८५८, परिशिष्ट जी, नं० ४४, १८५८, पृ० ११५.

२. वही : पृ० १५६.

विवरणों से यह निश्चित हो जाता है कि वह लड़ते-लड़ते मारी गयीं, तथा एक वृक्ष की छाया में उनका दाहसंस्कार हुआ। अंग्रेजों को उनकी मृत्यु का समाचार २० जून को ग्वालियर पराजय के उपरान्त मिला अर्थात् मृत्यु के ३ दिन पश्चात् पता चला।[1] रानी लक्ष्मीबाई ने स्वतन्त्रता-संग्राम में लड़ते-लड़ते प्राण दिये। उनकी मृत्यु के साथ क्रान्ति का रूप बदल गया। तत्पश्चात् छापामार युद्ध १ वर्ष तक चलता रहा, परन्तु संग्राम एक तरह से समाप्त हो गया। रानी सदैव के लिए अमर हो गयीं।

समीक्षा

ऐतिहासज्ञों तथा जीवनी-लेखकों में रानी लक्ष्मीबाई के सम्बन्ध में कई विषयों में मतभेद हो गया है। डा० सेन, डा० मजूमदार, श्रीपारसनीस तथा रमाकान्त गोखले आदि का मत है कि रानी ने जून १८५७ से फरवरी १८५८ ई० तक झाँसी में अंग्रेजों की ओर से शासन किया। इस धारणा के प्रमाण में झाँसी से प्रेषित कुछ पत्र बताये जाते हैं जिनमें झाँसी की रानी ने अंग्रेजों से मैत्री बनाये रखने का विचार प्रकट किया। सबसे पहला पत्र १२ जून, दूसरा १४ जून १८५७ ई० का बताया जाता है। इनके उत्तर में जबलपुर के कमिश्नर ने उन्हें अंग्रेजों की ओर से राज्य करने की आज्ञा दी। तृतीय पत्र १ जनवरी १८५८ ई० का बताया जाता है जिसमें रानी ने मैत्री भाव प्रकट किया। परन्तु इन पत्रों के आधार पर, जिनकी मूल प्रतियाँ व मुहरवाले लिफाफे भी अप्राप्य हैं, यह कहना कठिन है कि महारानी क्रान्तिकारियों से भिन्न थीं। स्वयं जबलपुर कमिश्नर के प्रपत्र यह प्रमाणित करते हैं कि वह झाँसी की रानी को 'विद्रोही' समझते थे। इनमें से मुख्य यह हैं :—

(१) अगस्त १८५७ ई० में जबलपुर में सामरिक-समिति में विचार प्रकट करते समय कमिश्नर अर्स्किन ने ६ अगस्त को यह लिखा था :— "विद्रोहियों तथा क्रान्तिकारियों के कारण समस्त जालौन, झाँसी, चन्देरी,

१. 'दि इंडियन म्यूटिनी', १८५७-५८, खण्ड ४, मध्य भारत, ले० कर्नल हिक्स का स्मिथ के नाम पत्र—मुरार छावनी—दिनांक २५ जून १८५८.

"4. Since the capture of Gwalior, it is well known that in this charge the Queen of Jhansi. disguised as a man, was killed by a Hussar, and the tree is shown where she was burnt.[1]"

सागर तथा दमोह जिले (केवल सागर के दुर्ग तथा नगर, व उसी प्रकार दमोह को छोड़कर) अस्थायी रूप से हमारे हाथ से निकल गये हैं, तथा उन जिलों में भयावह अराजकता फैली हुई है।"[1]

(२) १७ जुलाई १८५७ ई० को जालौन के मजिस्ट्रेट पसन्ना को जालौन के जागीरदार केशोराव का पत्र मिला था जिसमें उन्होंने नाना साहब द्वारा झाँसी की रानी को सहायता भेजने की सूचना अंग्रेजों को दी थी।[2]

(३) जनवरी १८५८ ई० में झाँसी की रानी ने पण्डवाहो तथा मऊ-रानीपुर पर अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी, तथा नाना साहब, तात्या टोपे व बाणपुर के राजा के साथ मिलकर क्रान्ति का संचालन कर रही थीं।[3]

(४) कमिश्नर अर्स्किन ने नवम्बर १८५७ ई० तथा अगस्त १८५८ ई० में बराबर महारानी लक्ष्मीबाई को पूर्णतः क्रान्तिकारी समझा। उसकी १० अगस्त की आख्या में कहीं पर भी उपर्युक्त पत्रों की चर्चा नहीं है।[4]

(५) अर्स्किन ने ६ फरवरी १८५८ ई० को जबलपुर कमिश्नरी की दशा पर एक स्मारकपत्र ((मेमोरेन्डम) लिखा था, जिसमें स्पष्टतः यह कहा गया था कि चन्देरी, झाँसी तथा जालौन अंग्रेजों के अधिकार में नहीं हैं।[5]

ग्वालियर स्थित अंग्रेजी पोलिटिकल एजेन्ट मैक्फर्सन की १० फरवरी

---

१. 'म्यूटिनी नैरेटिव्ज'—सागर तथा नर्बदा क्षेत्रों के विषय में मेजर अर्स्किन की विलियम म्यूर, सचिव, उत्तर-पश्चिमी प्रान्तीय शासन को प्रेषित आख्या से संलग्न परिशिष्ट—'एच'

२-३. वही : झाँसी के कमिश्नर पिन्कनी की २० नवम्बर १८५८ की आख्या तथा पसन्ना द्वारा प्रेषित २७ मार्च १८५८ ई० की आख्या।

४. 'म्यूटिनी नैरेटिव्ज' सागर तथा नर्बदा क्षेत्रों के विषय में मेजर अर्स्किन की आख्या।

५. वही : आख्या की परिशिष्ट—ओ, पृ० ६६।

१८५८ ई० की आख्या की पहले ही चर्चा की जा चुकी है।[1] इन सबके आधार पर महारानी लक्ष्मीबाई तथा क्रान्तिकारियों के सम्बन्ध के विषय में कोई सन्देह नहीं रह जाता। उनके सभी सेनानी क्रान्तिकारी थे। जून १८५७ से मार्च १८५८ ई० तक अंग्रेजों ने कोई सैनिक भी झाँसी नहीं भेजा था। तब झाँसी की महारानी किसके बल पर युद्ध कर रही थीं? जब उनकी सेना क्रान्तिकारी थी, जब उनकी झाँसी जनवरी व फरवरी माह में फीरोजशाह शाहजादा, आदिलमुहम्मद व बख्शीशअली जैसे नेताओं के लिए सुरक्षित गढ़ था, तो वह स्वयं अंग्रेजों की ओर से राज्य करती हुई किस भाँति बताई जा सकती हैं। इन सबसे भी मुख्य प्रमाण तो महारानी लक्ष्मीबाई तथा उनकी पेशवा के प्रति श्रद्धा तथा अनुराग में निहित है।

डॉ० मोती लाल भार्गव

एम० ए०, डी० फिल०

1. 'पार्लियामेन्ट्री पेपर्स' : नेटिव प्रिन्सेज आव इण्डिया : ईस्ट इंडीज' : १८६० : सिन्धिया, पृ० १०७।

राना बेनीमाधो सिंह

"अवध में राना भयो मरदाना।
पहली लड़ाई भई बक्सर माँ,
सिमरी के मैदाना,
हुवाँ से जाय 'पूरवा' माँ जीत्यो
तबै लाट घबड़ाना।
नक्की मिले, मानसिंह मिलगै
मिले सुदरसन काना।
क्षत्रि वंश एकु ना मिलिहै
जानै सकल जहाना।
भाई, बन्धु औ कुटुम्ब-कबीला
सबका करौं सलामा,
तुम तो जाय मिल्यो गोरन ते
हमका हैं भगवाना।
हाथ में भाला, बगल सिरोही
घोड़ा चले मस्ताना,
कहैं दुलारे, सुनु मेरे प्यारे,
किये पयाना।"[1]

बैसवारा के इस लोकगीत में १८५७ ई० की क्रान्ति के उस महान् नेता का यशगान है जिसने महारानी विक्टोरिया के घोषणा-पत्र के प्रकाशित हो जाने के उपरान्त भी अंग्रेजों से निरन्तर युद्ध जारी रखा। एक एक करके स्वतन्त्रता के समस्त सैनिक हताश होते जाते थे। कुछ तो अंग्रेजों की तलवार द्वारा मौत के घाट उतर कर अमरत्व को प्राप्त कर चुके थे, कुछ पर्वतों, जंगलों और अज्ञात स्थानों में लुप्त होते जाते थे। मुख्य योद्धाओं में अब एक ओर वीर तात्या और दूसरी ओर अवध के योद्धा रह गये थे। इनेस के अनुसार उस समय तीन मुख्य दल अंग्रेजी शासन के विरुद्ध युद्ध कर रहे थे। प्रथम दल

१. 'स्वतन्त्र भारत', लखनऊ, दिनांक २ सितम्बर, १९५६ पृ० ६, 'अवध में राना भयो मरदाना', लेखक—अमर बहादुर सिंह 'अमरेश'।

मौलवी अहमदुल्लाह शाह के नेतृत्व में रुहेलखंड की सीमा तक, दूसरा दल बेगम, नाना साहब के भाई तथा जयलाल सिंह के संचालन में उत्तर-पूर्व में, युद्ध-कार्य में संलग्न थे। तीसरा दल दक्षिण-पूर्व में तालुकदारों का था जिसमें बैसवारा के तालुकदारों एवं बेनीमाधो की प्रधानता थी।[1] इन दलों में इस संग्राम के विषय में परस्पर पत्र व्यवहार भी होता रहता था।[2]

राना बेनीमाधो, रामनारायण सिंह के पुत्र थे जो शंकरपुर के तालुकदार शिवप्रसाद सिंह के सम्बन्धी थे। शिवप्रसाद सिंह निःसन्तान थे अतः उन्होंने राना बेनीमाधो को अपना दत्तक पुत्र बनाया। राना बेनीमाधो के प्रारम्भिक जीवन के विषय में अधिक ज्ञान प्राप्त नहीं हो सका है परन्तु क्रान्ति के समय वे वृद्ध थे और बड़े प्रभावशाली भी थे। उनके अधीन शंकरपुर, भीखा, जगतपुर तथा पुकूबयाँ के चार किले थे। इन किलों में शंकरपुर अत्यधिक दृढ़ था। इस किले के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण अन्य स्थान पर दिया गया है। बेनीमाधो के विषय में रसेल लिखता है, "बेनीमाधो ने बैसवारा जिले तथा उसकी जाति का दीर्घ काल से नेतृत्व किया है। भूतकाल में बंगाल की सेना के लिए लगभग ४०,००० उत्तम सिपाही इस जिले व जाति से हमें प्राप्त होते थे। स्वाभाविक रूप से उनका इस प्रदेश में बड़ा प्रभाव है।[3] १८५७ ई० के संघर्ष में वे अपने भाई गजराज सिंह[4] के साथ मैदान में कूद पड़े और लखनऊ के योद्धाओं के साथ बेलीगारद के युद्ध में बड़ी संलग्नता तथा परिश्रम से काम लेते रहे। वे ग्रांड ट्रंक रोड पर भी छापे मारा करते थे। होम्स के अनुसार २५ मई १८५८ ई० को होपग्रान्ट ने बेनीमाधो की सेना पर कानपुर की सड़क के ऊपर आक्रमण किया किन्तु वे वहाँ से गायब हो चुके थे।[5] इस प्रकार, उन्होंने गुरीला युद्ध, जिसके लिए वे बाद में प्रसिद्ध हुए, प्रारम्भ ही से छेड़ रखा था।

---

१. इनेस : 'लखनऊ ऐण्ड अवध इन दि म्यूटिनी', लन्दन १८९५, पृ० २६२-२६३।

२. राना बेनीमाधो द्वारा लिखे गये कुछ पत्रों का सारांश हिन्दी में परिशिष्ट १२ में दिया गया है। यह पत्र फारसी भाषा में लिखे गये थे और रायबरेली जिले के कचहरी के बस्तों में प्राप्त हुए हैं।

३. रसेल : 'माई डायरी इन इंडिया', पृ० ३२२।

४. यह नाम जगराज सिंह भी बताया जाता है।

५. टी० राइस होम्स : 'हिस्ट्री आव इंडियन म्यूटिनी' पृ० ५३१।

उनके सैनिक फतेहपुर में भी प्रविष्ट हुए और अंग्रेजों को हानि पहुँचाते रहे। उनके भाई गजराज सिंह ने नाना साहब के सहायतार्थ एक सेना भेजी थी।[1]

बेगम हजरत महल तथा अहमदउल्लाह शाह के लखनऊ छोड़ने के उपरान्त तथा लखनऊ पर अंग्रेजों का अधिकार हो जाने के पश्चात् राना बेनीमाधो ने शंकरपुर में ही अपनी सेनाएँ एकत्र कर लीं और गुरीला युद्ध बड़ी भीषणता से प्रारम्भ कर दिया।

लार्ड केनिंग के २० मार्च १८५८ ई० के उस घोषणा-पत्र के कारण, जिसमें उन्होंने तालुकदारों के इलाके जब्त करने की घोषणा की थी, विरोधाग्नि पुनः प्रज्वलित हो गयी। समस्त अवध सचेत हो गया। इस अग्नि को शान्त करने तथा कम्पनी के अत्याचारपूर्ण राज्य को समाप्त करने के लिए १ नवम्बर १८५८ को महारानी विक्टोरिया का घोषणा-पत्र प्रकाशित हुआ जिसमें कम्पनी के स्थान पर महारानी के राज्य की घोषणा की गयी और कुछ दशाओं में लोगों को शान्ति का आश्वासन दिलाया गया। किन्तु बेगम हजरत महल ने समस्त घोषणापत्र का खण्डन करते हुए अंग्रेजों की धूर्तता के ऊपर विस्तृत प्रकाश डाला और अंग्रेजों के वचनों पर विश्वास न करने हेतु लोगों को प्रोत्साहित किया[2]। बेनीमाधो का शंकरपुर तथा समस्त बैसवारा मानो युद्ध के लिए उद्यत था। कैम्पबेल भी राना को पराजित करने तथा उनकी स्वतन्त्रता का अन्त करने के लिए कटिबद्ध था। उसने शंकरपुर के मार्ग पर केशोपुर में अपने शिविर लगा दिये। राना को हथियार रख देने के लिए प्रोत्साहित करने हेतु मेजर बैरो ने ५ नवम्बर को अपने उदयपुर शिविर से एक पत्र राना के पास भेजा :

"सेनापति, जो गवर्नर जनरल से इस आशय के पूर्ण अधिकार प्राप्त कर चुका है कि वह विद्रोहियों से उनके व्यक्तिगत अपराधों तथा सहयोगात्मक कार्यों का ध्यान रखकर शक्तिपूर्ण अथवा संधिपूर्ण व्यवहार करे, इंग्लैण्ड की सम्राज्ञी का घोषणापत्र राना बेनीमाधो को भेजता है। राना को यह सूचित किया जाता है कि उस घोषणापत्र की शर्तों के अनुसार उनका जीवन आज्ञाकारिता प्रदर्शित करने पर ही सुरक्षित है। गवर्नर जनरल का विचार कठोर व्यवहार करने का नहीं है। परन्तु बेनीमाधो को यह स्मरण

१. इलाहाबाद रिकार्ड रूम, फाइल नं० १०३५।

२. चार्ल्स बाल : 'इंडियन म्यूटिनी' भाग २, पृ० ५४३–५४४।

होना चाहिए कि वह दीर्घ समय से सशस्त्र विद्रोही रहे हैं और कुछ समय पूर्व ही उन्होंने अंग्रेजी सेनाओं पर आक्रमण किया है। अतएव उन्हें अपने किलों तथा तोपों को पूर्णरूपेण समर्पित कर देना चाहिए और अपने सिपाहियों तथा सशस्त्र अनुयायियों को लेकर अंग्रेजी सैनिकों के सम्मुख शस्त्र अर्पित कर देना चाहिए। तदुपरान्त ही सिपाही तथा उनके सशस्त्र अनुयायी बिना किसी दण्ड या हानि के अपने घर जा सकेंगे; और प्रत्येक सिपाही को कमिश्नर की ओर से एक प्रमाण-पत्र दिया जावेगा। जब बेनीमाधो द्वारा पूर्णरूपेण आत्म-समर्पण तथा आज्ञाकारिता का प्रदर्शन हो जावेगा, तब उन्हें गवर्नर जनरल की उदारता तथा दया के प्रति अविश्वास अनुभव करने का कोई कारण न होगा। अंग्रेजी सरकार द्वारा अपनी जमींदारी के अनुचित अपहरण की धारणा पर आधारित उनकी माँगों की भी सुनवाई होगी। परन्तु, इस अवधि में, जब तक कि आज्ञाकारिता स्वीकार नहीं होती तथा उनके अनुयायियों, सिपाहियों तथा स्वयं उनके द्वारा जन-समूह के समस्त शस्त्रों का समर्पण नहीं होता, संधि करने की आज्ञा गवर्नर जनरल की ओर से नहीं है। सेनापति, बेनीमाधो को समय को हाथ से न खोने के प्रति सचेत करता है। उनकी सैनिक टुकड़ियाँ राना को घेर रही हैं अतः बेनीमाधो द्वारा थोड़ी-सी भी देरी करना सम्राज्ञी की दया के लाभ से भी उन्हें वंचित कर देगा और फलस्वरूप गवर्नर जनरल के लिए भी उदारता प्रदर्शित करना असम्भव हो जावेगा। अपना, अपने परिवार तथा अपने अनुयायियों का भाग्य उन्हीं के हाथों में है।''

१५ नवम्बर १८५८ ई० तक केशोपुर पर कैम्पबेल की सेनाएँ दृढ़ रूप से डट गयीं[1] और उस पत्र के प्रति राना की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा की जाने लगी। राना के ऊपर तीन ओर से आक्रमण करने की योजना बनायी गयी थी। कैम्पबेल का शिविर जंगल के पूर्वी ओर था। होपग्रान्ट की सेना उसके दाहिनी ओर ३ मील की दूरी पर थी। पश्चिम दिशा में सिमरी की ओर से ब्रिगेडियर इवले की सेनाएँ बढ़ रही थीं। अंग्रेज निरन्तर राना के पत्र की राह देख रहे थे परन्तु १५ नवम्बर को बेनीमाधो के एक पुत्र का पत्र प्राप्त हुआ जिसमें लिखा था कि ''मैंने आपका पत्र तथा घोषणापत्र प्राप्त कर लिया है। मैं इसके पूर्व इस इलाके का कबूलियतदार था और अब भी उसी प्रकार हूँ। यदि अंग्रेजी सरकार मेरे साथ भूमि का बन्दोबस्त करेगी

१. रसेल : 'माई डायरी इन इंडिया' भाग २, पृ० ३१६।

तो मैं अपने पिता बेनीमाधो को निकाल दूँगा। वे बिर्जीस कद्र के साथ हैं और मैं ब्रिटिश सरकार का भक्त हूँ। मैं अपने पिता के कारण नष्ट नहीं होना चाहता।"

यह पत्र क्रान्तिकारियों की उस युक्ति की ओर पर्याप्त प्रकाश डालता है जिसके द्वारा वे अंग्रेजों को धोखे में रखना चाहते थे। वास्तव में ऐसे पत्रों के कारण ही अंग्रेजों को किसी निर्णय पर आने में सर्वदा बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता था। वे तुरन्त निर्णय न कर पाते थे कि अमुक व्यक्ति से किस प्रकार का व्यवहार किया जाये। एक ओर बेनीमाधो के पुत्र का यह पत्र प्राप्त होता है और दूसरी ओर बेनीमाधो का दृढ़ उत्तर अंग्रेजों को पहुँचता है कि, "मैं किसी प्रकार से हथियार डालने को तैयार नहीं। मैंने बिर्जीस कद्र की अधीनता स्वीकार की है और मैं जीते-जी विश्वासघात न करूँगा।" अंग्रेजों के उस दूत का, जो राना के पास पत्र ले गया था, कथन है कि उस समय बेनीमाधो के पास लगभग ५,००० सैनिक, २,००० घोड़े तथा ४० तोपें थीं। इस सूचना को पाते ही अंग्रेज चौकन्ने हो गये, और उन्होंने अपने पैर दृढ़ता से इस भय से और भी जमा लिये कि कहीं उनके ऊपर अचानक आक्रमण न हो जावे।

कैम्पबेल के शिविर तथा शंकरपुर के बीच में घना जंगल था। उधर अंग्रेजों के चौकी-पहरे सभी अत्यधिक दृढ़ थे किन्तु १६ ता० को सुबह होते-होते यह पता चला कि राना बेनीमाधो तो अपनी सेना सहित रात ही में कहीं चल दिये हैं और किला रिक्त है[1]। पहियों के निशानों से यह पता चलता था

१. कॉलिन कैम्पबेल (लन्दन १८६५ ई०) पृ० २०२; फॉरेस्ट : 'हिस्ट्री आव इंडियन म्यूटिनी' भाग ३, पृ० ५१७; चार्ल्स बाल : 'इंडियन म्यूटिनी' पृ० ५३८; कैवेना : 'हाऊ आई वन दि विक्टोरिया क्रास' १८६०, पृ० २१६। कैवेना के अनुसार अंग्रेजों ने उस समय एक गाना बनाया था जो इस प्रकार है :

Where have you been to all the day
Benee Madho. Benee Madho ?
Trying to keep, Sir, out of the way
Very bad O! Very bad O!
Why so shy of British pluck
Benee Madho, Benee Madho
Because to beat you is not my luck
That very sad O! Very sad O!

कि वे अपनी तोपें भी ले गये और उन्होंने होपग्रान्ट के पहरों की ओर पश्चिम दिशा से रायबरेली की ओर प्रस्थान कर दिया था[1]। टाइम्स का सम्वाददाता रसेल, जोकि सेना के साथ था, लिखता है, "नवम्बर १६—फिर भी यह लोग हमारे लिए अधिक चतुर हैं। पहरे देने वाली टुकड़ियाँ वास्तव में बाहर गयी हुई थीं और चौकियाँ नियुक्त हो गयी थीं। सर होपग्रान्ट, उत्तर-पश्चिमी प्रदेश में थे और लार्ड क्लाइड पिछली रात्रि में दक्षिण-पूर्व में थे। प्रातःकाल २ बजे तक चन्द्रमा का प्रकाश हमारी सहायता करता रहा। चन्द्रमा जब अस्त होने लगा बेनीमाधो अपने समस्त बदमाशों, कोष, तोपों, स्त्रियों व सामान को अन्धकार में ही सावधानी से लेकर बाहर निकले और पश्चिम की ओर सर होपग्रान्ट की दाहिनी चौकी के बीच में होकर चले। वहाँ से चक्कर काटते हुए पूरवा नामक स्थान की ओर बढ़े। प्रातःकाल जैसे ही हमको उनके पीछे हटने का हाल ज्ञात हुआ, हम लोग किले में घुसे और वहाँ पड़ाव डाल दिया परन्तु किले को खाली पाया। कुछ दुर्बल वृद्ध पुरुषों, पुरोहितों, अस्वच्छ फकीरों, एक मस्त हाथी व तोपगाड़ियों के कुछ बैलों के अतिरिक्त उस किले में कोई भी न था।[2]"

चार्ल्स बॉल ने समकालीन विवरणों के आधार पर शंकरपुर किले का विवरण इस प्रकार दिया है :

"किले के बाहर चारों ओर एक गहरी परन्तु कम चौड़ी खाई थी और असमान ऊँचाई की एक मुंडेर भी थी जिसके अन्दर घने जंगल के अतिरिक्त कुछ न दिखाई देता था। प्रवेश करने के लिए कोई भी स्थान दिखाई नहीं दिया, जब तक कि हम दक्षिण की ओर २ मील के लगभग नहीं गये। खाई के बाद कई ग्राम थे जो वीरान पड़े थे। केवल कुत्ते-बिल्ली ही सड़क पर निवास करते थे। एक ग्राम में एक बहुत छोटा परन्तु बहुत सुन्दर हिन्दू-मन्दिर था जिसके बाहरी भाग में घृणित मूर्तियाँ थीं। दृढ़ संकल्प किये हुए शत्रुओं को, विरोध करने हेतु, इन ग्रामों से बहुत सी सुविधाएँ प्राप्त थीं। इन ग्रामों का विनाश ऐसी दशा में केवल घोर युद्ध द्वारा या भीषण अग्नि के द्वारा ही हो सकता था। इन्हीं ग्रामों में से एक ग्राम में होकर बाहरी किले के लिए सड़क जाती थी। मिट्टी का एक बुर्ज इसके ऊपर था परन्तु निकट की अग्नि का रुख विभिन्न दिशा में था।

१. चार्ल्स बाल : 'इंडियन म्यूटिनी', पृ० ५३८।
२. रसेल : 'माई डायरी इन इंडिया', पृ० ३२०।

द्वार बाँस का था जो खाई के उस पार एक दृढ़ मिट्टी की दीवार में खुलता था। किले के अन्दर इस द्वार से होकर जाने के लिए एक दृढ़ लकड़ी के द्वार से होकर जाना पड़ता था। अन्दर की ओर का स्थान अमेठी के समान था केवल अन्तर यही था कि केन्द्रस्थित गृह बहुत अच्छा नहीं था। एक वृद्ध ब्राह्मण ही, जो बीमार था, केवल यहाँ मिला। किले के आँगन में एक हाथी जंजीर से बँधा हुआ था। तोपगाड़ियों के बैल इधर-उधर विचर रहे थे, और डोली, डेरे, पालकी, गाड़ी और भी विभिन्न चीजें उसके अन्दर पड़ी थीं। किले के अहातों में लकड़ी की बनी कुछ वस्तुयें तथा पलँग भरे पड़े थे। बहुत सूक्ष्म दृष्टि से देखने के पश्चात् कुछ पुरानी तोड़ेदार बन्दूकें मिलीं। एक बरामदे के सामने प्रहसन के रूप में चार अत्यधिक छोटी पीतल की तोपें, जो बच्चों के खेलने की ही वस्तुएँ थीं, पड़ी हुई थीं। अन्तःपुर में स्त्रियों के कमरों में दीवारों पर जो रँगाई के चिह्न रह गये थे उनसे उनकी घृणित कलात्मक प्रवृत्ति का पता चलता था। कमरों में मूर्तियों की भरमार थी। कुछ में नक्काशी हो रही थी। ड्यूक आव वेलिंग्टन का एक चित्र था। दीवानखाने में जंगली जानवरों के चित्र खुदे थे और इसमें शीशे के झाड़ फानूस थे जो रेशमी थैलियों से ढके थे। सभा-भवन के चारों ओर के कमरों में घी, अखरोट, गेहूँ व अन्य अनाजों के अतुल ढेर मिले। बारूद बनाने की एक प्रयोगशाला भी मिली जिसमें १००० पौंड देशी बनी हुई बारूद भी थी। यह संभव है कि अवध के बहुत से किलों की अच्छी तोपें लखनऊ भेजी गयी हों या हैवलाक व अन्य सैनिकों द्वारा पिछले संघर्षों में छीन ली गयी हों। यह निश्चित है कि जिस समय बेनीमाधो ने पलायन किया तब वे अपने साथ ९ तोपें ले गये।[1]"

बेनीमाधो के शंकरपुर छोड़ देने के उपरान्त ब्रिगेडियर इवले को उनका पीछा करने के लिए नियुक्त किया गया। १७ नवम्बर को उसकी सेनाएँ भ्रिनबारा पहुँचीं। कैम्पबेल शंकरपुर के किले में थोड़ी-सी सेना छोड़कर १९ नवम्बर को १० बजे भ्रिनबारा पहुँच गया। वहाँ उसे पता चला कि बेनीमाधो डौंडियाखेड़ा पहुँच चुके हैं। कैम्पबेल ने, इस विचार से कि इवले को राना बेनीमाधो का पीछा करने में सुगमता होगी, भारी तोपें उससे ले लीं और वह उन्हें लेकर रायबरेली की ओर चल दिया।

१. चार्ल्स बाल : "इंडियन म्यूटिनी" पृ० ५३८

डौंडियाखेड़ा का युद्ध

२४ नवम्बर को प्रातःकाल अंग्रेजी सेनाएँ दो भागों में विभक्त हुईं--एक इवले के अधीन और दूसरी कर्नल जोंस के संचालन में। यह दोनों दल बेनीमाधो से युद्ध करने के लिये आगे बढ़े। विधूरा के निकट पहुँचकर कैम्पबेल ने स्वयं एक टीले पर चढ़कर सेना की स्थिति का निरीक्षण किया। बेनीमाधो की सेनाएँ युद्ध के लिये पंक्तियाँ जमाये डटी थीं। उनकी सेना का दाहिना भाग बक्सर ग्राम की ओर और बायाँ बाजू डौंडियाखेड़ा की ओर था। पीछे की ओर गंगा लहरें मार रही थीं। सामने जंगल था। बेनीमाधो को जैसे ही शत्रु की सेनाएँ दृष्टिगत हुईं उन्होंने गोलियाँ चलाने का आदेश दे दिया। जब अंग्रेजी सेनाएँ आगे बढ़ीं तो बेनीमाधो की सेनाएँ साधारण झड़प के उपरान्त नदी के बहाव की ओर किनारे-किनारे चल दीं। अंग्रेजों ने अपने घुड़सवार उनके पीछे भेजे किन्तु बहुत थोड़े से ही आदमियों को वे हानि पहुँचा सके। बेनीमाधो का बड़े वेग से पीछा किया गया किन्तु उनका पता न मिल सका[1]। रसेल लिखता है कि "बेनीमाधो वहाँ से चले गये यद्यपि उनके कुछ हजार अनुयायी इस युद्ध में मारे गये। व्यर्थ पड़ा हुआ एक किला ही केवल हमारे हाथ लगा। किसी ने भी इस किले को बेनीमाधो तथा उनके बचकर निकल भागने वाले साथियों के अतिरिक्त पसन्द नहीं किया। मुझे भय है कि मारकाट, बर्छी, संगीन का प्रयोग, जो होता रहा, उन लोगों के लिये किया जा रहा था जो वास्तव में युद्ध के नियमों के अनुसार सम्मानित शत्रु की शत्रुता को उत्तेजित करने के योग्य नहीं थे।

"बेनीमाधो अपने कोष, जो अपार बताया जाता है, को लेकर भाग गये। लूट के माल में हमें थोड़ा सा आटा व चावल और कुछ कपड़े मिले जो यूरोपियन लोगों के पहनने के योग्य नहीं थे। मैं लार्ड क्लाइड के साथ अपने शिविर की ओर सवार हुआ और मार्ग में कुछ राइफिल चलानेवालों से मिला जो अपने लाभशून्य आक्रमण से वापस बुला लिये गये थे। यह सबके सब धूल से ढके हुए थे तथा उत्तेजना के कारण अर्द्ध पागल हो रहे थे

१. फॉरेस्ट—'हिस्ट्री आव दि इन्डियन म्यूटिनी' पृ० ४२१-२२ ; चार्ल्स बॉल : 'इन्डियन म्यूटिनी' भाग २, पृ० ५४०-४२ ; कॉलिन कैम्पबेल पृ० २०३ ; कैवेना : 'हाऊ आई वन दि विक्टोरिया क्रास' पृ० २१७।

और अपनी तलवार या तो पोंछ रहे थे या अपने हाँपते हुए घोड़ों की पीठ पर हाथ फेर रहे थे। इनमें से कुछ की भयानक रूप से मृत्यु हुई। उन लोगों के अतिरिक्त जो शत्रु द्वारा मार दिये गये थे या पेड़ों में छिप गये थे, कुछ तो आक्रमण की भीषणता व धूल के कारण गहरे कुओं में गिर गये जिनमें मृत्यु निश्चित थी। उनमें से एक अभागा आज सायंकाल ही जीवित अवस्था में निकाला गया यद्यपि मेरा विश्वास है कि वह रात्रि के समय ही मर गया होगा। उन्होंने मुझे बताया कि शत्रु के एक बड़े दल का उन्होंने पीछा किया यहाँ तक कि वे एक छोटे से नाले के पास, जहाँ तोपें गड़ी हुई थीं, पहुँचे। घुड़सवार पार चले गये और उन्होंने सिपाहियों का पीछा किया। यह सिपाही दूसरे नाले पर चले गये और उसे पार करके शान्तिपूर्वक एकत्र हो गये। वहाँ, यह देखकर कि हमारे पास तोपें नहीं हैं, उन पर टूट पड़े। बन्दूकों से इतनी घोर अग्नि-वर्षा हुई कि हमें अपने सिपाही पीछे हटाने पड़े।"[1]

४ दिसम्बर को पता चला कि बेनीमाधो घाघरा के उस पार के क्षेत्र में पहुँच चुके हैं। बैसवारा पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। अंग्रेजों की दमन नीति ने वहाँ के ग्रामवासियों को कुचल दिया। किन्तु बैसवारा में आज भी बेनीमाधो की स्मृति जीवित है।

केम्पबेल वहाँ से लखनऊ वापस हुआ और पुनः ५ दिसम्बर को फैजा-बाद की ओर चल खड़ा हुआ। जब वह नवाबगंज (बाराबंकी) पहुँचा तो उसे पता चला कि बेनीमाधो घाघरा के उस पार टिके हुए हैं और बितौली का किला अपने अधिकार में करके उसमें विराजमान हैं।[2] अंग्रेजी सेनाओं को इस किले में भी पहुँचने पर वहाँ बेनीमाधो के पैर की धूल भी न मिली। रसेल अपनी 'डायरी' में २५ दिसम्बर के विवरण में लिखता है कि "बेनीमाधो तथा बेगम की सेनाएँ मिल गयी हैं और तराई में किसी जंगल में विद्यमान हैं[3]।"

३० दिसम्बर के मध्याह्नोत्तर पता चला कि बेनीमाधो, नाना साहब

१. रसेल : 'माई डायरी इन इन्डिया' पृ० ३३९, ३४०।

२. फॉरेस्ट—भाग ३, पृ० ५२६।

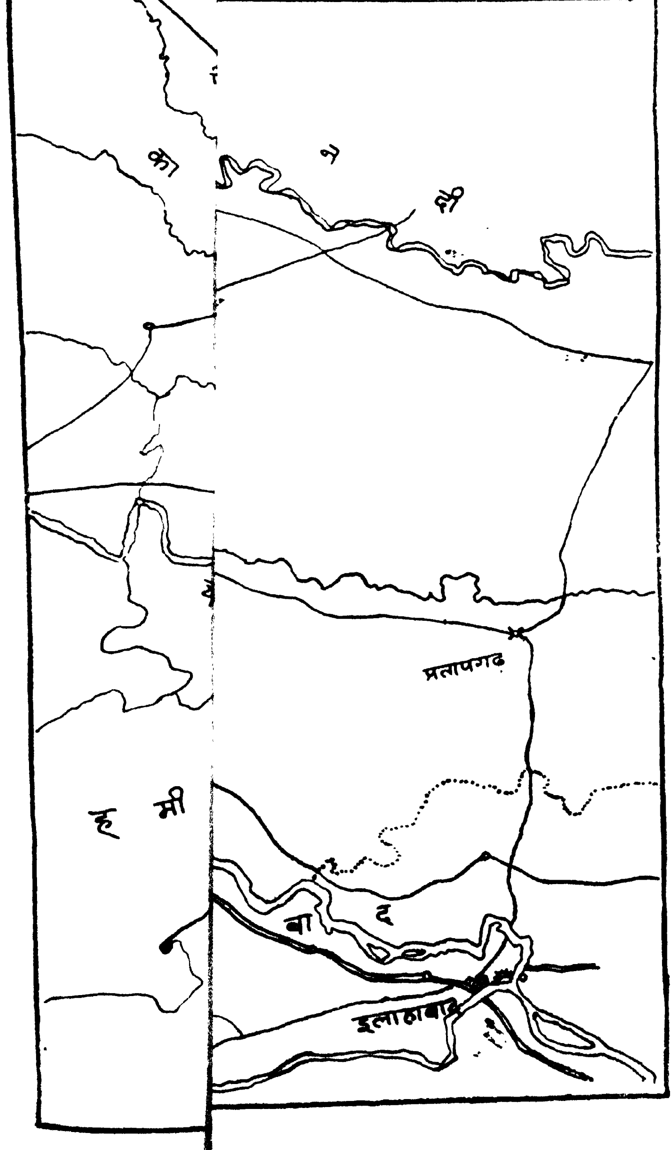
३. रसेल : 'माई डायरी इन इन्डिया' भाग २, कलकत्ता १९०६, पृ० ३७६।

तथा अन्य क्रान्तिकारी सेनासहित नानपारा के उत्तर में २० मील पर बंकी में जमा हैं[1]। कैम्पबेल की भी सेनाएँ डटी हुई थीं। कैम्पबेल सायंकाल ८ बजे अपनी सेनाएँ तैयार करके रात्रि में ही चल पड़ा और १५ मील यात्रा करके ३१ दिसम्बर को कुछ रात रहे क्रान्तिकारियों की सेना के निकट पहुँच गया। क्रान्तिकारियों की सेनाएँ जंगल के किनारे दो सड़कों के बीच में थीं। एक सड़क राप्ती की ओर जाती थी और दूसरी नैपाल की तूनरघाटी की ओर। क्रान्तिकारियों ने इस स्थान को भी साधारण युद्ध के उपरान्त छोड़ दिया।[2] सम्भवतः वे सभी नैपाल की ओर चल दिये।

श्रवण कुमार श्रीवास्तव
एम० ए० (इति०, अंग्रेजी)

१. कॉलिन कैम्पबेल, पृ० २०८।
२. वही पृ० २०८–२०६।

जुलाई, अगस्त तथा सितम्बर १८५७ की क्रान्तिकारी सेनाओं तथा अंग्रेजों में युद्धस्थलों की रूप-रेखा।



परिशिष्ट

परिशिष्ट १

बाजीराव पेशवा का उत्तराधिकारपत्र

यह इंग्लैंड की माननीया सम्राज्ञी, माननीय ईस्ट इन्डिया कम्पनी तथा प्रत्येक व्यक्ति को भिज्ञ कराने हेतु लिखा गया। यह कि धूँधूपंत, मेरे ज्येष्ठ पुत्र तथा गंगाधर राव, मेरे कनिष्ठतम एवं तृतीय पुत्र तथा सदाशिव पंत दादा, मेरे द्वितीय पुत्र पांडुरंग राव के पुत्र, मेरे पौत्र हैं; यह तीनों मेरे पुत्र तथा पौत्र हैं। मेरे पश्चात्, मेरे ज्येष्ठ पुत्र धूँधूपंत नाना, मुख्य प्रधान मेरे उत्तराधिकारी होंगे तथा पेशवा की गद्दी, राज्य, सम्पदा, देशमुखी आदि कौटुम्बिक सम्पत्ति, कोष एवं मेरी समस्त वास्तविक एवं निजी सम्पत्ति के एकमात्र अधिकारी होंगे। तथा वह, धूँधूपन्त नाना एवं उनके उत्तराधिकारी, पेशवा की गद्दी, राज्य आदि के अधिकारी होंगे तथा उनके कनिष्ठ भ्राता, गंगाधर राव, एवं उनके भतीजे पांडुरंग राव सदाशिव एवं उनकी सन्तानें. पीढ़ी दर पीढ़ी तथा सेवक एवं प्रजा आदि, जैसा कि उचित है, उनसे अवलम्बन एवं पोषण पाने के अधिकारी होंगे। तथा गंगाधर राव, एवं पांडुरंग राव, सेवक, प्रजा इत्यादि धूँधूपंत नाना, मुख्य प्रधान, के प्रति आज्ञाकारिता प्रदर्शित करेंगे तथा ईमानदारी से उनकी सेवा करते रहेंगे एवं उनके अधीन रहेंगे। तथा यदि अब मेरे स्वयं के रक्त से कोई पुत्र उत्पन्न हो ऐसी अवस्था में पूर्व कथन के अनुसार वह एवं उसके उत्तराधिकारी, पीढ़ी दर पीढ़ी मुख्य प्रधान एवं पेशवा की गद्दी के उत्तराधिकारी होंगे तथा राज्य, सम्पदा, देशमुखी इत्यादि, वतनदारी, कोष तथा मेरी अन्य जो भी सम्पत्ति हो, के अधिकारी होंगे। तथा वह अपने भ्राताओं, सेवकों एवं प्रजा के हेतु जीवन यापन के साधन उपलब्ध करेंगे। तथा धूँधूपंत नाना एवं अन्य सभी उसके व उसके उत्तराधिकारियों के प्रति आज्ञाकारिता प्रदर्शित करेंगे। मैंने यह उत्तराधिकारपत्र अपनी स्वतंत्र इच्छा से एवं सहर्ष ४थी शव्वाल, मिती अगहन बदी ५, शाके १७६१ तदनुसार ११ दिसम्बर १८३९ को लिखा। इसके पश्चात्, इससे और अधिक क्या कहा जा सकता है।

गवाह : रामचन्द्र वेंकटेश सूबादार

गवाह : कर्नल जेम्स मैनसन इंग्लैंड में

प्रथम : यह प्रपत्र मेरी देखरेख में लिखा गया तथा मेरी उपस्थिति में आज, अप्रैल के ३०वें दिवस, १८४१ को महाराजा द्वारा इस पर हस्ताक्षर एवं मुहर अंकित की गयी।

द्वितीय : नारायण रामचन्द्र, इस कागज पर आज, अप्रैल के ३०वें दिवस, १८४१ को महाराजा पंत प्रधान ने मेरी उपस्थिति में अपने हस्ताक्षर एवं मुहर अंकित किये।

तृतीय : इस प्रपत्र पर आज, अप्रैल के ३०वें दिवस, १८४१ को महाराजा पंत प्रधान ने हम लोगों की उपस्थिति में हस्ताक्षर एवं मुहर अंकित किये।

हस्ताक्षर : बापूजी सुखाराम
,, गुरबोले
,, विनायक बल्लड गोकटे
,, रामचन्द्र जेमनिश भेर्च[1]

१. 'फ्रीडम स्ट्रगिल इन यू० पी०', खंड १, पृ० १३-१४।

परिशिष्ट २

नाना राव, उनके परिवार और सेवकों के

नाम	जाति और वर्ण	आयु	रंग	कद और शारीरिक बनावट	चेहरे का आकार	नासिका का आकार
नानाराव धूँधूपन्त	दक्षिणी ब्राह्मण	३६	गोरा	५ फीट ८ इंच, शक्तिशाली गठन एवं बलिष्ठ	चपटा और गोल	सीधी और सुडौल
बाला	वही	२८	साँवला	लम्बा एवं कृश	लम्बा	बेडौल
पांडुरंग राव	वही	३०	गोरा	वही	वही	लम्बी एवं मोटी
नारूपंत भल्ल भट्ट	वही	५५	पीत	लम्बा और सुडौल	—	वही
सदाशिवपंत उदगिर	वही	५५	साँवला	छोटा व गठा हुआ	चौड़ा	विशाल
ज्वालाप्रसाद (ब्रिगेडियर)	कन्नौज, जो कानपुर से कुछ दूरी पर है, का ब्राह्मण	४०	—	लम्बा और कृश	लम्बा	लम्बी एवं पतली
आभा धनुकधारी (बख्शी)	दक्षिणी ब्राह्मण	६०	गोरा	छोटा एवं स्थूल	गोल और भारी	चपटी

हुलिये (शारीरिक विवरण)

नेत्रों का आकार	दाँत	वक्षस्थल पर चिह्न	चेहरे पर चिह्न	केशों का रंग	कानों में बालियों के चिह्न	अन्य विवरण
विशाल गोल नेत्र	सम	बालों से ढका	—	काला	हाँ	मराठी विशेषताएँ स्पष्टतया विद्यमान हैं। पैर के अँगूठे में सूजे के आघात का चिह्न है। और अब दाढ़ी बढ़ा लेने के कारण मुसलमानी रूप है। एक कटे कान का सेवक कभी उनका साथ नहीं छोड़ता।
गोल	सम्मुख के दाँत नहीं हैं।	कुछ बालों से ढका हुआ	चेचक के चिह्न	वही	वही	वक्षस्थल पर एक छोटी सी गोली लगनेका चिह्न है और दाढ़ी बढ़ा लेने के कारण मुसलमानी रूप है।
विशाल	—	—	—	वही	वही	विशाल मस्तक है। गलित-कुष्ठ के चिह्न दृष्टिगोचर होना प्रारम्भ हो गये हैं। इनका भी मुसलमानी रूप है।
छोटे	दीर्घ	वक्षस्थल पर कुछ श्वेत केश	—	श्वेत एवं अत्यंत थोड़े रह गये हैं	वही	—
गोल	सम	—	—	—	वही	आपने दायें तथा बायें दोनों हाथों का प्रयोग कर सकते हैं।
वही	वही	वही	चेचक के चिह्न	—	कोई नहीं	नाक से बोलता है और लम्बे बालों की लटें रखता है। उसका भी मुसलमानी रूप है।
भूरी और छोटी	लगभग सब गिर गये	—	—	बहुत कम रह गये हैं	हाँ	गलमुच्छे नहीं हैं।

नाम	जाति और वर्ण	आयु	रंग	कद और शारीरिक बनावट	चेहरे का आकार	नासिका का आकार
लालपुरी—बारूद-खाने का अध्यक्ष	गोसाईं	५०	—	छोटा और कृश	गोल	सीधी और मोटी
तात्या टोपे, कप्तान	दक्षिणी ब्राह्मण	४२	साँवला	मझोला कद और मोटा	फूला हुआ	चपटी
गंगाधर तात्या	वही	२३	गोरा	छोटा और सुडौल	वही	लम्बी और चपटी
रामू तात्या, बाबा भट्ट का पुत्र	वही	२५	पीत	मझोला कद और कृश	—	सीधी
अजीमुल्ला	मुसलमान	—	वही	लम्बा और सुडौल	—	चपटी

उत्तरप्रदेश के सचिवालय के प्रपत्र संग्रहालय में सुरक्षित एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिं डिपार्टमेंट—ए० पृ० १६, इंडेक्स नं० १७, प्रोसीडिंग्स नं० ७२, दिनांक जुलाई १८६

नेत्रों का आकार	दाँत	वक्षस्थल पर चिह्न	चेहरे पर चिह्न	केशों का रंग	कानों में बालियों के चिह्न	अन्य विवरण
विशाल	छोटे और सम	—	—	—	नहीं	मुसलमानी रूप है। उनकी दाढ़ी बढ़ रही है।
विशाल	—	कुछ काले बाल	चेचक के दाग	—	—	कानपुर में क्रान्ति का प्रवर्तक
भूरी	छोटे और सुन्दर	कोई नहीं	कोई नहीं	काले	हाँ	बापू भ्राता का पुत्र है। उनका वक्षस्थल नारियों के समान है।
काली	सम	—	—	वही	नहीं	क्रान्ति में अपने पिता के नीचे कार्य किया है।
—	—	—	—	—	—	बनावटी स्वरों में बोलते हैं।

पोलिटिकल डिपार्टमेंट जनवरी से जून १८६४ तक, जनवरी १८६४ भाग १, पोलिटिकल

परिशिष्ट २ अ

नाना के परिवार की स्त्रियों का हुलिया (शारीरिक विवरण)

नाम	जाति एवं वर्ण	आयु	कद और शारीरिक बनावट	रंग	चेहरे का आकार	नासिका का आकार	मस्तक पर चिह्न	नेत्रों का आकार	चेहरे पर चिह्न	अन्य विवरण
नाना की धर्मपत्नी	दक्षिणी ब्राह्मण	१७	स्थूल और छोटी	गोरा	चौड़ा	विशाल	—	गोल	चेचक के चिह्न	नत-शीश चलती हैं।
काशीबाई—बाला की धर्मपत्नी	वही	२३	लम्बी	वही	लम्बा	सुकोमल एवं लम्बी	—	विशाल	वही	अत्यन्त लम्बे एवं काले केश हैं।
रमाबाई—राव की धर्मपत्नी	वही	२५	स्थूल एवम् मझोला कद	वही	गोल	चौड़ी एवम् चपटी	मस्तक पर केश नहीं हैं	गोल	चेचक के चिह्न	—
मैनाबाई—बाजीराव की विधवा पत्नी	वही	१६	कृश एवम् छोटी	वही	छोटा	छोटी और चपटी	—	वही	—	*—
सेवीबाई—बाजीराव की विधवा पत्नी	वही	१८	लम्बी एवम् चपटी	वही	लम्बा	मोटी एवम् लम्बी	—	विशाल	—	*—
बैजा साहब—बाजीराव की पुत्री	वही	१२	लम्बी एवम् कृश	वही	गोल	सीधी	—	गोल	—	*—

* यह विधवाएँ (अंग्रेजों की) शुभचिंतका थीं एवम् नाना के विरुद्ध कटुतापूर्वक शिकायत करती हैं जिन्होंने उन्हें ढोरगढ़ी में बाजीराव की पुत्री के साथ बन्दी बना रक्खा था; वह शासन द्वारा स्वतंत्र किये जाने की कामना करती हैं।

* एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स डिपार्टमेंट, पोलिटिकल, जनवरी से जून १८६४; भाग १, जनवरी १८६४, पोलिटिकल डिपार्टमेंट—ए०—पृ० १८। जुलाई ४, १८६३ नं० ७२, इंडेक्स नं० १७ तथा म्यूटिनी बस्ते : कानपुर कलेक्ट्रेट : नाना साहब को पहचानने के

परिशिष्ट २ अ के साथ

नाना साहब का परिवार

महादेव के, जो दक्षिणी ब्राह्मण थे तथा बम्बई के निकट मथेरान पहाड़ी की तलहटी में निवास करते थे, उनके तीन पुत्र थे; (१) बालाभट्ट, (२) नाना धूँधू, (३) बाला, तथा दो पुत्रियाँ मथुराबाई तथा श्यामाबाई थीं। बालाभट्ट के अतिरिक्त इन सब बच्चों को बाजीराव ने गोद लिया था।

नाना के अतिरिक्त कानपुर के हत्याकाण्ड में सक्रिय भाग लेने वाले निम्नांकित हैं :—

(१) बालाभट्ट- ज्येष्ठ भ्राता।

(२) बाला—सबसे छोटा भाई—जिसने नाना की १५ जुलाई १८५७ के हत्याकाण्ड की आज्ञा का पालन पैशाचिक प्रसन्नता के साथ किया।

(३) ज्वालाप्रसाद—जिसको नाना ने ब्रिगेडियर बनाया था।

(४) अजीमुल्लाह (एक आया के पुत्र)—जिनको नाना ने कानपुर का कलेक्टर नियुक्त किया—कानपुर स्कूल में इनको अंग्रेजी पढ़ायी गयी थी तथा नाना द्वारा यह इंग्लैंड और (यूरोपीय) महाद्वीप भेजे गये। जनरल ह्वीलर के आत्मसमर्पण के उपरान्त यूरोपियनों के पकड़ने में वह सबसे प्रमुख थे।

इस सूची में गिनाये हुए समस्त (मनुष्य) २७ जून १८५७ को हत्याकांड के समय घाट पर उपस्थित थे।

परिशिष्ट ३

प्रतिलिपि बयान—हरिश्चन्द्र सिंह, सुत बृजेन्द्रबहादुर सिंह, निवासी ग्राम जगदीशपुर, तह० सदर, जिला प्रतापगढ़, अवस्था ४६ वर्ष।

श्रीमान् हाकिम महोदय तहसील कुन्डा, जिला प्रतापगढ़, आज्ञानुसार श्रीमान् जिलाधीश महोदय, ब माह जुलाई सन् १९५५ ई०।

बयान—हरिश्चन्द्र सिंह सुत बृजेन्द्रबहादुर सिंह, निवासी ग्राम जगदीशपुर, तहसील सदर, जिला प्रतापगढ़ अवस्था ४६ वर्ष।

बाबत ऐतिहासिक जानकारी बाबत १८५७ ई० के प्रमुख सेनानी, बिठूर के पेशवा सरकार नाना बाजीराव नाना साहब पेशवा।

चूँकि मेरे पूर्वज पूना के राजवंश पेशवा सरकार के खैरख्वाह रिसालदार थे, जिससे पेशवा वंशीय नाना साहब से पूर्ण तथा पूर्व, मेरे बाबा का परिचय था, नाना साहब अपनी अज्ञात अवस्था में मेरे घर पर मेरे पूर्वज के प्रेमवश आया करते थे। मेरी समझ में सन् १९२१ ई० में प्रथम बार वह अपने इसी पुत्र के मृत्युकर्म में जाते समय आये थे और मेरे घर पर ठहरे थे। पुनः द्वितीय आगमन सन् १९२४ में मेरे घर पर अपनी धर्मपत्नी की मृत्यु-क्रिया में जाते समय आये थे और अपने साथ वह मुझे भी मदरामऊ ले गये थे। वहाँ पर कुछ लोगों को उनको माधोलाल कहते सुना और मेरे घर पर मरहठा राजा कहे जाते थे। मुझे वहीं आशंका हुई थी। तत्पश्चात् घर को वापस आने पर अपने पितामह ठाकुर जदुनाथ सिंह से उपर्युक्त बात बतायी तो हमारे पितामह ने उनके जीवनचरित्र और उनको बिठूर के नाना साहब पेशवा होने को तथा राजा बाजार के सन्निकट मदरामऊ गाँव में माधोलाल नाम व जात बदले होने की और नैमिषारण्य में अयोध्याकुटी आश्रम में राजाराम शास्त्री रिटायर्ड जज बनकर रहने को बतलाया था। तृतीय बार माघ मास में पूर्वीय तीर्थों से यानी गंगासागर आदि से लगभग डेढ़ साल की तीर्थयात्रा के बाद मेरे यहाँ आये थे। और मेरे यहाँ से नैमिषारण्य की तरफ चले गये थे। नैमिषारण्य जाते समय मेरे बाबा ठाकुर जदुनाथ सिंह को भी वह अपने साथ लिवा ले गये थे और मेरे बाबा के लौटने के बाद उनको १ फरवरी सन् १९२६ ई० को उनकी आँखों की देखी मृत्युघटना घर पर बतलाई थी। मुझे भली भाँति मालूम है और

वह यह भी बतलाये थे कि अकस्मात् नदी की बाढ़ आ जाने में वह लापता हो गये थे। उनके साथ अजीमुल्ला खाँ नाम का एक मुसलमान, जो दाहिनी आँख तथा दाहिने हाथ का जख्मी था और ऊँचा लम्बा और गोरे बदन का था, अक्सर रहता था और नाना साहब पेशवा बहुत ही ऊँचे सुन्दर गोरा बदन के थे। उनके द्वितीय आगमन में जब मैं मढ़रामऊ उनके साथ गया था तो उनके पुत्र रामसुन्दर तथा पौत्र बाजीराव सूर्यप्रताप को भी देखा था और उनसे परिचित हुआ था। नाना साहब पेशवा ने स्वयं इन सबको अपना पुत्र और पौत्र होने की शिनाख्त दी थी।

अतः इस बयान द्वारा मैं शिनाख्त देता हूँ कि यही बाजीराव सूर्यप्रताप नाना साहब पेशवा के पौत्र और इनके बाबा माधोलाल ही बिठूर के नाना साहब पेशवा थे।

प्रार्थी हरिश्चन्द्र सिंह सुत बृजेन्द्र बहादुर सिंह

ह० हरिश्चन्द्र सिंह सुत ठा० बृजेन्द्र बहादुर सिंह — ता० १८—१०—४४

नि० ग्राम जगदीशपुर परगना व तहसील व — ह० हरिश्चन्द्र सिंह स्वयं

जिला प्रतापगढ़ अवध — १८—१०—४४

ता० १८-१०-४४

परिशिष्ट ४

प्रतिलिपि कथन—परमेश्वरबख्श सिंह ग्राम रायगढ़ प० पट्टी जिला प्रतापगढ़ सन् १८५७ ई० के निमित्त प्रमुख नेता बिठूर के नाना साहब पेशवा अर्थात् पेशवा सरकार नाना बाजीराव।

मेरे बाबा हनवत सिंह व नाना साहब पेशवा व उनके परम स्नेही अजीमुल्ला खाँ में पूर्व परिचय तथा प्रेम था। और कभी-कभी आया करते थे। मेरे बाबा उनको मरहठा राजा कहा करते थे। उनका पूर्ण परिचय मुझको मेरे बाबा ही से हुआ था। सन् १९१४ ई० में मुझको अपने बाबा के साथ स्थान मदरामऊ में उनके पौत्र के जन्मोत्सव में शामिल होने का अवसर मिला था। उसमें मैंने उनको राजा बाजार के राजा सिधरामऊ के राजा के साथ राजसी शक्ल में दाढ़ी लगाये बैठे देखा था। उसके बाद सन् १९१२ के लगभग मेरे बाबा की मृत्यु हुई उसके बाद मैं बम्बई चला गया। सन् १९१६ के अन्त में मुझसे फिर बम्बई में मुलाकात हुई तो आप अकेले साधु वेश में थे। सन् १९१७ के आरम्भ में मैं और नाना साहब व उनके कुछ शिष्य देहली तक साथ-साथ आये और वह देहली में रुक गये और मैं घर चला आया था। उसके बाद वह अपने साथी अजीमुल्ला खाँ के साथ दिल्ली की वापसी में मेरे यहाँ होते हुए एक साल के बाद घर पहुँचे थे।

उसके पश्चात् सन् १९४७ ई० में मैं दलीपपुर में मुलाजिम था। तब बाजीराव सूर्यप्रताप ने भी किसी संकटापन्न अवस्था में वहाँ शरण पायी थी। उस समय मैंने स्वयं तथा राजा साहब से मदद कराई थी।

अतएव मैं यह प्रमाणित करता हूँ कि यह बाजीराव सूर्यप्रताप बिठूर के नाना साहब पेशवा के ही नाती हैं और वही नाना साहब नाम जात बदल कर उपर्युक्त ग्राम में छिपे थे।

पि० परमेश्वरबख्श सिंह ग्राम रायगढ़, प० पट्टी, जिला प्रतापगढ़ दि० २९-७-५९ ई०

परिशिष्ट ५

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के माननीय डायरेक्टरों की सेवा में स्वर्गीय महाराजा बाजीराव पेशवा पंत प्रधान बहादुर के सुपुत्र महाराजा श्रीमन्त धूँधूपंत नाना साहब का प्रार्थनापत्र

निवेदन करता है,

कि आपके प्रार्थी के पिता का देहावसान २८ जनवरी १८५१ (ई०) को इस पूर्ण विश्वास के साथ हुआ था कि जो पेन्शन उन्हें भारतीय अंग्रेजी शासन तथा उनमें हुई १ जून, १८१८ (ई०) की संधि के अन्तर्गत उन्हें प्रदान की जाती थी, आपके प्रार्थी एवं उनके अन्य दत्तक पुत्रों को प्राप्त होती रहेगी। किन्तु इस दिवस तक उत्तर-पश्चिमी प्रान्त के शासन द्वारा आपके प्रार्थी तथा पेशवा के शेष बड़े परिवार के हेतु किसी प्रकार का प्रबन्ध अस्वीकार किया जाता रहा है; तथा सर्वोच्च शासन ने, उससे इस विषय पर अपील करने के उपरान्त भी, उसका कोई उत्तर नहीं दिया है तथा अपने कर्त्तव्य की इति यह आदेश देने में ही समझी है कि विषय उनके समक्ष अधीनस्थ शासन द्वारा उपस्थित किया जाय। स्थानीय शासन द्वारा अपनाया गया मार्ग स्वर्गीय राजा के बहुसंख्य परिवार, जो कि पूर्णतया ईस्ट इन्डिया कम्पनी के वचनों पर आश्रित हैं, के प्रति असहृदयतापूर्ण ही नहीं वरन् दीर्घकाल से चले आये राजवंशों के प्रतिनिधियों के अधिकारों के प्रति असंगत भी है। अतः आपका प्रार्थी माननीय कोर्ट के सम्मुख न केवल संधियों के विश्वास ही के आधार पर वरन् उस लाभमात्र के आधार पर जिसे कि ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने मराठा साम्राज्य के अन्तिम सम्राट् द्वारा प्राप्त किये थे, तुरन्त आवेदन करना आवश्यक समझता है, तथा आपका प्रार्थी इस उद्देश्य हेतु उस प्रार्थनापत्र की एक प्रतिलिपि संलग्न करता है जो अत्यधिक माननीय गवर्नर जनरल की सेवा में उत्तर-पश्चिमी प्रान्त के शासन द्वारा भेजा गया था।

२. यह कि आपका प्रार्थी सहर्ष विश्वास कर लेगा कि एक पवित्र संधि

द्वारा प्रदत्त पेन्शन पर प्रतिबन्ध लगाने का निश्चय कम्पनी द्वारा दिये गये आश्वासनों पर उचित विचार किये बिना ही लिया गया था। संधियों के नियमों में से एक धारा के विशेष अर्थ निकालना तथा अन्य के अति सहृदयतापूर्ण अर्थ निकाल कर कार्यान्वित करना अब तक हुई सब संधियों के तात्पर्य के विरुद्ध होगा। इस प्रकार १३ जून, १८१७ (ई०) की संधि की १४ वीं धारा के अनुसार माननीय राव पंडित प्रधान बहादुर अपने तथा अपने उत्तराधिकारियों के मालवा में उन सब अधिकारों एवं भू-खंडों का जो उन्हें सन्धि की ११ वीं धारा के अन्तर्गत प्राप्त हुए थे, तथा हर प्रकार के अधिकार एवं महत्व, जो उन्हें नर्बदा नदी के उत्तर के देश में प्राप्त हों, का माननीय ईस्ट इन्डिया कम्पनी के पक्ष में परित्याग करते हैं। इस सन्धि द्वारा उन्होंने अंग्रेजी शासन के पक्ष में ३४ लाख रुपये वार्षिक की मालगुजारी वाले भू-खंडों का परित्याग किया। अब जैसा कि अंग्रेजी शासन माननीय स्वर्गीय बाजीराव तथा उनके उत्तराधिकारियों पर यह परित्याग एक बन्धन मानता है तथा इस परित्याग के उपलक्ष्य में उन्हें ८ लाख रुपये वार्षिक की पेन्शन स्वीकृत की, का यह तात्पर्य कदापि नहीं था कि वे अपने तथा अपने उत्तराधिकारियों के निमित्त ३४ लाख रुपये वार्षिक की नियमित आय, जिसमें समुचित मात्रा में वृद्धि की सम्भावना हो, उपर्युक्त के चतुर्थांश को केवल अपने जीवन भर लेना स्वीकार कर, परित्याग कर दें। और भी, माननीय स्वर्गीय बाजीराव को यह पेन्शन अंग्रेजी शासन द्वारा उपहार स्वरूप नहीं वरन् तदनन्तर विधिवत् की गयी तथा प्रमाणित संधि के अन्तर्गत दी गयी थी, जिसके अनुसार अंग्रेजी शासन को एक लम्बी वार्षिक आय प्राप्त हुई जिसका केवल एक लघु भाग ही माननीय (बाजीराव) को स्वयं एवं परिवार के पोषण हेतु दिया गया था। अतः आपका प्रार्थी यह निवेदन करता है कि चौंतीस लाख वार्षिक की नियमित आय का आठ लाख रुपये की पेंशन के उपलक्ष्य में परित्याग, इस वास्तविक पूर्व निश्चय को प्रमाणित करता है कि एक का भुगतान दूसरे की प्राप्ति पर निर्भर है; अतः जब तक यह प्राप्तियाँ जारी रहेंगी पेन्शन का भुगतान भी होता रहेगा। पेशवा ने सभी अपेक्षित (शर्तों) का पालन किया, अपने राज्य का कम्पनी के पक्ष में परित्याग कर दिया तथा स्वयं को एवं अपने परिवार को उनके हाथों में सौंप दिया। कम्पनी ने लार्ड हेजटिंग्स द्वारा निर्धारित वैध स्तर पर उनका जीवन पर्यन्त पोषण कर अपने

वचन का केवल आंशिक पालन ही किया, परन्तु उनके परिवार सम्बन्धी भाग की उपेक्षा की। परिवार की चर्चा से उनकी (बाजीराव की) मृत्यु उपरान्त उनके परिवार के पोषण से आशय है। अन्य किसी अवस्था में इस प्रकार की चर्चा अनावश्यक थी क्योंकि राजा के पोषण की व्यवस्था से अनिवार्य रूप में परिवार के पोषण से तात्पर्य होगा। यहाँ तक कि यदि पेशवा एवं कम्पनी के मध्य हुई सन्धि में परिवार की चर्चा तक न होती तब भी प्रपत्र की प्रकृति एवं शर्तों से यह कमी दूर हो जाती।

३. यह कि आपका प्रार्थी, कम्पनी का अन्य राजाओं के वंशजों के प्रति व्यवहार तथा पेशवा के परिवार, जिसका वह (प्रार्थी) स्वयम् है, द्वारा अनुभव किये गये व्यवहार के अन्तर को समझने में असमर्थ है। मैसूर के शासक ने कम्पनी के प्रति गहन शत्रुता दर्शायी तथा आपके प्रार्थी का पिता उन राजाओं में से एक था जिनकी सहायता की याचना कम्पनी ने उस निर्दय शत्रु को कुचलने के लिए की थी। जब उस नायक की मृत्यु हाथ में तलवार लिये ही हो गयी तो कम्पनी ने उसकी सन्तानों को उनके भाग्य पर छोड़ने की कौन कहे, उसके वंशजों को शरण एवं सहृदय सहायता एक से अधिक पुश्तों तक बिना वैध अथवा अवैध में अन्तर किये हुए दी। उसके बराबर अथवा और अधिक ही सहृदयता से कम्पनी ने दिल्ली के पदच्युत सम्राट् को कठोर कारावास से मुक्त कराया, राजसत्ता के चिह्नों से पुनः विभूषित किया एवम् पर्याप्त मालगुजारी वाला भू-खंड प्रदान किया जो कि आज तक उसके वंशजों के पास चला आता है। आपके प्रार्थी की स्थिति में अन्तर कहाँ पर है? यह सत्य है कि पेशवा ने भारतीय अंग्रेजी शासन के साथ वर्षों की मित्रता के पश्चात् जिसके बीच उन्होंने (पेशवा ने) उनको (अंग्रेजों को) आधे करोड़ रुपये की आय वाला भू-खंड दिया, (मुझे) दुख है उनसे युद्ध किया था जिसके द्वारा उन्होंने अपना राजसिंहासन संकट में डाल दिया। परन्तु चूँकि वे अत्यन्त दयनीय दशा तक नहीं पहुँचे थे अथवा यदि पहुँचे भी तो अंग्रेजी सेनाध्यक्ष की शर्तों को स्वीकार करके उन्होंने युद्ध समाप्त कर दिया था और स्वयं को एवं अपने परिवार को कम्पनी की दयापूर्ण छत्र-छाया में रखने हेतु अपने सम्पन्न राज्य-खंड का कम्पनी के पक्ष में परित्याग कर दिया था, तथा चूँकि कम्पनी अब भी उनकी पैतृक सम्पत्ति की आय से लाभ उठा रही है तो उनके वंशज किस सिद्धान्त के आधार पर उन शर्तों में

सम्मिलित पेन्शन एवं राजसत्ता के चिह्नों से वंचित किये जा रहे हैं ? उनके परिवार का कम्पनी की कृपादृष्टि एवं आश्रय पर अधिकार विजित मैसूर राज्य वालों अथवा बन्दी मुगल शासक से किन अंशों में कम है ?

४. यह कि प्रार्थी उस राजा के प्रतिनिधि होने के नाते स्वयं तथा पेशवा के परिवार दोनों के लिए (संधि द्वारा) निर्देशित पेन्शन के चलते रहने की याचना करता है। माननीय कोर्ट को सम्भवतः ज्ञात है कि पेशवा एक परिवार छोड़ गये हैं जो संधि की शर्तों के आधार पर कम्पनी से उचित पोषण का अधिकारी है, तथा यह कि उन्होंने (बाजीराव ने) हिन्दू विधि के अनुसार तीन पुत्रों को गोद लिया था जिसमें से आपका प्रार्थी ज्येष्ठ है, अतः इस प्रकार तथा साथ ही पेशवा के वसीयतनामा के अनुसार वह (प्रार्थी) उनकी (बाजीराव की) उपाधि एवं अधिकारों का उत्तराधिकारी है। आपका प्रार्थी यह अनुमान नहीं कर सकता है कि स्थानीय शासन अथवा माननीय कोर्ट इस बात से अनभिज्ञ है कि हिन्दू विधि के अनुसार दत्तक एवं आत्मज पुत्र में तनिक भी अन्तर नहीं होता है। परन्तु यदि (इस सम्बन्ध में) कोई संदेह है, तो आपका प्रार्थी मिस्टर सदरलैंट का प्रमाण प्रस्तुत करने की अनुमति चाहता है। (उनका कथन है) कि हिन्दुओं की धार्मिक मर्यादा के अनुसार किसी व्यक्ति की अन्त्येष्टि तथा अन्य क्रियाओं हेतु उसके एक पुत्र का होना नितान्त आवश्यक है। परिणामस्वरूप, वैध पुत्र के अभाव में प्रमाणित नियमों के अनुसार किसी सम्बन्धी अथवा किसी अन्य को गोद लिया जाता है तथा इस प्रकार विधिवत् गोद लिया हुआ पुत्र, आत्मज पुत्र के सब इहलौकिक अधिकारों का अधिकारी होता है। हिन्दू विधि के एक अन्य विशिष्ट ज्ञाता सर विलियम मैकनाटन के शब्दों में "दत्तक पुत्र सर्वथा गोद लेने वाले पिता के परिवार का सदस्य होता है, तथा वह उसकी (गोद लेने वाले पिता की) सपिण्डक तथा पैतृक संपत्ति का उत्तराधिकारी होता है।"

५. यह कि वह संधि जो कम्पनी एवं स्वर्गीय पेशवा के दत्तक भ्राता इम्रत (अमृत) राव के मध्य हुई थी, के अनुसार उनके तथा उनके पश्चात् उनके दत्तक पुत्र के लिए पोषण का वचन दिया गया था, कम्पनी ने उस दत्तक पुत्र को आत्मज पुत्र के समान माना है। इस कथन की पुष्टि अनेक राजाओं के दत्तक पुत्रों को उपर्युक्त के उचित उत्तराधिकारी माने

जाने से होती है जिनमें से कुछ, जो कि कम्पनी की सहमति से अब तक शासन कर रहे हैं, यह हैं:—

हिन्दुस्तान (उत्तर भारत में)

ग्वालियर के राजा जयाजी राव सिन्धिया
इन्दौर के जसवन्त राव होलकर
धौलपुर के भगवन्त बहादुर सिंह
दतिया के राजा विजै (विजय) बहादुर सिंह
नागपुर के रघूजी भोंसले
भरतपुर के सवाई बलवन्त सिंह बहादुर

दक्षिण में—

औंर के पंत पिरथी निधी
भोर के सुचीकू पंत
शलतन के नायक साहब नैनहालकर
जीत के दुफला
राव साहब पटवर्धन, जानाखण्डी

यही स्थिति समस्त भारतवर्ष में कम्पनी के न्यायालयों की दिनचर्या में दृष्टिगोचर होती है जो कि राजाओं, भूमिपतियों तथा प्रत्येक श्रेणी के नागरिकों के दत्तक पुत्रों को उन लोगों के रक्त द्वारा सम्बन्धित उत्तराधिकारियों के विरुद्ध उनकी सम्पत्ति प्राप्त करने का आदेश देते हैं, स्पष्ट होती है। वास्तव में जब तक अंग्रेजी भारतीय शासन पवित्र हिन्दू विधि की अवहेलना करने एवं हिन्दू धर्म की परम्परा का उल्लंघन करने को, जिन दोनों का दत्तक पुत्र बनाना प्रमुख अंग है, तत्पर नहीं है, आपका प्रार्थी समझ सकने में असमर्थ है कि किस आधार पर स्वर्गीय पेशवा की पेन्शन से उसे केवल उनका दत्तक पुत्र होने के कारण ही वंचित रखा जा सकता है।

६. यह कि यद्यपि आपके प्रार्थी के पिता, स्वर्गीय बाजीराव अंग्रेजी शासन द्वारा शास्त्रों के विधान के पालन के प्रति दिखाये गये सम्मान से पूर्णतः परिचित थे तथा इससे भी पूर्ण रूप से भिज्ञ थे कि इन विचारों के अनुसार गोद लेने की प्रथा की सचाई एवं वैधता पर कभी संदेह नहीं प्रकट किया गया था, फिर भी स्वर्गीय माननीय (बाजीराव) ने अंग्रेजी

शासन के प्रति आदर के कारण अपनी इच्छा की सूचना देना अपना कर्त्तव्य समझा, एतदर्थ उन्होंने कमिश्नर के द्वारा कलकत्ते में सर्वोच्च शासन के १८४४ (ई०) में इसकी सूचना भेज दी थी। यदि स्वर्गीय माननीय (बाजीराव) ने गोद लेने का निश्चय केवल अन्य राजाओं की रीति का अनुसरण करने मात्र के लिए लिया होता तो अंग्रेजी शासन को इसकी सूचना देने का किसी प्रकार का कोई कारण न होता क्योंकि अंग्रेजी साम्राज्य में शास्त्रों के विधान द्वारा प्रस्तावित धार्मिक एवं गृहस्थी सम्बन्धी रीतियों का पालन करने की प्रत्येक देशवासी (भारतीय) को पूर्ण स्वतन्त्रता है। अतः यह प्रकट है कि सर्वोच्च शासन को अपने विचार से भिज्ञ कराने में माननीय (बाजीराव) का ध्येय एक ऐसे पग के लिए सहमति प्राप्त करना था जो शास्त्रों के विधान एवं भारतीय शासन की स्वीकृति द्वारा उनके दत्तक पुत्र को उन सब पदवियों, विशेषाधिकारों तथा सुविधाओं का, जिनका भोग माननीय स्वर्गीय बाजीराव ने स्वयं मृत्यु पर्यन्त किया, अधिकारी बना देगा। इस सूचना के उत्तर में सर्वोच्च शासन ने केवल यह कहा था कि वह इस प्रश्न पर उचित समय आने पर विचार करेगी, तथा यह कि माननीय कोर्ट आफ डायरेक्टर्स से प्रस्ताव को अपनी सहमति प्रदान कर दी थी, तदनन्तर इस विषय पर स्वर्गीय बाजीराव की मृत्यु तक कोई ध्यान नहीं दिया गया, जो दुखद घटना २८ जनवरी, १८५१ (ई०) को घटित हुई, उस समय से पेन्शन, जो कि तब तक नियमित रूप से दी गयी थी, सहसा रोक दी गयी तथा यहाँ तक कि बिठूर की जागीर भी अंग्रेजी शासन द्वारा रोक रक्खी गयी थी। अब आपका प्रार्थी यह निवेदन करता है कि १३ जून, १८५७ (ई०) की संधि द्वारा निर्देशित पेन्शन के चलते रहने देने अथवा रोकने का अंग्रेजी शासन का निश्चय माननीय स्वर्गीय बाजीराव की मृत्यु से बहुत पहले लिया गया होगा, अथवा यह कैसे सम्भव था कि उसी क्षण से ऐसा व्यवहार किया जाता जब से अंग्रेजी शासन को उनकी मृत्यु की सूचना दी गयी ? अतः यदि अंग्रेजी शासन ने संधि द्वारा निश्चित भत्ते के माननीय (बाजीराव) के उत्तराधिकारी को मिलने से रोक देने का पूर्व निश्चय कर लिया था, तो यह स्वर्गीय राजा के प्रति न्यायपूर्ण कृत्य होता कि, उन्हें इसकी सामयिक चेतावनी दे दी जाती जिससे वे माननीय कोर्ट से पुनर्विचार की प्रार्थना कर सकते तथा यदि आवश्यक होता तो माननीया इंगलैंड की सम्राज्ञी के शासन को अपने मुकदमे के वास्तविक गुणों से

परिचित करा सकते। इस प्रकार की किसी सूचना के अभाव में माननीय (बाजीराव) आवश्यक रूप से यह मानने पर विवश हो गये कि अंग्रेजी शासन ने उनके दत्तक पुत्र को उन सब विशेषाधिकारों के पाने की मौन स्वीकृति दे दी जो शास्त्रीय विधान द्वारा निर्देशित हैं। माननीय (बाजीराव) पर इस विश्वास का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने इस विषय पर अंग्रेजी शासन से पुनः कहने को तनिक भी आवश्यक नहीं समझा, तथा आपका प्रार्थी माननीय कोर्ट आव डायरेक्टर्स के सर्व-विदित न्याय पर यह निश्चय करना छोड़ता है कि इस महत्वपूर्ण विषय पर उनकी (बाजीराव की) सूचना के प्रथम उत्तर तथा शासन का तदनन्तर मौन रहना उनकी (बाजीराव की) धारणा को उचित ठहराता है अथवा नहीं।

७. यह कि यदि पेन्शन को इस विचार से रोका गया है कि स्वर्गीय पेशवा ने अपने परिवार के पोषण हेतु पर्याप्त सम्पत्ति छोड़ी है तो यह असंगत होगा एवम् अंग्रेजों के अधीन भारत के इतिहास में अभूतपूर्व। आठ लाख रुपये वार्षिक की पेन्शन, अंग्रेजी शासन की ओर से माननीय स्वर्गीय बाजीराव को अपने एवं अपने परिवार के पोषण हेतु स्वीकृत हुई थी; अंग्रेजी शासन को इससे कोई तात्पर्य नहीं कि स्वर्गीय राजा ने इस धन का कौन सा भाग वास्तव में व्यय किया, न ही इस प्रकार की कोई मान्यता हुई थी कि माननीय स्वर्गीय बाजीराव विशेष संधि द्वारा प्राप्त, अपनी वार्षिक पेन्शन, जो कि अंग्रेजी शासन के पक्ष में चौंतीस लाख रुपये वार्षिक की नियमित मालगुजारी के भू-खंड का परित्याग करने के उपलक्ष्य में उन्हें प्रदान की गयी थी, के प्रत्येक अंश को व्यय कर देने को बाध्य थे। इस शर्तों पर किसी को भी इस पेन्शन के व्यय पर नियंत्रण करने का अधिकार नहीं था तथा यदि माननीय स्वर्गीय बाजीराव उसके प्रत्येक अंश को संचित कर लेते तब भी वे पूर्ण रूप से न्यायोचित कार्य किये होते। आपका प्रार्थी यह पूछने की धृष्टता करता है कि क्या अंग्रेजी शासन ने कभी यह भी पता लगाने का प्रयत्न किया है कि उनके बहुसंख्यक अवकाश-प्राप्त सेवकों की पेन्शन किस प्रकार व्यय होती है, अथवा उनमें से कोई भी अपनी पेन्शन का कोई भाग संचित करता है तथा कितना भाग संचित करता है, तथा और भी, यदि यह प्रमाणित भी हो जाय कि पेन्शन के प्राप्त करने वाले ने उसके एक बड़े भाग का संचय किया है तो यह उसका (शासन का) अपने सेवक के साथ हुए समझौते में स्वीकृत पेन्शन का निश्चित अनुपात उसके (सेवक

के) बच्चों से छीन लेने का पर्याप्त कारण होगा ? तथा क्या एक देशी राजा जो कि एक प्राचीन राजपरिवार की एक शाखा का वंशज है तथा जो अंग्रेजी शासन के न्याय एवं सहृदयता पर विश्वास रखता है, उसके एक समझौता-बद्ध सेवक से अल्प पारितोषिक पाने के योग्य है ? यदि अंग्रेजी शासन में कोई भ्रमात्मक विचार प्रचलित हों तो उन्हें छिन्न-भिन्न करने हेतु आपका प्रार्थी सविनय निवेदन करता है कि १८१७ (ई०) की संधि के अनुसार स्वीकृत ८ लाख रुपये की पेन्शन केवल माननीय स्वर्गीय बाजीराव एवं उनके परिवार के ही पोषण हेतु न थी वरन् उन स्वामिभक्त अनुचरों के विशाल दल के लिए भी थी जिसने कि भूतपूर्व पेशवा के ऐच्छिक निर्वास में उनका अनुगमन करना ही पसन्द किया था। उनकी विशाल संख्या, जो कि अंग्रेजी शासन को ज्ञात है माननीय (पेशवा) के अल्प साधनों पर कुछ कम भार न थी, तथा और भी, यदि इस पर भी विचार किया जाय कि देशी राजाओं को, जो यद्यपि शक्तिविहीन कर दिये गये हैं, अब भी आदर-सम्मान प्राप्त करने हेतु आडम्बर करना पड़ता है, इससे सुगमतापूर्वक कल्पना की जा सकती है कि ३४ लाख रुपये वार्षिक की मालगुजारी में से केवल ८ लाख रुपये की स्वीकृत पेन्शन में से अधिक संचय करना सम्भव न था। किन्तु स्वर्गीय पेशवा के सीमित साधनों पर इस बड़े भार के होते हुए भी माननीय (पेशवा) ने अपने साधनों की इस प्रकार उचित व्यवस्था की कि अपनी वार्षिक आय के एक भाग को 'पब्लिक सिक्योरिटीज' में लगाया, जिससे उनकी मृत्यु के समय ८० सहस्र रुपये की आय थी। तो क्या माननीय स्वर्गीय बाजीराव की दूरदर्शिता एवं मितव्ययता को एक अपराध माना जायगा तथा वह (बाजीराव) ऐसे दण्ड के भागी होंगे कि जिससे उनके परिवार के पोषण हेतु एक पूर्व संधि द्वारा स्वीकृत पेन्शन को ही बन्द कर दिया जाय।

८. यह कि आपके प्रार्थी ने २४ जून, १८५७ (ई०) को कमिश्नर द्वारा उत्तर-पश्चिमी प्रान्त के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर की सेवा में एक स्मृतिपत्र अपनी दशा तथा अन्य अनेक स्थितियों को स्पष्ट करते हुए भेजा था जिसके उत्तर में उसे केवल यह सूचना दी गयी थी कि माननीय (लेफ्टिनेन्ट गवर्नर) पिछले ३ अक्टूबर को इस बात पर दृढ़ थे कि पेन्शन पुनः आरम्भ नहीं की जा सकती थी परन्तु आपका प्रार्थी जागीर का, बिना कर दिये, जीवन पर्यन्त, भोग कर सकता था। यहाँ आपका प्रार्थी सविनय यह कहने की

धृष्टता करता है कि क्योंकि उसे सीधे लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के आदेशों के अधीन नहीं रक्खा जा सकता, उसे अनुमान कर लेना चाहिए कि यह छूट भारत के सर्वोच्च शासन की आज्ञा पर दी गयी होगी, (तथा) यदि ऐसा ही है तो, सर्वोच्च शासन की ओर से यह छूट अंग्रेजी शासन द्वारा आपके प्रार्थी के दावे को उचित मानने की स्वीकारोक्ति मानी जानी चाहिए। यदि आपके प्रार्थी के दावे विचारणीय नहीं थे, तो उसे जीवन पर्यन्त बिना कर दिये जागीर के भोग करते रहने देने की आज्ञा देने का कोई कारण नहीं था, परन्तु यदि उसके दावे सिद्धान्तों एवं वास्तविकताओं पर आधारित थे, जो कि कानून की दृष्टि में कम से कम उसके पक्ष में प्रत्यक्ष प्रमाण माने जायँगे, केवल जागीर का भोग करते रहने देना पेन्शन की हानि के बराबर करना नहीं माना जा सकता।

९. यह कि आपका प्रार्थी अब अपने दावे के स्वरूप तथा आधारों को पूर्ण रूप से स्पष्ट कर देने के पश्चात, माननीय कोर्ट की उदारता एवं सहृदयता पर पूर्ण रूप से आश्रित है, जिसका कि उसे विश्वास है कि उसके दावे पर पूर्ण विचार करने के पश्चात् आपके प्रार्थी को मिलना शेष न रहेगी, जो कि समुचित भत्ते के अभाव में अपने परिवार की प्रतिष्ठा तथा उन लोगों का, जो पूर्ण रूप से उस पर आश्रित हैं, पोषण करने में पूर्णतः असमर्थ है।

१०. यह कि आपका प्रार्थी अपने वर्तमान सीमित साधनों को दृष्टि में रखते हुए, शीघ्र व्यवस्था करने हेतु, अंग्रेजी शासन से अपने दावों के सम्बन्ध में किसी भी न्यायपूर्ण निर्णय का इच्छुक है तथा आपका प्रार्थी स्वयं को तथा अपने आश्रितों को अपनी हीन दशा के अनुरूप किसी भी अंश तक विनीत रखने को प्रस्तुत है।

आपका प्रार्थी स्थानीय शासन द्वारा उसके प्रति अपनायी गयी नीति के कारण उत्पन्न आर्थिक दुश्चिन्ताओं से विवश होकर अपने दीवान को उसके (प्रार्थी के) निमित्त माननीय कोर्ट की सेवा में यह प्रार्थनापत्र भेजने का अधिकार देता है तथा इस उद्देश्य से शीघ्र विचार करने की प्रार्थना करता है कि प्रथम तो इस देश (के शासन) को आज्ञा दी जाय कि उसे (प्रार्थी को) तथा उसके उत्तराधिकारियों को पेन्शन अनवरत रूप से दी जाय तथा द्वितीय, वर्त्तमान बिठूर की जागीर प्रदान की जाय।[1]

1. 'फ्रीडम स्ट्रगिल इन यू० पी०', खण्ड १, पृ० १६-२१.

परिशिष्ट ६

व्यक्तिगत परीक्षण के उपरान्त निम्नांकित तुलनात्मक अध्ययन का फल

नाम	नाना राव धूँधूपन्त	बन्दी—कृष्णा राम
वर्ण और जाति	दक्षिणी ब्राह्मण	दक्षिणी ब्राह्मण
अवस्था	३६ वर्ष (१८५८ ई० में)	५५ वर्ष
रंग	गोरा	काला
कद तथा व्यक्तिगत बनावट	५ फीट ८ इंच : शक्तिशाली बनावट तथा बलिष्ठ	५ फीट ४$\frac{3}{4}$ इंच ऊँचाई, पतला
चेहरे की बनावट	चपटा तथा गोल	चेहरे पर झुर्रियाँ तथा गढ़े पड़े हुए
नाक की बनावट	सीधी तथा सुडौल	नाक लम्बी तथा उभरी हुई
आँखों की बनावट	बड़ी तथा गोल आँखें	बड़ी तथा गढ़े में धंसी हुई परन्तु पुतलियाँ उभरी हुई
दाँत	सब हैं	दो टूटे हैं तथा अन्य हिलते हैं
वक्षस्थल पर चिह्न	बालों से ढका हुआ	बालों से भरा तथा चिह्न छोड़ जानेवाली बीमारी के १–२ काले चिह्न
चेहरे पर चिह्न	—	चेहरे पर भी वक्षस्थल की भाँति काले चिह्न
बालों का रंग	काला	भूरा
कानों में बाली के चिह्न	हाँ	हाँ

टिप्पणी

चेहरे की बनावट में मराठा होने के चिह्न पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। उनके एक पैर के अँगूठे में सूजे के आघात का चिह्न है। इस समय दाढ़ी बढ़ाये हैं। देखने से बिल्कुल मुसलमानी बनावट प्रतीत होती है। कटे हुए कान वाला एक नौकर सदैव उनके साथ रहता है।

वक्षस्थल पर, पीठ पर तथा दाहिने बाजू पर कुछ कोढ़ के चिह्न हैं—पीठ पर तीन चिह्न हैं; दो सुडौल नहीं हैं जैसे फोड़े-फुन्सियों के कारण हों, तथा एक ऐसा सीधा है जैसे सूजे के आघात से हो।

उत्तर-पश्चिमी प्रांतीय प्रोसीडिंग्स, पोलिटिकल विभाग—जनवरी से जून १८६४ तक, भाग १, जनवरी १८६४, पोलिटिकल विभाग—ए—पृ० ३७, संख्या १५, सितम्बर ५, १८६३।

मजिस्ट्रेट कानपुर द्वारा सचिव उत्तर-पश्चिमी प्रांतीय सरकार को प्रेषित. नैनीताल (नं० ४३५) दिनांक कानपुर २७ अगस्त १८६३।

तथा वही : बी. सितम्बर १८६३, क्रम-संख्या, मिस्टर कोर्ट ने जाँच करके शासन को बताया कि इलाहाबाद के कमिश्नर का मन्तव्य है कि नाना साहब के बारे में शासन को दुविधा में डालने के लिए राजपूताना तथा दक्षिण में कुछ फकीर नाना साहब के भेस में छोड़ दिये गये थे।

परिशिष्ट ६ अ

गोपालजी का कथन

....बीकानेर में दस अश्वारोहियों के सहित तात्या राव, जो वहाँ एक बाग में रहता है, था। नाना ने बीकानेर के राजा से तात्या राव की देख-भाल करने को कहा जिसे करने की उसने (बीकानेर के राजा ने) प्रतिज्ञा की। तात्या राव अब वहाँ है।........ ....

...........सलूम्बा में तात्या टोपे, राव साहिब, एवम् लखनऊ की बेगम रहती हैं। तात्या टोपे को फाँसी नहीं दी गयी वरन् दूसरे मनुष्य को (दी गयी थी) जो तात्या कहलाता था।[1]

---

१. तथाकथित नाना साहिब, फाइल संख्या ७३८, म्यूटिनी बस्ता कानपुर कलेक्ट्रेट।

परिशिष्ट ७

उन लोगों की सूची जिन्होंने क्रान्तिकारी खान बहादुर खाँ के अधीन सेवाएँ प्रदान कीं

दफ्तर का नाम	दफ्तर के प्रधान का नाम	टिप्पणी
दीवानखाना		शोभाराम, खान बहादुर खाँ द्वारा दीवान नियुक्त किये गये।
दारुल इंशा	पुराने शहर के फैज-अली	सदर अमीन कोर्ट का सरिश्तेदार—क्रान्ति होने पर ५०० रुपये मासिक वेतन पर मीर मुन्शी के पद पर नियुक्त किये गये।
पंडित	चौधरी मोहल्ला के लेखनाथ	यह १५ जून १८५७ ई० से अंग्रेजी सेना के आगमन तक अपने पद पर रहे। यह १०० रुपये मासिक वेतन पाते थे। यह सब मामलों का निर्णय करते थे, नगर में कलेक्शन करते थे तथा अपने मकान में दफ्तर करते थे।
नाजिम	खुशीराम	जहाँनाबाद के तहसीलदार; १७ जून को दीवान मूलचंद की सिफारिश से १००० रुपये मासिक वेतन पर नाजिम के पद पर नियुक्त किये गये। नगर से कर वसूल करने के

दफ्तर का नाम	दफ्तर के प्रधान का नाम	टिप्पणी
		लिए नियुक्त हुए परन्तु २२ जुलाई १८५७ को अपने अनुचर सहित हटा दिये गये।
मजिस्ट्रेट का दफ्तर	चिराग अली	सेशन कोर्ट के सरिश्तेदार, १५ जून १८५७ को ५०० रुपये मासिक वेतन पर मजिस्ट्रेट नियुक्त हुए; आधे मास सेवा की। तदुपरांत इनकी नियुक्ति समाप्त कर दी गयी; यह पुरानी कोतवाली में अपनी कचहरी करते थे।
मजिस्ट्रेट का दफ्तर	मोहम्मद शाह	सदर अमीन कोर्ट के वकील, मजिस्ट्रेट के पद को स्वीकृत नहीं किया। वह नौकरी नहीं करना चाहते थे। इनकी अस्वीकृति पर मजिस्ट्रेट के पद पर याकूब अली को नियुक्त किया गया।
मजिस्ट्रेट का दफ्तर	पुराने शहर के याकूब अली	मोहम्मद शाह वकील की अस्वीकृति के उपरान्त द्वितीय मजिस्ट्रेट जून १८५७ में नियुक्त हुए। पुस्तकालय-भवन में इनका दफ्तर था जो जुलाई में समाप्त हो गया।
मुफ्ती	सैयिद अहमद	३ जून १८५७ को मुफ्ती के पद पर नियुक्त किये गये। दीवानी तथा फौजदारी दोनों

दफ्तर का नाम	दफ्तर के प्रधान का नाम	टिप्पणी
		विभागों के मामलों का निर्णय करते थे। दिसम्बर १८५७ में इनको मीर आलम खाँ की हत्या के मुकदमे के कारण, जिसमें इन्होंने अभियुक्त (प्रतिवादी को) छोड़ दिया था, भागना पड़ा। मौलवी खाँ तथा अन्य लोगों ने इन पर प्रहार किया था तथा यह रामपुर चले गये।
मुफ्ती	अजमल	फरवरी १८५८ में मुफ्ती के पद पर नियुक्त हुए। यह इस पद पर अंग्रेजी सेना के आगमन तक रहे। यह अपना दफ्तर कोतवाली में करते थे।
अपील कोर्ट	लखनऊ के मौलवी तुराब अली	अगस्त मास में १५० रुपये मासिक वेतन पर अपील के मामलों का निर्णय करने के लिए सुपरिन्टेन्डेन्ट के पद पर नियुक्त हुए। अंग्रेजी सेना के आगमन तक इस पद पर रहे। कुतुबखाना में अपना दफ्तर करते थे।
सदर अमीन	बरेली के मुहम्मद अमीन खाँ	सितम्बर १८५७ में ४०० रुपये मासिक वेतन पर सदर अमीन के पद पर नियुक्त हुए। अपने मकान पर दफ्तर करते थे।

दफ्तर का नाम	दफ्तर के प्रधान का नाम	टिप्पणी
सद्रुलसुदूर	मुजफ्फर हुसैन खाँ	—वही—वही—एक हजार रुपये मासिक वेतन पर। इस नियुक्ति के पूर्व यह समिति के सदस्य थे। अपने घर पर दफ्तर करते थे।
मुख्य तहसीलदार	अकबरअली खाँ	सितम्बर में मुख्य तहसीलदार १००० रुपये मासिक वेतन पर नियुक्त हुए, इसके पूर्व समिति के सदस्य थे।
बैतुल इजरा	कबीर शाह खाँ	सेनाओं के निरीक्षण हेतु नियुक्ति हुई। सितम्बर १८५७ में ५०० रुपये मासिक वेतन पाते थे।
मुन्सिफी	बिहारीपुर के मंसूरखाँ	सितम्बर १८५७ में मुन्सिफ नियुक्त हुए। आधे मास इस पद पर रहने के उपरान्त नायब नाजिम होकर पीलीभीत भेज दिये गये।
गुप्तचर-विभाग	भोलानाथ	इस विभाग के सुपरिन्टेन्डेन्ट नियुक्त हुए। इन्होंने एक व्यक्ति की नियुक्ति सदर में तथा अन्य अनुचरों की नियुक्तियाँ जिले में कीं जिनके द्वारा इनको संपूर्ण समाचार मिलते थे तथा यह उनको प्रतिदिन खान बहादुर को बतलाते थे। जुलाई में इनका खान बहादुर के भतीजे

दफ्तर का नाम	दफ्तर के प्रधान का नाम	टिप्पणी
		मुल्ला मियाँ से झगड़ा हो गया। जब यह खान बहादुर को ज्ञात हुआ तो उन्होंने भोलानाथ की नाक काटने का आदेश दिया, इस कारण यह बच कर भाग गये।
गुप्तचर-विभाग	भुवन सहाय	शोभाराम के एक संबंधी २०० रुपये मासिक वेतन पर नियुक्त हुए। इनको आबकारी विभाग से वेतन मिलता था।
बख्शीगीरी	होरीलाल पुत्र शोभाराम	यह १००० रुपये मासिक वेतन पर क्रान्तिकारी सेना के बख्शी नियुक्त हुए।

'नैरेटिव आव दि म्यूटिनी'-रुहेलखंड क्षेत्र—बरेली नैरेटिव; परिशिष्ट (बी) पृ० ८, ६, १० तथा ११।

परिशिष्ट ८

खान बहादुर के अधीन सम्पूर्ण सेना के वेतन का विवरण

सेना का प्रकार	सैनिकों की संख्या	वेतन की औसत दर	धन संख्या			एक मास के धन का योग			दस मास के धन का योग
	अश्वारोही								
अश्वारोही	४६१८	२०	९२,३६०	—	—				
रिसालदार	८९	विभिन्न दर	४६००	,,	,,				
नायब रिसालदार	४६	५०	२३००	,,	,,				
वकील	४६	३०	१३८०	,,	,,				
निशान बरदार	४६	२५	११५०	,,	,,	१,०१,७९०	—	—	१,०१७,९००
	पदाति								
पदाति	२४,२३०	६	१४५.९८०	,,	,,				
कोमदान	५७	१००	५७००	,,	,,				
उलुसदार	४८	५०	२४००	,,	,,				
तूमनदार	२४३	२५	६०७५	,,	,,				
बख्शी	५७	३०	१७१०	,,	,,				
वकील	२,४३	८	१९४४	,,	,,		,,	,,	१,६३८,०९०
			दस मास में व्यय का कुल योग						२६,५५,९९०

नैरेटिव आव दि म्यूटिनी, रुहेलखंड क्षेत्र–बरेली नैरेटिव–परिशिष्ट (बी) पृ० १५

परिशिष्ट ६

तात्या टोपे का पत्र राव साहब को

"२४ रजब, शाके १८७६ (१४ मार्च १८५८)

स्वामी की सेवा में सेवक रामचन्द्र पांडुरंग राव टोपे का दोनों हाथ जोड़कर सिर साष्टांग नमस्कार। निवेदन है कि २३ माह रजब (१० मार्च १८५८) तक सब कुशल है। यहाँ चरखारी का हाल सब ठीक है और कुशल है। २१ माह (८ मार्च) का पत्र प्राप्त हुआ। मजकूर जाना उसका उत्तर तथा यहाँ का हाल इस प्रकार है :

१. राजा से तीन लाख रुपये प्राप्त हुए। पेशजी के पत्र में यह सब लिखा ही है।

१. गढ़ का प्रबंध आपकी आज्ञानुसार होगा।

१. तोपें तथा खजाना आदि फालतू सामान वामन राव के साथ रवाना कर रहे हैं।

१. राजा रूप सिंह, निरंजन सिंह व राजा महेन्द्र सिंह के साथ भेजने की व्यवस्था राम भाऊ समथर वाले ने की है। पेशजी के निवेदनपत्र में लिखा ही है। राव भाऊ को जोशी जी के साथ रवाना कर रहे हैं।

१. विश्वास राव लक्ष्मण जालौन वाले का निकास करार करके हुआ है। सरकार ने यह बहुत अच्छा किया है।

१. सरकार की सवारी के लिए घोड़े चाहिए। मगर वे यहाँ नहीं हैं। प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

२.............(कागज फटा था) इस संबंध में पेशजी ने निवेदन किया है। जैसी आज्ञा होगी वैसा किया जायगा। यह मजकूर लिखा है। आपके समक्ष आयेगा ही। और अधिक क्या लिखें। आपकी सेवा में यह निवेदन किया है।

प्रहर दिवस प्रातःकाल"[1]

---

१. पोलिटिकल कंसल्टेशन्स : पोलिटिकल प्रोसीडिंग्स सप्लीमेन्ट ३० दिसम्बर १८५८, नं० ६४६। देखिए "केशरी" का मंगलवार, ६ मई, १९३४ का अंक, पृ० ४, कालम १।

परिशिष्ट १०

पांडुरंग सदाशिव पंत प्रधान का पत्र झाँसी की रानी को

"चिरंजीव गंगा जल निर्मल लक्ष्मीबाई संस्थान झाँसी को पांडुरंग सदाशिव पंत प्रधान पेशवे बहादुर का आशीर्वाद। दिनांक १८, माहे रजब को स्थान कालपीगढ़ में सब कुशल है। विशेष यह है कि फाल्गुन बदी द्वितीया सोमवार (१ मार्च १८५८) को प्रातःकाल चरखारी में जो मोर्चा लगा था वह राजश्री रामचन्द्र पांडुरंग टोपे ने विजय किया। यहाँ सलामी की २२ तोपें दागी गयीं। आप भी अपने यहाँ इसकी प्रसन्नता में सलामी की तोपें दागें। और अधिक क्या लिखें। आशीर्वाद।[1]"

---

१. पोलिटिकल कंसल्टेशन्स : पोलिटिकल प्रोसीडिंग्स सप्लीमेंट ३० दिसम्बर १८५९ नं० ६४४। देखिए "केशरी" का मंगलवार, ता० ६ मई, १९२९ का अंक, पृ० ४, कालम १।

परिशिष्ट ११

बाँदा के नवाब का पत्र राव साहब के नाम

"२३ रजब संवत् १६१४। पितृतुल्य की सेवा में पुत्रतुल्य अलीबहादुर चरण पर मस्तक रखकर आदाब तस्लीम करता है। ता० २० रजब (७ मार्च १८५८) को बाँदा में आपके आशीर्वाद से सेवक का समाचार इस प्रकार है। पेशजी का एक पत्र श्रीमंत राजमान्य राजेश्री नारायणराव साहब के नाम आपकी ओर से आया। वह हरकारे द्वारा भेज दिया गया है। उत्तर आने पर सेवा में प्रेषित करूँगा। मेरा अंदाज है कि मेरे प्रार्थनानुसार राजापुर के घाट की व्यवस्था के सम्बन्ध में सेवक को वहाँ की सब परिस्थिति का पता है पर वह लिख नहीं सकता। रामजी और लेधे जमादार ने आपसे जो निवेदन किया है वह सब पितृतुल्य के ध्यान में भी आया होगा। राजापुर मऊ के घाट की अव्यवस्था का पता लगने पर पितृतुल्य की आज्ञा और सूचना के बिना झगड़ा न बढ़े, इस दृष्टि से सेवक को आज्ञा करें। भागचीदना आदि घाटों का प्रबन्ध ठीक किया है परन्तु वहाँ के राजाओं और रईसों की सलाह है कि राजपुर आदि मार्ग से गोरों के आने का खटका दिन-रात बना रहता है। अतः एक क्षण को भी यह स्थान खाली छोड़ना ठीक नहीं मालूम होता। श्री की कृपा तथा महाराजा के पुण्य प्रताप से राजश्री तात्या टोपे ने चरखारी पर बड़ी विजय प्राप्त की है। इससे निश्चय होता है कि गढ़ पर भी विजय प्राप्त होगी। और सब सरदार तो हैं ही पर इनमें फतेह नवीस और जवाँमर्द विशेष रूप से कार्यशील दिखायी पड़े। चरखारी की इस विजय से सब बुन्देलखण्ड में अमलदारी सरकार होगी। सरकार की बढ़ती और समृद्धि की वृद्धि तो हो ही रही है, ऐसी सेवक को आशा है क्योंकि सरकार की इस बढ़ती में ही सेवक की बेहतरी है। इसके घराने पर अपना ही समझ कर पितृतुल्य की सदा कृपादृष्टि बनी रही है और मेरे कुटुम्ब का बड़प्पन सरकार द्वारा ही दिया हुआ है। फागुन सुदी (२८ फरवरी १८५८) के आज्ञापत्र के जारी होते ही यहाँ का सब कार्य आपकी सलाह से ही होगा। किसी बात की चिंता न करें। पितृतुल्य के चरणों की कृपा से सब कुछ ठीक होगा। आपने अपनी ओर जो प्रबन्ध किया है वह वैसा ही रक्खें। इससे सेवक निश्चिंत है। इधर का पूरा हाल बतलाना सेवक का कर्त्तव्य है। इसके उपरान्त जैसी आज्ञा होगी वह सर-माथे पर लेकर पूर्ण करूँगा। यह सेवा में निवेदन है।"[1]

---

१. पोलिटिकल कंसल्टेशन्स : पोलिटिकल प्रोसीडिंग्स सप्लीमेंट १८५६ नं० ६४५। देखिए 'केशरी' का मंगलवार, ६ मई १६३६ का अंक, पृ० ४, कालम १।

परिशिष्ट १२

राना बेनीमाधो सिंह द्वारा बाला साहब को भेजे गये पत्र, दिनांकित ६ शव्वाल १२७४ हिजरी (३० मई १८५८), का हिन्दी में सारांश

शिष्टाचारयुक्त सम्बोधन के पश्चात्—

"आपका पत्र, जिसमें आपने मेरी विजय तथा क्रान्तिकारियों के सहायतार्थ बहराइच सेना भेजने के विषय में पूछा है, प्राप्त हुआ। मुझे शत्रुओं के ऊपर एक अद्‌भुत विजय प्राप्त हुई है और अगणित अंग्रेज तथा सिक्ख युद्ध में मारे गये हैं। यह विजय सर्वशक्तिमान् ईश्वर की कृपा तथा आशीर्वाद, जो मेरे लिए सहायता का एक स्रोत था, के कारण ही प्राप्त हुई। मैं इन काफिरों (अंग्रेजों) को नरक भेजने में व्यस्त रहा हूँ और इनको यहाँ से निकालने के पश्चात् मैं अब आगे की ओर प्रस्थान करूँगा।..............."

परिशिष्ट १३

मौलवी अहमदुल्लाह शाह को २३ रमजान १२७४ हिजरी (मई १७, १८५८) को राना बेनीमाधो सिंह द्वारा लिखे गये पत्र का हिन्दी में सारांश

शिष्टाचारयुक्त सम्बोधन के शब्दों तथा 'पीरो मुर्शिदे बरहक' (सच्चे पथ-प्रदर्शक व निर्देशक) के पश्चात् ।

"इस क्षेत्र से काफिरों के खदेड़ दिये जाने के विषय में आपको ज्ञात हो ही गया होगा। दुर्भाग्यवश, बिन्द्राबन नामक घाटमपुर निवासी अंग्रेजों का सहायक बन गया था। भीषण युद्ध के पश्चात् उसको पकड़ लिया गया। उसके १३ साथी घायल हुए। उससे जुर्माना अभी प्राप्त करना शेष है। जिस समय यह तुच्छ सेवक पुरवा में पड़ाव किये हुए थे, उस समय समाचार प्राप्त हुआ कि हीरालाल मिश्र, शिवसहाय तथा गौरीशंकर अपने एजन्टों, जो ईसाई बन गये हैं तथा खजुरगाँव के तालुकदार शंकरबख्श के पौत्र रघुनाथ सिंह सहित तथा ४००० अंग्रेजों, सिक्खों व १८ तोपों को लेकर लखनऊ से आ रहे हैं वे लोग मौरावाँ में पड़ाव किये हुए हैं। यह समाचार पाने पर मैंने पुरवा से प्रस्थान किया और बहिरगाँव पहुँचा जो काफिरों के पड़ाव स्थल से ४ कोस की दूरी पर था। सेवक इस समय वहीं पर पड़ाव किये हुए है और सुबह या शाम किसी समय भी युद्ध हो सकता है। इस समय राजधानी लखनऊ काफिरों (अंग्रेजों) से शून्य है और कुछ समय तक उनसे रिक्त रहेगी भी। इस सेवक का यह मत है कि यदि आप अपनी सेना के साथ राजधानी लखनऊ पहुँच सकें तो थोड़े से प्रयत्न से ही आप अपनी स्थिति वहाँ दृढ़ कर लेंगे और सेवक इस बीच में काफिरों को किसी न किसी बहाने से रोके रहेगा......"

परिशिष्ट १४

श्रीमन्त पेशवा राव साहब के नाम लिखे गये राना बेनीमाधो सिंह के फारसी भाषा के पत्र का हिन्दी सारांश

"आपका भेजा हुआ आदमी मेरे पास पहुँचा परन्तु पत्र मुझे हस्तगत नहीं हुआ क्योंकि वह उस वाहक से खो गया। इस कारण मैं उस पत्र के लिखे जाने के उद्देश्य से अवगत नहीं हो सका। वाहक से यह अवश्य ज्ञात हुआ है कि आप मेरे ऊपर अत्यधिक कृपालु हैं।

राजधानी लखनऊ के युद्ध में हमारी पराजय हुई है। नगर खाली कर दिया गया है। बेगम (हजरत महल) बहराइच की ओर चली गयी हैं और वहाँ पहुँच गयी हैं। वे तालुकदारों, रईसों, मालगुजारों तथा बिरजीस कद्र की सरकार की सेना को एकत्र करने का प्रयत्न कर रही हैं। इस तुच्छ सेवक को यह आदेश हुआ है कि मैं अपनी सेना सहित बैसवारा में अंग्रेजों से युद्ध करने के लिए तैयार रहूँ। बिरजीस कद्र की सेना तथा तालुकदारों के आदमियों को मिलाकर १०,००० व्यक्ति बैसवारा में एकत्रित हो गये हैं। यह स्थान अंग्रेजों से रिक्त है। थोड़े से प्रयत्न से सफलता प्राप्त हो जायगी। यदि लखनऊ का युद्ध न हुआ होता तो यह तुच्छ सेवक अपनी सेना सहित वहाँ पहुँच गया होता।........"

परिशिष्ट १५

प्रेषक,

जार्ज कूपर महोदय,

चीफ कमिश्नर अवध, के सचिव

सेवा में,

जी० एफ़० एडमान्सटन महोदय,

सचिव, भारतीय शासन

दिनांक, लखनऊ, दिसम्बर १, १८५७

श्रीमान्,

गवर्नर जनरल को चीफ कमिश्नर द्वारा प्रेषित दिनांक १४ सितम्बर के पत्र, जिसमें उन्होंने लिखा है कि उन्होंने बरेली की हिन्दू जनता को मुसलमान क्रान्तिकारियों के विरुद्ध उकसाने के प्रयत्न में ५०,००० रुपये व्यय करने की आज्ञा प्रदान कर चुके हैं, के विषय में मुझे पूर्व मास के दिनांक १४ के, कैप्टेन गोवान के पत्र के संलग्न उद्धरण को प्रेषित करने का आदेश हुआ है जिससे कावन्सिल सहित लार्ड साहब यह देखेंगे कि प्रयास पूर्णतः असफल रहा एवं उपर्युक्त धनराशि के किसी भी भाग को व्यय किये बिना ही प्रयास छोड़ दिया गया।

आपका अति आज्ञाकारी

सेवक

(हस्ताक्षर) जार्ज कूपर

चीफ कमिश्नर के सचिव

आलमबाग छावनी

दिसम्बर १, १८५७

मैं यहाँ के आसपास के ठाकुरों को किसी भी संख्या में मनुष्यों को एकत्रित करने के लिए प्रेरित करने के प्रयास में पूर्णतः असफल रहा हूँ।

मुझे यह विश्वास दिलाया गया है कि वे प्रभावपूर्ण सहायता देने के इच्छुक हैं। परंतु ज्ञात होता है कि सहायता का विस्तार अभी सद्भावना का प्रकाशन (मात्र) तथा इसकी गर्वोक्तियों से अधिक नहीं है कि वे क्या करेंगे यदि एक सुसज्जित यूरोपियन सेना, जो कि उनके बगैर भी बहुत अच्छी प्रकार कार्य कर सकती है और उनकी उपस्थिति से उसके (कार्य में) रुकावट ही होती, द्वारा उनको सहायता मिले। फलतः मैंने कुछ भी धन नहीं व्यय किया है एवं किसी अन्य कार्य के लिए शासन पर चेकें जारी नहीं की हैं।

(सही उद्धरण)

(हस्ताक्षर) जार्ज कूपर

चीफ कमिश्नर के सचिव[1]

1. (अ) फारेन सीक्रेट कनसल्टेशन्स, संख्या २४, दिनांक २७ अगस्त, १८५८ (नेशनल आर्काइव्ज, नई दिल्ली)।

(ब) 'फ्रीडम स्ट्रगिल इन यू० पी०' खंड 1, पृ० ४७२-४७३।

सहायक ग्रंथों एवम् प्रपत्रों की सूची

मूल-सामग्री

सचिवालय रिकार्ड संग्रहालय, लखनऊ

क्रम संख्या	उपलब्ध रेकार्ड	मास तथा वर्ष	भाग	विशेष
१.	फारेन डिपार्टमेन्ट अवध ऐब्स्ट्रैक्ट प्रोसीडिंग्स (एजेन्सी डिपार्टमेन्ट)	२ मार्च से ८ मई, १८५७ तक	१	
२.	ऐब्स्ट्रैक्ट आव दि प्रोसीडिंग्स आव चीफ कमिश्नर आव अवध इन दि पोलिटिकल (वर्नाक्यूलर अथवा परशियन) डिपार्टमेन्ट	मार्च १८५६ से जनवरी १८५७ तक	१	हस्तलिखित
३.	अवध ऐब्स्ट्रैक्ट प्रोसीडिंग्स (फिनेन्शल)	३ अप्रैल से दिसम्बर १८५७ तक	१	,,
४.	फारेन डिपार्टमेन्ट	(१) २३ फरवरी से दिसम्बर १८५६ तक	५	,,
	अवध ऐब्स्ट्रैक्ट प्रोसीडिंग्स (जनरल डिपार्टमेन्ट)	(२) जनवरी से २३ मई १८५७ तक		,,
		(३) १८५८		,,
		१८५९		,,
		(४) १८५९		,,
		(५) १८६०		,,

क्रम संख्या	उपलब्ध रेकार्ड	मास तथा वर्ष	भाग	विशेष
५.	फारेन डिपार्टमेन्ट...	(१) २३ फरवरी से दिसम्बर १८५६ तक	५	हस्तलिखित
	अवध ऐब्स्ट्रैक्ट	(२) १८५७		,,
	प्रोसीडिंग्स (जुडी-शियल)	(३) २१ मार्च से ३१ दिसम्बर १८५७ तक		,,
		(४) १८५९		,,
		(५) १८६०		,,
६.	अवध ऐब्स्ट्रैक्ट प्रोसीडिंग्स (मिलिट्री)	(१) ३ मई से दिसम्बर १८५८ तक		,,
		(२) १८५९		,,
७.	अवध ऐब्स्ट्रैक्ट प्रोसीडिंग्स	(१) ७ फरवरी से दिसम्बर १८५६ तक	५	,,
	(पोलिटिकल)	(२) जनवरी से २८ मई, १८५७ तक		,,
		(३) १८५८		,,
		(४) १८५९		,,
		(५) १८६०		,,
८.	अवध ऐब्स्ट्रैक्ट प्रोसीडिंग्स	(१) २३ फरवरी से १७ अक्तूबर १८५६ तक	५	,,
	(रेवेन्यू)	(२) ३ जनवरी से २३ मई १८५७ तक		,,
		(३) १८५८		,,
		(४) १८५९		,,
		(५) १८६०		,,
९.	होम डिपार्टमेन्ट	(१) मार्च १८५६ से जनवरी १८५७ तक	५	छपा हुआ

क्रम संख्या	उपलब्ध रेकार्ड	नाम तथा वर्ष		भाग विशेष
	ऐब्स्ट्रैक्ट आव रेवेन्यू	(२) १८५८		हस्तलिखित
	प्रोसीडिंग्स एन० डब्लू०	(३) १८५६		,,
	पी० एन्ड अवध	(४) जनवरी से जून १८६० तक		,,
		(५) जुलाई से अगस्त १८६० तक		,,
१०.	फारेन डिपार्टमेन्ट	(१) १० जनवरी से ६ मई १८५७ तक	३	,,
	अवध ऐब्स्ट्रैक्ट प्रोसीडिंग्स	(२) १ अप्रैल से ३१ दिसम्बर १८५८ तक		,,
	(वर्नाक्यूलर डिपार्टमेंट)	(३) १८५६		,,

II

१. फारेन डिपार्टमेंट आगरा नैरेटिव	१८३६
२. फारेन डिपार्टमेंट आगरा नैरेटिव	१८४१ से १८४४
३. फारेन डिपार्टमेंट आगरा नैरेटिव	१८४५ से १८५२
४. फारेन डिपार्टमेंट आगरा नैरेटिव	१८५३ से १८६०

III एन० डब्लू० पी० और आगरा प्रोसीडिंग्स

१. फारेन डिपार्टमेंट आगरा नैरेटिव—दिसम्बर से अप्रैल	१८३४ से १८३५
२. फारेन डिपार्टमेंट आगरा नैरेटिव	१८३६
३. फारेन डिपार्टमेंट आगरा नैरेटिव	१८४१ से १८४४

IV फारेन डिपार्टमेंट एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स पोलिटिकल

१. एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स—पोलिटिकल हस्तलिखित	१८३८
२. ,, ,, ,, ,, ,, ,,	१८४२ से १८४३
३. ,, ,, ,, ,, ,, ,,	१८४५
४. ,, ,, ,, ,, ,, ,,	१८४६ से १८५६
५. ,, ,, ,, ,, ,,	छपे हुए जुलाई १८६० (होम डिपार्टमेंट प्रोसीडिंग्स)

६. एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स—पोलिटिकल छपे हुए सितम्बर से दिसम्बर १८६०
(होम डिपार्टमेंट प्रोसीडिंग्स)

७. ,, ,, ,, ,, ,, छपे हुए जनवरी से दिसम्बर १८६८
(होम डिपार्टमेंट प्रोसीडिंग्स)

V

१. फारेन डिपार्टमेंट एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स जनरल हस्तलिखित १८४५
२. ,, ,, ,, ,, ,, ,, हस्त० १८४६
३. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, १८४७-४८
४. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, जनवरी से अक्तूबर १८४६
५. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, १८५०-५१
६. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, जनवरी से अप्रैल १८५८

VI फारेन डिपार्टमेंट एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स जुडीशियल सिविल—

१. एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स जुडीशियल सिविल हस्तलिखित १८४२ से ४३
२. ,, ,, ,, ,, ,, ,, १८४६ से ४६
३. ,, ,, ,, ,, ,, ,, १८५० से १८५८

VII एन० डब्लू० पी० जुडीशियल ऐब्स्ट्रैक्ट होम डिपार्टमेंट

१. एन० डब्लू० पी० जुडीशियल ऐब्स्ट्रैक्ट होम डिपार्टमेंट १८५६
२. जुडीशियल होम डिपार्टमेंट सिविल ऐब्स्ट्रैक्ट प्रोसीडिंग्स हस्तलिखित जनवरी से अगस्त १८६०
३. होम डिपार्टमेंट (एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स जुडीशियल सिविल) छपे हुए मई १८६०
४. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, अक्टूबर १८६०

VIII. फारेन डिपार्टमेंट एन० डब्लू० पी० जुडीशियल क्रिमिनल

१. एन० डब्लू० पी० जुडीशियल क्रिमिनल हस्तलिखित

मार्च ३० से ६ नवम्बर १८५०

२. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, १८५८

IX होम डिपार्टमेंट जुडीशियल क्रिमिनल

१. होम डिपार्टमेंट जुडीशियल क्रिमिनल हस्तलिखित

जनवरी से जून १८५६

X फारेन डिपार्टमेंट एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स मिलिट्री पुलिस

१. एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स मिलिट्री पुलिस हस्तलिखित १८५८

२. ,, ,, ,, ,, ,, ,, १८५६

३. एन० डब्लू० पी० मिलिट्री ऐब्स्ट्रैक्ट प्रोसीडिंग्स हस्तलिखित

जनवरी से मई १८६०

XI होम डिपार्टमेंट एन० डब्लू० पी० रेवेन्यू

१. एन० डब्लू० पी० रेवेन्यू और मिस्सेलेनियस ऐब्स्ट्रैक्ट प्रोसीडिंग्स

हस्तलिखित १८३७

२. ,, ,, ,, ,, सेपरेट रेवेन्यू हस्तलिखित

अप्रैल से मई १८४२-१८४३

३. ,, ,, ,, ,, सेपरेट रेवेन्यू हस्तलिखित १८४५ से १८५८

४. ,, ,, ,, ,, प्रोसीडिंग्स छपी हुई १८६०

XII म्यूटिनी बस्ते

(रिकार्ड रूम, सचिवालय उत्तर प्रदेश, लखनऊ)

(अ) तारों की मूल प्रतियाँ (हस्तलिखित)

(१) सन् १८५८ में मि० ई० ए० रीड के पास भेजे गये तार।

(२) सन् १८५६ में मि० ई० ए० रीड के पास भेजे गये तार।

(ब) तारों की नक़ल की प्रतिलिपियाँ (हस्तलिखित)

(१) ११ मई १८५८ से १२ जनवरी १८५६ तक मि० ई० ए० रीड द्वारा भेजे गये तार।

(२) २४ मार्च १८५८ से अप्रैल १८५६ तक मि० ई० ए० रीड द्वारा भेजे गये तार।

(स) बुलेटिन

(१) मार्च से जुलाई (१८५८) तक मि० ई० ए० रीड द्वारा प्रेषित दिन-प्रतिदिन के मूल बुलेटिन।

(२) मई से जुलाई (१८५८) तक मि० ई० ए० रीड द्वारा प्रेषित दिन-प्रतिदिन के छपे बुलेटिन।

XIII उत्तर-पश्चिमी प्रान्तीय तथा अवध प्रोसीडिंग्स जुडीशियल, क्रिमिनल, पुलिस तथा पोलिटिकल विभाग की निम्नांकित वर्षों की प्रोसीडिंग्सः—

१८५८, १८६० से १८६४ तक, १८६७ से १८७५ तक, १८८० से १८८४ तक, १८८६ से १८८६ तक, १८६१ से १८६५ तक, १८६७ से १६०२ तक, १६०४ से १६१३ तक, १६१५ तथा १६१६

नोटः—अधिकतर इन प्रोसीडिंग्स में क्रान्ति करने के अपराध में जब्त की हुई सम्पत्ति को पूर्ववत् प्रदान करने का अनुरोध किया गया है।

XIV हस्तलिखित प्रपत्र विभाग, नजरबाग लखनऊ में उपलब्ध सन् १८५७ ई० सम्बन्धी अभियोगों की विभिन्न जिलों में कलेक्टरी रिकार्डों की फाइलें, मिस्लें, म्यूटिनी बस्ते, गार्ड बुक तथा म्यूटिनी रजिस्टर।

नोटः—कुछ जिलों के रिकार्ड रूम की अंग्रेजी, उर्दू तथा फारसी की फाइलें आदि सेन्ट्रल रिकार्ड रूम इलाहाबाद में उपलब्ध हैं।

XV नेशनल आरकाइव्ज देहली—१. फारेन सीक्रेट कनसल्टेशन्स

२. फारेन पोलिटिकल कनसल्टेशन्स

बहादुरशाह के कार्यालय के कुछ मुख्य पत्र

३. प्रेस लिस्ट आव म्यूटिनी पेपर्स

XVI समकालीन समाचार-पत्र तथा पत्रिकाएँ

फारसी

१. सिराजुल-अखबार, देहली; नेशनल आरकाइव्ज देहली

उर्दू

१. तिलिस्मे लखनऊ; नेशनल आरकाइव्ज देहली।

२. देहली उर्दू अखबार देहली; नेशनल आरकाइव्ज देहली।

३. सादिकुल अखबार, देहली; ,, ,, ,,

४. सिहरे सामरी लखनऊ ; अलीगढ़ विश्वविद्यालय ।

अंग्रेजी

१. बंगाल हरकारू नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता ।

तथा

इंडिया गजट, कलकत्ता ; ,, ,, ,,

२. हिन्दू पैट्रियाट, कलकत्ता ; ,, ,, ,,

३. इंग्लिशमैन कलकत्ता ; ,, ,, ,,

४. फ्रेन्ड ग्राव इंडिया, सीरामपुर ; ,, ,, ,,

५. हिन्दू इन्टेलिजेन्सर, कलकत्ता ; ,, ,, ,,

६. दि स्टार—कलकत्ता ; ,, ,, ,,

७. दि पायनियर, इलाहाबाद से प्रकाशित—पायनियर प्रेस लायब्रेरी लखनऊ।

अंग्रेजी पत्रिकाएँ :

१. कलकत्ता रिव्यू ।

२. जरनल ग्राव दि एशियाटिक सोसाइटी बंगाल ।

३. जरनल ग्राव दि रायल एशियाटिक सोसायटी ग्रेट ब्रिटेन एंड ग्रायरलैंड ।

४. ब्लैकवुड मैगजीन, कलकत्ता ।

XVII हिन्दी

(१) नागर, अमृतलाल : **आँखों देखा गदर** (लखनऊ १९४७), विष्णु भट्ट गोडसे की मराठी पुस्तक "माझा प्रवास" का हिन्दी अनुवाद

(२) गोखले, रमाकान्त : **झाँसी की रानी** ।

(३) सुन्दरलाल : **भारत में अंग्रेजी राज्य** (इलाहाबाद १९३८)

XVIII उर्दू

हस्तलिखित

(१) मोहम्मद अजमत अलवी—काकोरी-निवासी : **मुरक्क़ये खुसरवी**, १२८६ हिजरी में रचित (लखनऊ विश्वविद्यालय के टैगोर पुस्तकालय में उपलब्ध)

(२) मिर्जा मुहम्मद तकी : **तारीखे आफताबे अवध**

(३) उर्दू लिपि में एक हस्तलिखित डायरी, जो खान बहादुर के वंशज साबिर अली खाँ, बरेली-निवासी के पास उपलब्ध है ।

प्रकाशित

(१) सैयिद कमालुद्दीन हैदर हुसैनी : कैसरुत्तवारीख, १८६६ में प्रकाशित।

(२) नजीर अहमद : मसायबे गद्र (लखनऊ १८६३)।

(३) कन्हैयालाल : तारीखे बगावते हिन्द (लखनऊ १६१६)।

(४) सैयिद अहमद : सरकशीये बिजनौर।

(५) जीवनलाल तथा मुईनुद्दीन हसन खाँ—दोनों अंग्रेजों के गुप्तचर थे और क्रान्तिकारियों के समक्ष उनके हितैषी बनते थे। दोनों ने अपनी डायरी चार्ल्स थ्योफिलस मेटकाफ को दी थी। सम्भवतः यह डायरियाँ उर्दू में थीं। इनका अनुवाद अंग्रेजी में चार्ल्स थ्योफिलस मेटकाफ ने, "टू नेटिव नैरेटिव्ज आव दि म्यूटिनी इन डेलही" के नाम से प्रकाशित किया। हसन निजामी ने मेटकाफ की पुस्तक का उर्दू अनुवाद, "गद्र की सुबह व शाम" के नाम से प्रकाशित किया। मूल पुस्तक अब अप्राप्य है।

XIX अरबी

मौलाना फजलेहक खैराबादी : सौरतुल हिन्दिया

XX स्वतंत्रता-संग्राम-इतिहास सम्बन्धी ग्रन्थ :

(१) फ्रीडम स्ट्रगिल इन यू० पी० : सोर्स मैटिरियल : खण्ड १, १८५७–५६ : नेचर एण्ड ओरिजिन।

(२) हिस्ट्री आव फ्रीडम मूवमेन्ट, मध्यप्रदेश।

(३) सोर्स मैटिरियल फार ए हिस्ट्री आव फ्रीडम मूवमेन्ट इन इंडिया बम्बई : खण्ड १ : १८१८-१८८५।

XXI पार्लियामेन्ट्री पेपर्स अथवा पार्लियामेन्ट्री प्रपत्रों का संकलन

1. East India Affairs: 1845: Return to an order of the Honourable the House of Commons dated 5 Aug., 1845.

2. East India (Mutiny): Return to an order of the Honourable the House of Commons, dated 12th December. 1857.

3. Further Papers (No. 1): Relative to the Mutinies in the East Indies.

Presented to both Houses of Parliament by Command of Her Majesty 1857. London: Printed by Harrison and Sons.

4. Further Papers Relative to the Mutinies in the East Indies.

Presented to both Houses of Parliament by Command of Her Majesty 1857. London: Printed by Harrison and Sons.

5. Further Papers (No. 5) Relative to the Mutinies in the East Indies 1857.

6. Appendix to Papers Relative to the Mutinies in the East Indies 1857 (Enclosures in Nos. 7 to 19).

Presented to both Houses of Parliament by Command of Her Majesty 1857. London: Printed by Harrison ond Sons.

7. Further Papers (No. 6) (In continuation of No. 4) Relative to the Mutinies in the East Indies, 1858. Presented to both Houses of Parliament by Command of Her Majesty 1858.

London: Printed by Harrison and Sons.

8. Further Papers (No. 7) (In continuation of No. 5) Relative to the Mutinies in the East Indies Presented to both Houses of Parliament by Commad of Her Majesty 1857.

London: Printed by Harrison and Sons.

9. Further Papers (No. 8) (In continuation of No. 6) Relative to the insurrection in the East Indies. Presented to both Houses of Parliament by Command of Her Majesty 1858. London: Printed by Harrison and Sons.

10. Papers relating to the Mutiny in the Punjab 1857.

11. East Indies Return to an Address of the House of Lords dated 2nd March, 1860—Native Princes of India.

12. Banda and Kirwee Booty. Return to two addresses of the Honourable the House of Commons dated 13th & 21st July, 1863; for (address, 13th July, 1863).

13. Banda and Kirwee Booty. Further Return to an Address of the Honourable the House of Commons dated 9th Febr., 1864.

14. Trial of Bahadur Shah. 1858.

XXII

1 **STATE PAPERS**:—Selections from the Letters, Despatches and other State Papers Preserved in the Military Department of the Government of India 1857-58. (Edited by George W. Forrest, B.A.)

VOLUME I:—*The Indian Mutiny* 1857-58. *Lucknow and Cawnpore.* Introduction—Barrackpore and Berhampore, Meerut, Delhi, Calcutta: Military Department Press, 1893.

VOLUME II:—*The Indian Mutiny* 1857-58. *Lucknow and Cawnpore.* Introduction-Defence of Lucknow & Capture of Cawnpore. Calcutta: Military Department Press, 1902.

VOLUME III:—*The Indian Mutiny* 1857-58. *Lucknow and Cawnpore.* Defence of Alumbagh and Capture of Lucknow. Calcutta: Miltary Department Press, 1902.

VOLUME IV:—*The Indian Mutiny* 1857-58. *Central India.* Introduction—Central India—Jhansi, Calpee and Gwalior Despatches. Calcutta: Military Department Press, 1912.

2. **INTELLIGENCE RECORDS:**—Records of the Intelligence Department of the Government of the North-West Provinces of India during the **Mutiny** of 1857.

Including Correspondence with the Supreme Government Delhi, Cawnpore, and other places.

[Presented by, and now arranged under the Superintendence of Sir William Muir, K.C.S.I., D.C L.—Then in charge of The Intelligence-Department, and subsequently Lieutenant-Governor, North-West Provinces, Edited by William Coldstream, B.A., I.C.S. (Retired.)]

VOL. I.

Introduction: Family Life at Agra, and private Correspondence.

Records of Intelligence Department.

List of Intelligence Records:

First Series to Eighth Series.

VOL. II

Records of Intelligence Department etc. Ninth Series to Thirteenth Series. Appendices: I. II, III & IV.

3. **THE REVOLT IN CENTRAL INDIA 1857-59.** (for Official use only.) Compiled in The Intelligence Branch Division of The Chief of The Staff, Army Head Quarters India. Simla:—Printed at the Government Monotype Press. 1908.

4. **MUTINY NARRATIVES: IN N. W. PROVINCES 1857-58.**

5. **NARRATIVE OF THE MUTINY IN ROHILKHAND DIVISION. 1857-58.**

6. **AGRA GOVERNMENT GAZETTE: 1855-1859.**

7. **OUDH POLICE GAZETTE (IN URDU) PUBLISHED IN 1858-A. D.)**

8. **CALCUTTA GAZETTE: 1857-58.**

ENGLISH WORKS

XXIII

Alexander Duff. — *The Indian Rebellion, Its Causes and Results in a series of letters.* (London).

Allen. — *A few words anent the Red Pamphlet Annals of Indian Rebellion.* (Relevant Volumes).

Argyll, Duke of. — *India Under Dalhousie and Canning.* (London 1865).

Arnold, Edwin. — *The Marquis of Dalhousie's Administration of British India.*

Ball, Charles. — *The History of the Indian Mutiny.* 2 Vols. (London and New York).

Basu, B.D. — *The Consolidation of the Christian Power in India.* (Calcutta 1927). *Rise of the Christian Power in India Vol. V.* (Calcutta).

Bonham, John. — *Oude in* 1857.

Bourchier, G. — *Eight Months Campaign.* (London 1858).

Coopland, Mrs. — *A Lady's escape from Gwalior.*

Grant, Hope. — *Incidents in the Sepoy War* 1857-58 1873.

Groom. — *With Havelock from Allahabad to Lucknow.*

Gubbins, Martin Richard. — *An account of the Mutinies in Oudh and the Siege of Lucknow* (London 1858).

Hansard.	*Parliamentary-Debates.* (Relevant Volumes).
Holloway, John.	*Essays on the Indian Mutiny.* (London).
Holmes, T.R.	*History of the Indian Mutiny.* (London 1904).
Hutchinson, G.	*Narrative of the Events in Oude.* (London). *Indian Mutiny cuttings from Newspapers Published during mutinies. Indian Mutiny to the Fall of Delhi.*
Innes, Macleod,	*Lucknow and Oude in the Mutiny.* (London 1895).
Innes.	*The Sepoy Revolt.*
Joyace Michael.	*Ordeal at Lucknow, the Defence of the Residency,* (London).
Kavanagh.	*How I won the Victoria Cross* 1860. *London.*
Kaye, J.W.	*Memorials of Indian Government,* Being a selection from the papers of Henry St. George Tucker. (London 1853) A History of the Sepoy War in India—1857-1858 (London 1876) Three Volumes.
Leasor, James.	*The Red Fort.* (London 1957).
Mackenzie, A.R.D.	*Mutiny Memoirs being personal Reminiscences of the Great Sepoy Revolt of* 1857. (Allahabad 1891).
Malleson.	*Kayes' and Malleson's History of the Indian Mutiny of* 1857-58 (London 1889).

Red Pamphlet or The Mutiny of the Bengal Army (London 1857) *The Indian Mutiny of* 1857 (London 1894).

Malet. — *Lost links in the Indian Mutiny.*

Maude, F.C. — *Memories of the Mutiny with the Personal Narrative of John Walter Sherer* (London 1894).

Marry. — *The Mutiny.*

Marshman, J.C. — *Memoirs of Major General Sir Henry Havelock.* (London 1860).

Martin, W. — *Why is the English Rule Odious to the Natives of India*

Mead, H. — *The Sepoy Revolt. Its Causes and Its Consequences* (London 1857).

Meek. — *The Martyr of Allahabad.*

Meeley, J.G. — *A Year's Campaigning in India from March 1857 To March 1858.* (London 1858).

Metcalf, Charles Theophilus. — *Two native narratives of the Mutiny in Delhi.* (Translation of Jiwan Lal's & Muinuddin's Diaries).

Mutter, Mrs. — *My Recollections of the Sepoy Revolt* 1857-1858 (London).

Neill. — *Journal of the Mutiny.*

Raikes, C. — *Notes on the Revolt in the N.W.P. of India.* (London 1858).

Russell, William Howard. — *My Diary in India in the year* 1858-59. 2 Vols. Calcutta 1906.

Roberts of Kandahar.	*Fortyone years in India.* (London 1858).
Sleeman, W.H.	*A Journey Through the Kingdom of Oude* 18,9-185). (London 1858)
Savarkar, V. D.	*The Indian War of Independence,* 1857. (Phoenix Publication Bombay).
Sedgwick, F. R.	*The Indian Mutiny* 1857. (London 1908).
Sewell, R.	*The Analytical History of India from the Earliest Times to the Abolition of the Honourable East India Company in* 1858. (London 1870).
Sherer, J. W.	*Daily life During the Indian Mutiny, Personal Experiences of* 1857. (London 1910).
Sherring.	*The Church during the rebellion.*
Showers.	*A Missing Chapter of the Indian Mutiny.*
Sieveking, I.G.	*A Turning point in the Indian Mutiny.* (London 1910).
Smith George.	*The Life of Alexander Duff* (London 1879).
Smith, R. Bosworth	*Life of Lord Lawrence* (Smith Elder & Co. 1883).
Strong, Herbert.	*Duty and Danger in India* (London) *Stories of the Indian Mutiny.* (London).
Syke.	*Compendium of Laws specially relating to the Taluqdars of Oudh.*

Temple, Richard. *Lord Lawrence.* (London 1889)
Man and Events of My time in India (London 1882).

Thackey, Edward. *Reminiscence of the Indian Mutiny and Afghanistan.* (London 1916)
Two Indian Campaigns in 1857-58.

Thompson, E. *The Other Side of the Medal.* (London 1926).

Thompson, M. *The Story of Cawnpore.* (London 1859).

Trevelyan, G. *Cawnpore.* (London 1894).

Verney, G. L. *The Devil's Wind* (London 1957).

Warner, D.L. *The Life of the Marquis of Dalhousie* (London 1904).

White. *Complete History of the Great Sepoy War.*

Wilberforce, R.G. *An Unrecorded Chapter of the Mutiny Being the Personal Reminiscences compiled from a Diary and letters written on the spot.* (London 1894).

Wilson, T.F. *Diary of a Staff Officer.*

Wood, E. *The Revolt in Hindustan.* (London 1908).

अनुक्रमणिका

(अ)

(घ)

(च)

(छ)

(ड)

(त)

(थ)

(द)

(प)

(फ)

(ब)

(य)

(र)

(ल)

(व)

(श)

(ह)

सूचना विभाग के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

हिन्दी

समाजवाद

भारतीय बुद्धिजीवी

मुख्यमंत्री डा० सम्पूर्णानंद की महत्त्वपूर्ण रचनाएँ।

प्रत्येक का मूल्य ७५ नये पैसे

राष्ट्रीय कविताएँ

राष्ट्रीय कविताओं का उनके रचना-काल के अनुसार अभूतपूर्व संकलन।

मूल्य ५० नये पैसे

आजादी के तराने

स्वतंत्रता-संग्राम के सैनिकों द्वारा गाये जाने वाले गीतों का संग्रह।

मूल्य १२ नये पैसे

नग्मये आजादी

स्वतंत्रता-संग्राम सम्बन्धी उर्दू कविताओं का हिन्दी में संग्रह।

मूल्य २५ नये पैसे

नग्मये आजादी

उपर्युक्त पुस्तक का उर्दू-संस्करण। यह संक्षिप्त संस्करण है। इसका मूल संस्करण उर्दू में 'कौमी शायरी के सौ साल' प्रेस में है।

मूल्य २५ नये पैसे

बुद्ध चित्रावली

बुद्ध जयन्ती पर प्रकाशित, रंगीन तथा एकरंगे चित्रों का सुन्दर अलबम। आर्ट पेपर पर सुन्दर छपाई, रेशमी जिल्द। मूल्य ६ रुपये

उत्तर प्रदेश में लोक-नृत्य

उत्तर-प्रदेश के लोक-नृत्यों का सचित्र परिचय। आर्ट पेपर पर दोरंगी छपाई। मूल्य १ रुपया

अमीर खुसरो

अमीर खुसरो का जीवन-चरित्र और उनकी चुनी हुई पहेलियाँ; प्रत्येक बालक इसे अपने पास रखना चाहेगा। दोरंगी छपाई। मूल्य २५ नये पैसे

चंद सखी के लोक गीत और भजन

संकलनकर्ता, एवं सम्पादक श्री प्रभुदयाल मीतल

लोक साहित्य समिति द्वारा स्वीकृत पुस्तक। पृष्ठ संख्या ११२।

मूल्य २ रुपये

दिनांक Date	उधारकर्त्ता की संख्या Borrower's No.	दिनांक Date	उधारकर्त्ता की संख्या Borrower's No.